कल्याणमल्ल

[मलयालम् भाषा का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास]

मूल लेखक

सरदार के० एम० पणिक्कर

अनुवादक

श्रीमती रत्नमयीदेवी दीक्षित

श्री सीताचरण दीक्षित

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली इलाहाबाद बम्बई

प्रकाशक :
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई ।

प्रथम संस्करण, १९५६

मूल्य : तीन रुपये आठ आने

मुद्रक
श्री गोपीनाथ सेठ
नवीन प्रेस, दिल्ली

दो शब्द

इस उपन्यास के पात्रों में कौन-कौन यथार्थ में जीवित थे, कौन-कौनसी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं और कौन-कौनसी काल्पनिक—यह सब जानने के लिए पाठकगण उत्सुक होंगे। इस जिज्ञासा-पूर्ति के लिए ही ये दो शब्द लिखे जा रहे हैं। कहना आवश्यक नहीं कि ऐतिहासिक उपन्यासों के सभी पात्र ऐतिहासिक नहीं होते। इस उपन्यास के जो पात्र ऐतिहासिक प्रख्यात हैं उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

अकबर बादशाह।

सलीम—शाहजादा और बाद में 'जहाँगीर' नाम से भारत के बादशाह।

दानियाल—अकबर का कनिष्ठ पुत्र।

राजमाता—अकबर की माँ।

जोधाबाई—अकबर की पटरानी।

नासिर खां—अकबर के श्वसुरों में से एक।

खानखाना—साम्राज्य के प्रधान सेनापति (अब्दुर्रहीम खानखाना)।

पृथ्वीसिंह राठौर—बीकानेर के राजा के छोटे भाई। अकबर के मित्र। इन्हें पृथ्वीराज राठौर भी कहा जाता है।

शेख मुबारक—अबुलफ़ज़ल के पिता और अकबर के गुरु।

भोजसिंह—बूँदी के महाराजा।

शाबास खां और शाकुली खां—सेनानायक।

शेष कथा-पात्र यथार्थ में जीवित नहीं थे। ऐतिहासिक घटनाओं में

भी थोड़ा-बहुत अन्तर कर लिया गया है। इस उपन्यास के कथा-काल लगभग पाँच वर्ष पूर्व शेख मुबारक की मृत्यु हो गई थी। उत्तराधिकार सम्बन्ध में विवाद हुआ था, परन्तु उस समय दानियाल शाह अकबर साथ दक्षिण में थे।

अकबर के राजमहल और दरबार आदि का वर्णन उस समय इतिहासकारों के विवरण के आधार पर किया गया है।

—के० एम० पणिक्कर

भूमिका

राज्य पुनर्गठन आयोग के एक सदस्य होने के कारण आज भारतवर्ष के हर कोने मे सरदार पणिक्कर का नाम विख्यात हो गया है। राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति तथा उसका प्रतिवेदन देश के इतिहास की एक विशिष्ट घटना है। अतः इस आयोग के एक सदस्य के नाते सरदार पणिक्कर की यह ख्याति स्वाभाविक है। इसके पहले भी सरदार पणिक्कर राजनीतिक क्षेत्र मे अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानो पर, विशेषकर विभिन्न देशो मे राजदूत के पद पर रह चुके हैं। इस प्रकार वे देश के राजनीतिक क्षेत्र में अपना एक सम्मानपूर्ण स्थान रखते हैं। परन्तु, सरदार पणिक्कर का साहित्य के क्षेत्र में जो स्थान है, उसका महत्त्व और स्थायित्व उनके राजनीतिक क्षेत्र के स्थान की अपेक्षा मैं कहीं अधिक गौरवपूर्ण मानता हूँ।

सरदार पणिक्कर मलयालम भाषाभाषी हैं। साहित्यिक क्षेत्र में उनकी बहुमुखी प्रतिभा है। वे कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक, इतिहासज्ञ, राजनीतिशास्त्री, सभी कुछ हैं। भिन्न-भिन्न विषयों पर छोटी-बड़ी चौंतीस पुस्तकें उन्होंने मलयालम भाषा में लिखी हैं और छब्बीस पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में। इन पुस्तकों में अधिकांश पुस्तकें मौलिक हैं; कुछ अनुवाद भी हैं। मलयाली काव्य में वे अधिकतर संस्कृत छन्दों का उपयोग करते हैं। उनका मत है कि काव्य यथार्थ में श्रवण की वस्तु है। अतः जो काव्य श्रवणेन्द्रिय द्वारा हृदय को प्रभावित करता है वही श्रेष्ठ काव्य है। इसके सिवा उनके कथानकों मे नाटकीय परिस्थितियाँ बड़ी आकर्षक रहती है। मलयालम भाषा में चम्पूरचना उनकी विशेषता

है। उनके चम्पुओं में पद्य के साथ गद्य भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण रखता है। भावों के साथ वे अपनी भाषा को भी खूब माँजते हैं। 'हैदरनायकन्' नामक उनके चम्पू का मलयालम भाषा में बहुत बड़ा स्थान है। इसी प्रकार उनकी 'पंकीपरिणयं' नामक एक व्यङ्गात्मक रचना है। यह कथा पंकी नामक एक कन्या के विवाह की है, जो स्वयंवर में अपना वर चुनती है। यहाँ सरदार पणिक्कर मलाबार के विशिष्ट सामाजिक व्यक्तियों का बड़ा सुन्दर व्यङ्गात्मक वर्णन करते हैं। कहा जाता है, मलयालम भाषा में 'पंकीपरिणयं' के सदृश व्यङ्गात्मक कोई कृति नहीं है। सरदार पणिक्कर के अंग्रेजी भाषा के कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थों का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व हो गया है। 'एशिया एण्ड वेस्टर्न डोमिनेन्स' नामक ग्रन्थ का सभी प्रधान यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ और 'ए सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' नामक ग्रन्थ की दस आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। उनके मलयालम में अनूदित ग्रन्थों में महाकवि कालिदास का 'कुमार सम्भव', 'उमर खय्याम', यूनान के नाटककार सॉफोक्लीज का नाटक और चीन की कुछ कविताएँ प्रधान हैं। सरदार पणिक्कर केवल लिखने के लिए नहीं लिखते पर इसलिए लिखते हैं कि उन्हें यथार्थ में संसार को कुछ कहने और देने को रहता है। यही कारण है कि उनका संसार के साहित्य में एक विशेष स्थान हो गया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'कल्याणमल' सरदार पणिक्कर का एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी कथा सम्राट् अकबर के समय की है और यह उपन्यास उस काल का जीता-जागता चित्र दृष्टि के सम्मुख उपस्थित कर देता है। दक्षिण भारत के किसी निवासी का उत्तर भारत के प्राचीन इतिहास के किसी भाग का ऐसा जीवित चित्र उपस्थित कर सकना सरदार पणिक्कर की महान् साहित्यिक प्रतिभा का द्योतक है।

भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी का राज्यभाषा के पद पर आसीन होना एक स्वाभाविक बात थी। परन्तु, हिन्दी के राज्यभाषा होने का यह अर्थ नहीं है कि हमारे देश की अन्य महत्त्वपूर्ण भाषाएँ, जो हमारे संविधान में स्वीकृत की गई हैं, उनका स्थान हिन्दी भाषा की अपेक्षा किसी प्रकार भी

नीचा है। साथ ही इस बात को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि हिन्दी भाषा राजभाषा के पद पर इसलिए प्रतिष्ठित नहीं हुई है कि हिन्दी भाषा का साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं से ऊँचा है। देश को एक सूत्र में बाँधे रखने के लिए एक राजभाषा की आवश्यकता थी। देश के आधे से अधिक लोगों की हिन्दी मातृभाषा है और जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उनमे से भी अधिकांश हिन्दी समझते हैं, इसलिए हिन्दी को यह पद प्राप्त हो सका। परन्तु, हिन्दी के अतिरिक्त जिन अन्य भाषाओं को हमारे संविधान में स्थान मिला है, उन भाषाओं के लिए भी हमारे मन में वैसा ही सम्मान होना चाहिए, जैसा हिन्दी के लिए है। इसलिए अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का हिन्दी में प्रचुरता से अनुवाद आवश्यक है। यह खेद की बात है कि अंग्रेजी भाषा से हिन्दी मे जितना साहित्य अनूदित हुआ है, उतना अन्य भारतीय भाषाओं से नहीं। मेरा यह मतलब नहीं है कि अंग्रेजी अथवा संसार की अन्य भाषाओं की हम उपेक्षा करें। ज्ञानार्जन की दिशा में उपेक्षा सर्वथा अहितकर सिद्ध हुई है। अतएव हमें सभी दिशाओं से, संसार की सभी भाषाओं से अपने हिन्दी साहित्य के भण्डार को परिपूर्ण करना चाहिए। पर इस सर्व-समन्वय के सिद्धान्त-पालन में हमें प्रमुखता अपने देश की अन्य पडोसी भाषाओं को देना चाहिए।

दक्षिण भारत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यिकों में से एक साहित्यिक सरदार पणिक्कर के इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद हिन्दी भाषा के लिए आदर की वस्तु है। मुझे आशा है कि सरदार पणिक्कर के इस उपन्यास 'कल्याणमल' का हिन्दी जगत् में समुचित स्वागत होगा और इसके पश्चात् हम उनके अन्य ग्रन्थों को भी हिन्दी में अनूदित करा सकेंगे।

राजा गोकुलदास महल,
जबलपुर
२१ अक्तूबर, १९५५

—गोविन्ददास

अकबर बादशाह की राजधानी—आगरा—उन दिनों के सब नगरों में अग्रगण्य थी। बादशाह के प्रासादों और उद्यान-गृहों के राजसी प्रभाव तथा सुख-लोलुप उमराओं के महलों के शिल्प-वैचित्र्य और वैभव ने आगरा को फारस तथा तुर्की आदि देशों की राजधानियों से अधिक प्रशस्त बना दिया था।

यमुना के किनारे, पश्चिम से पूर्व की ओर जाने वाली सड़क पर, बादशाह के मित्र अमीर-उमराओं की अट्टालिकाएँ थीं। लगभग चार मील लम्बी इस राजवीथी के पार्श्व में नदी की ओर मुख किये अनेक प्रासाद खड़े थे। इनकी रूप-रचना, बाहर से देखनेवालों को एक समान ही दिखाई देती थी। एक स्थान पर लाल पत्थरों से बना हुआ बड़ा गोपुर-द्वार था, जिसे पार करने पर एक उपवन मिलता था। यह उपवन पुकार-पुकारकर अपने स्वामी की प्रतिष्ठा और प्रभुता का विज्ञापन कर रहा था। कृत्रिम जलाशय, धारायंत्र (फव्वारे), लता-कुंज आदि उसकी रमणीयता को परिस्फुट करते हुए बता रहे थे कि उपवनों के इस वैशिष्ट्य से ही इस काल के प्रभुजनों की उच्च मान-मर्यादा का मूल्यांकन किया जाता है। उपवन के पश्चात् मुख्य वास-गृह था।

गोपुर-द्वार पर सदा अंग-रक्षकों और सशस्त्र अनुचरों का पहरा रहता था। प्रत्येक गृह के सम्मुख गृहपति के अनुचरों और सेवकों का पहरा होने के कारण वह वीथी विविध जातियों और वेश-भूषाओं के सशस्त्र लोगों की युद्ध-भूमि जैसी दिखलाई पड़ती थी।

राजवीथी के एक मुख्य प्रासाद में बूँदी के महाराज भोजसिंह निवास करते थे। संध्या होते-होते उस भवन से एक ऊँचा-पूरा, सुन्दर युवक निकला और पैदल ही नगर की ओर रवाना हो गया। उसकी आयु लगभग पच्चीस वर्ष की मालूम होती थी। मुख के भावों और वेश-भूषा से वह कोई राजपुत्र जैसा दिखलाई पड़ता था। अन्य प्रभुजनों के द्वारों पर झुण्ड बनाकर खड़े हुए सैनिकों ने प्रश्नयुक्त दृष्टि से इस अपरिचित युवक को देखा, परन्तु उसकी कमर से लटकने वाली लम्बी तलवार और मुख पर दमकते हुए तेज ने उन्हें आगे बढ़ने का साहस प्रदान नहीं किया। उस युवक ने किसी ओर देखे बिना सीधे चलकर नगर में प्रवेश किया। मुख्य बाजार में पहुँचकर वह कुछ क्षण शंकाग्रस्त जैसा खड़ा रहा। अन्त में पास की एक दूकान पर जाकर उसने पूछा कि सेठ कल्याणमल का घर किस ओर है। कल्याणमल नगर के रत्न-व्यापारियों में प्रमुख थे, इसलिए उनका घर बता देना उस दूकानदार के लिए कठिन न हुआ। कल्याणमल परम्परा से आगरा के निवासी नहीं थे, कोई दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व ही सिंध अथवा गुजरात से आकर यहाँ बसे थे। रत्नों के वैशिष्ट्य और मूल्यों के औचित्य ने उन्हें रत्न-व्यापारियों में अग्रगण्य बना दिया था। बहुत से प्रभुजन और बादशाह के निकट सम्बन्धी उनके उत्तम मित्र थे। स्वयं बादशाह के पास भी उनकी पहुँच थी। लोगों में प्रसिद्ध था कि बादशाह की पटरानी जोधाबाई भी अपनी आवश्यकता के लिए उनसे ही रत्नादि खरीदती हैं।

हमारा युवक मुख्य बाजार से एक गली में होता हुआ 'चांदी वाली' गली में पहुँचा। वहाँ सामने ही एक छोटा-सा सिंहद्वार और अन्दर आँगन दिखाई दिया। वह निःसंकोच और निर्भय होकर भवन के अन्दर चला गया। द्वार पर खड़े हुए सेवक उसे आँगन पार कराकर सामने के एक कमरे में ले गए। उस कमरे में दीवार के पास शतरंजी बिछी हुई थी, जिस पर स्वच्छ चादर थी। एक ओर बड़े-बड़े तकिए रखे हुए थे। युवक के अन्दर प्रवेश करते ही एक मुंशी ने उसका स्वागत करते हुए कहा—"आइए, विराजिए! क्या आज्ञा है? यहाँ अँधेरा होने के पश्चात्

रत्नों का व्यापार नही होता।"

"मै सेठजी से मिलना चाहता हूँ। क्या वह अन्दर हैं?" युवक ने पूछा।

"है, परन्तु वह साधारणतया अपरिचित लोगों से नहीं मिलते और इस समय किसी मित्र से बातचीत भी कर रहे हैं। कोई विशेष कार्य हो तो आप मुझसे कह सकते हैं," मुंशी ने उत्तर दिया।

"मुझे उनसे ही मिलना है। आप उन्हें समाचार देने की कृपा कीजिए।"

"शायद आप मालिक को पहले से जानते हैं?"

"नही। मुझे आगरा आये केवल दो ही दिन हुए हैं।"

"तो, उनके किन्ही मित्र का पत्र लेकर आये होंगे?"

"ऐसा भी नहीं। बूंदी के महाराजा के कहने से आया हूँ।"

"अच्छा, मै अभी सेठजी के पास निवेदन करता हूँ।"

मुंशी अन्दर चला गया और शीघ्र ही वापस लौटकर उसने कहा कि सेठजी राह देख रहे है। दोनो साथ ही अन्दर चले गए।

घर का अन्दरूनी भाग वैसा नही था जैसा कि बाहर से दिखाई देता था। कमरे राजसी ढंग से सजे हुए थे। घर के उपकरण संपत्समृद्धि और ऐश्वर्य का परिचय दे रहे थे। नीचे बिछे हुए कालीन और दीवारो के अलंकरण बहुमूल्य और अतिश्रेष्ठ थे। सब देखकर युवक आश्चर्य-चकित हुए बिना न रह सका, परन्तु उसने अपने भावो को मुख पर प्रकट होने नहीं दिया। इस प्रकार वह सेठ कल्याणमल के कमरे मे पहुँचा।

सेठजी की अवस्था साठ से ऊपर होने पर भी उनके मुख पर वृद्धावस्था का कोई चिह्न दिखलाई नही पडता था। शरीर दृढ़ और सुगठित था। युवक की धारणा थी कि सेठ लोग प्रायः बडी तोंदवाले, मोटे और गोलाकार शरीरवाले और झुककर चलनेवाले दुर्बल व्यक्ति होते हैं। अतएव, कल्याणमल को देखकर उसके मन मे विचार उठा कि वह कोई बड़े सामन्त अथवा राजवंश के व्यक्ति होंगे। सेठजी ने उठकर आदर के

साथ उसका स्वागत किया और उसे एक जरी के आसन पर बैठाया।

उन्होंने कहा, "मुंशी ने बताया कि आपने बूंदी-महाराजा की आज्ञा से आने की कृपा की है। मुझ पर बड़ा अनुग्रह हुआ। महाराज की क्या आज्ञा है?"

"उन्होंने मुझसे कहा है कि मैं अपनी सारी बातें आपसे निवेदन करूँ तो आप सब प्रकार से मेरी सहायता करेंगे," युवक ने उत्तर दिया।

कल्याणमल मुसकराए, परन्तु कुछ बोले नहीं। युवक ने बात जारी रखी—

"अपनी बात मैं संक्षेप में बताऊँगा। उसके बाद ही तो सहायता माँगना उचित होगा!" कल्याणमल ने स्वीकृति सूचित करते हुए सिर हिला दिया।

युवक ने आगे कहना आरम्भ किया, "मैं बुन्देलखण्ड-स्थित रामगढ़ के राजा का पुत्र दलपतिसिंह हूँ।"

"किस राजा के?" सेठजी ने युवक की ओर ध्यान से देखकर प्रश्न किया।

"भूपालसिंह राजा और उनके रामगढ़ राज्य की कहानी शायद आपको नहीं मालूम होगी। जब बादशाह अकबर की शक्ति बुन्देलखण्ड की ओर फैलने लगी उस समय रामगढ़ के राजा मेरे पितृव्य महाप्रतापी अजीतसिंह महाराज थे। मुगलों का आधिपत्य स्वीकार करके एक सामन्त-मात्र बनकर रहना उनको स्वीकार नहीं था, इसलिए उन्होंने तन-मन-धन से मुगल-साम्राज्य की शक्ति को रोकने का प्रयत्न किया। कुछ समय तक वे सफल रहे, किन्तु अन्त में पारिवारिक संघर्ष के कारण मुगलों को अपने पैर रखने की सुविधा मिल गई। उन्होंने मेरे पिताजी को सिंहासन दे दिया। पहले-पहल पिताजी ने उनका साथ दिया, परन्तु जब मुगल सरदारों की धूर्तता असह्य होने लगी तो उन्हें उनका विरोध करना ही पड़ा। चार वर्ष पूर्व पिताजी स्वर्गवासी हो गए। युवावस्था के अविवेक से किये गए अपराधों और उनके कारण अपने वंश पर लगे कलंक की स्मृतियों से उनका हृदय

टूट गया था। मृत्यु के पूर्व अपने औरसपुत्र मुझको बुलाकर उन्होंने राजकोय खड्ग, मुद्रा और राजकोष की चाबी मेरे हाथ में सौंप दी और मुझे आदेश दिया कि महाराजा अजीतसिंह की सन्तानों के लिए ही राज्य करते हुए उन्हें खोज निकालने का पूरा प्रयत्न किया जाय। परन्तु बादशाह के सूबेदार ने मेरा राज्याभिषेक रोक दिया और मेरे छोटे भाई को, जो नाबालिग है, राजा बनाया। उसकी वयःपूर्ति तक राज्य-कार्य सँभालने के लिए मेरे एक सम्बन्धी को, जिसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया है, नियुक्त किया गया।"

"तो फिर?" सेठ कल्याणमल ने पूछा।

युवक ने कहा, "इस घटना को अब तीन वर्ष हो चुके हैं। राज्य से निष्कासित होने पर मैं कुछ अनुचरों के साथ महाराणा प्रतापसिंह की शरण में गया। मुगल-शक्ति से बचा हुआ एकमात्र राज्य अब चित्तौड ही तो है।"

"तो अब क्यों मुगल-सम्राट् की शरण लेने आए हो?"

"अब समझ गया कि युद्ध करके रामगढ़ को स्वाधीन नहीं कर पाऊँगा। पिताजी की आज्ञा का पालन तो करना ही है। इसलिए मैंने विचार किया है कि बादशाह की कृपा से अपना पैतृक राज्य वापस पाने का प्रयत्न करके देखूँ। मेरा इरादा बादशाह का आश्रित बनकर स्थान और मान कमाने का नहीं है।"

"प्रतापसिंह जी की सभा में आपको महाराजा अजीतसिंह का कोई समाचार नहीं मिला?"

"रामगढ में मैंने सुना था कि वे महाराणा के साथ थे। मैंने सीधे राणाजी से पूछा। उन्होंने बताया कि चित्तौडगढ़ के सम्मुख जो युद्ध हुआ था उसमें वे और उनके एकमात्र पुत्र ने वीर-गति प्राप्त कर ली।"

"तो अब राज्य के उत्तराधिकारी आप ही हैं?"

"अब तक मुझे यह विश्वास नहीं हुआ। यह कैसे मालूम हो कि उनके और पुत्र नहीं थे? इसका पता लगाना मेरा कर्तव्य है।"

सेठजी सब सुनने के बाद बहुत देर तक विचारमग्न रहे और फिर बोले, "आपकी कहानी दुःखभरी है। हमारे भारत का क्या हाल हो गया है! हमारे राजाओं को ही देखिए—या तो प्रतापसिंहजी के समान पर्वतो और वनों की शरण मे या बादशाह के स्वर्ण से आवृत सेवक! कैसी दुःखमय स्थिति है! आपकी बात ही कौन सुनेगा? काबुल से बीजापुर तक के राजा-महाराजा अपने-अपने आवेदन लिये यहाँ आकर पड़े हुए हैं। समय बीत जाने पर अपना सब काम भूल जायँगे और किसी उमरा की खुशामद करके सेना मे कोई नौकरी कर लेगे। और फिर वे भी बादशाह के विशेष प्रेम-पात्र होने का भाव दिखाने लगेंगे। बादशाह के दरबार की नीति को समझना भी सरल नही है। अपने शत्रुओ का दमन करने में जो अपना साधन बन सकता है उसके प्रत्येक कार्य में—चाहे वह ठीक हो या गलत—बादशाह सहायता देते हैं। क्या आप समझते हैं कि अम्बर के मानसिंह और बीकानेर के रायसिंह की सहायता बादशाह उनके साथ मित्रता के कारण करते है? महाराणा प्रताप जब तक मुगलो का विरोध करते रहेगे तब तक बादशाह को इनकी सहायता की आवश्यकता रहेगी। धूर्त मुगल सूरदारों की शक्ति कम करने के लिए भी कुछ हिन्दू राजाओ की आवश्यकता है। नीति-निपुण बादशाह इससे अधिक भी इनमे से किसी के मित्र हैं, ऐसा न सोचिएगा।"

दलपतिसिंह को विस्मय हुआ। साम्राज्य और राजकीय कार्यों से सर्वथा अपरिचित उस युवक के हृदय में शंका होने लगी कि कहीं मेरी समस्त आकाक्षाएँ केवल दिवास्वप्न बनकर न रह जायँ। उसने पूछा, "इस स्थिति में, राजसभा के सरदारों और प्रभुजनो से मिलने या उनकी मित्रता सम्पादित करने का प्रयत्न करूँ तो वह व्यर्थ ही होगा?"

"ऐसी बात तो नहीं है," सेठजी ने कहा, "मनुष्य के भाग्य के बारे में कौन जानता है! आपके ही जैसे निस्सहाय और अशरण होकर आये हुए बीरबल और पृथ्वीसिंह आज बादशाह के आप्त मित्र बन गए है। मेरा कहना इतना ही है—और इसे आप याद रखिए—कि बादशाह के

कृपापात्र बनने के मनोरथ बाँधकर जो हजारों लोग यहाँ आए उनमे से केवल तीन-चार ही सफल हुए हैं। आप भी ऐसे भाग्यशालियो मे एक हो सकते है, अतएव निराश होने की आवश्यकता नही है। फिर भी, यह मत सोचिए कि आपके निवेदन के न्यायपूर्ण होने से ही आपको न्याय मिल जायगा। अपने-आपको राजाधिराज कहलाने वाले असंख्य लोग जहाँ द्वारपाल बन कर समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं, वहाँ रामगढ का नाम भी किसने सुना होगा? और किसी ने सुना भी हो तो उस तुच्छ बात मे पडकर अपने कामो मे बाधा पैदा करना कौन पसन्द करेगा?"

दलपतिसिंह ने कहा, "आपका आशय मेरी समझ मे आ गया। मेरी इच्छाएँ शीघ्र-साध्य नहीं हैं। यदि सौभाग्य से बादशाह के लिए कोई विशेष कार्य करने का अवसर मिल जाय तो शायद काम बनने की आशा हो सकती है। अन्यथा, केवल सरदारो की मित्रता, मन्त्रियो की हितैषिता या बादशाह के दृष्टि-पथ मे पड जाने से भी कोई लाभ नही।"

सेठजी—"यही मेरे कहने का अर्थ है। मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। यह एक बड़े साम्राज्य की राजधानी है। सभी नगरो में अच्छे-बुरे लोग होते है और राजधानियो मे तो ऐसा विशेष रूप से होता है। फिर बादशाह की राजधानी का तो कहना ही क्या! इस शहर से अधिक परिचित होने पर मेरी बातो का पूरा अर्थ आपकी समझ मे आयेगा। यहाँ आनेवाले युवकों के मन अनेक प्रकार से पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और वे अपने वास्तविक लक्ष्य को भूल जाते हैं। कुछ लोग राज-सेवा की पद्धति सीखकर उस ओर मुड जाते हैं, कुछ विलासिता और विषयासक्ति के चक्कर मे फँस जाते हैं। हम हिन्दुओं के लिए सर्वथा अपरिचित अनेक प्रकार की विलास-सामग्रियो से यह राजधानी परिपूर्ण है। अधिकतर युवक फारस के मद्य आदि से मोहित होकर अपने-आपको खो बैठते हैं। जिस मालिक के सेवक बनते हैं उसके अनुकूल उनका भी व्यवहार हो ही जाता है। बादशाह के निकटतम सामन्तो और कुछ इने-गिने सरदारों को छोडकर शेष सभी लोग इस प्रकार के दुराचारों में डूबकर कार्याकार्य-विवेक छोड़े हुए

हैं। इनके बीच पड़कर अपनी सन्मार्ग-निष्ठा को ही सुरक्षित रखना कठिन है। फिर शेष बातों का तो कहना ही क्या !"

दलपतिसिंह—"यह मुझे भी महसूस हुआ था। इतना सब सच होने पर भी यदि आप यह राय देते हैं कि मुझे अपने उद्देश्य के लिए प्रयत्न करना चाहिए तो कृपा करके कर्तव्य-पथ का निर्देशन भी आप ही कर दीजिए।"

सेठजी—"अच्छा। परन्तु मुझे यह तो बताइए कि आपकी आर्थिक स्थिति कैसी है ?"

दलपतिसिंह चुप रहा। यह देखकर सेठजी ने फिर कहा, "आपके मौन से ही मैंने जान लिया। मगर आप यह जानते हैं कि बिना धन के ऐसी राजधानी मे कुछ भी नही किया जा सकता ?"

"आदरणीय भोजसिंह महाराज ने इस विषय में मुझसे बातचीत की थी। उनका कहना था कि अच्छे वेतन का कोई सम्मान्य कार्य मिलना ही मेरी प्रथम आवश्यकता है।"

"और आप उनके मित्र तथा सम्बन्धी भी हैं। अच्छा, इसका उपाय हो जायगा। बादशाह के परम मित्र महाराज पृथ्वीसिंह, जिनको यहाँ पीथल कहा जाता है, मुझ पर कृपालु हैं। उनकी राजपूत सेना में आपके लिए एक अच्छे स्थान की व्यवस्था कर लेंगे। इस समय आप रहते कहाँ हैं ?"

"अब तक बूँदी-नरेश का अतिथि हूँ। परन्तु यह कब तक चल सकेगा ?"

"ठीक है। नगर मे कहीं एक छोटा-सा मकान किराये पर लेकर रहना ही उचित है। राजा पीथल की सेना में काम मिलने से बादशाह के दृष्टि-पथ मे आने के अनेक अवसर मिल सकते हैं और मै जानता हूँ, ऐसे अवसर आप स्वयं ढूँढ़ निकालेंगे। एक बात और कहनी है। इस दरबार में दलबन्दी बहुत है। आज जो मित्र दिखाई देते हैं वही कल एक-दूसरे का गला काटने पर तुले दिखाई देंगे। इसलिए आपको यह खयाल रखना चाहिए कि किसी के विरोध के पात्र न बनें। जितना हो सके उतनी

मित्रता बनाये रखने का प्रयत्न कीजिए। दानियाल शाह के दरबार मे बीच-बीच मे जाते रहिए। वे बादशाह के वात्सल्य-भाजन हैं।"

इसके बाद सेठजी ने मुंशी को बुलाकर राजा पीथल और दानियाल शाह के दीवान दीनदयाल के नाम एक-एक पत्र लिखकर लाने की आज्ञा दी। दोनों पत्रो मे यही लिखवाया कि पत्रवाहक एक प्राचीन और प्रख्यात राजवंश के पुरुष हैं, इनकी उन्नति मे मुझे दिलचस्पी है, इसलिए यदि आप इनकी सहायता करेंगे तो मै बहुत आभारी हूँगा। राजा पीथल के लिए एक अलग पत्र भी लिखवाया, जिसमें यह प्रार्थना की गई कि इस युवक को अपनी सेना में कोई अच्छा स्थान देने की कृपा करें। जब तक मुंशी पत्र लिखकर लाया तब तक वे दोनों बातचीत करते रहे। इस बातचीत से दलपतिसिंह को कल्याणमल के ज्ञान, राज्यकार्य से परिचय और बादशाह तथा अन्य प्रभुजनों के बीच ईर्ष्या-योग्य स्थान की कल्पना हो गई। मन-ही-मन उसने कहा कि भोजसिंह महाराज ने मुझे यों ही इनके पास नहीं भेज दिया। थोड़ी देर में मुंशी पत्र ले आया। उसमे हस्ताक्षर करके देते हुए सेठजी ने कहा, "अब देरी हो रही है। इस नगर में आपका कोई परिचित अथवा मित्र तो नहीं है। मेरे घर को आप अपना समझ लीजिए। यहाँ आने-जाने में आपको कोई रोक-टोक न होगी।"

दलपतिसिंह उचित शब्दों मे अपनी कृतज्ञता व्यक्त करके वहाँ से रवाना हो गया।

सेठ कल्याणमल की सिफारिश का मूल्य दलपतिसिंह को दूसरे ही दिन मालूम हो गया। उन्हें बूँदी-नरेश की अश्वशाला से घोडे और सेना से अनुचर ले लेने की अनुमति प्राप्त थी। अतएव एक अश्व और रामगढ से आये अनुचर को लेकर वे राजा पीथल से मिलने के लिए रवाना हुए।

जिन्हें बादशाह अकबर स्नेहपूर्वक 'पीथल' नाम से संबोधित करते थे

वे पृथ्वीसिंह राठौर बीकानेर के महाराजा रायसिंह के कनिष्ठ भ्राता और उस काल के वीरों में अग्रगण्य थे। उस समय उनकी आयु लगभग पैंतालीस वर्ष की थी। दीर्घ शरीर, उसी के योग्य सुगठित रूप, पौरुषयुक्त सुन्दरता, आजानु बाहु, विशाल वक्षस्थल आदि से उनके उच्च स्थान और गुणों का प्रत्यक्ष परिचय मिलता था। उस समय के राजपूतों की प्रथा के अनुसार उनकी दाढ़ी और मूछें बढ़ी हुई थी और दाढ़ी को जो बीच से सँवार लिया गया था उससे उनके मुख की गंभीरता मे और भी वृद्धि हो हो गई थी। उनकी वीरता और पराक्रम सारे भारत मे प्रख्यात था। बादशाह के सामने भी अपना मत स्पष्ट रूप से प्रकट करने का साहस राज-दरबार मे केवल उनको ही प्राप्त था। इस साहस के उदाहरण के रूप में आज भी हिन्दुओं में उनकी एक कहानी प्रचलित है। आगरा मे एक ऐसी जनश्रुति फैल गई थी कि मुसलमान साम्राज्य के जन्म-शत्रु महाराणा प्रताप सिंह ने बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली है। अकबर ने आनन्द के साथ यह बात दरबार मे कही। पीथल ने तुरन्त ही उसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि प्रतापसिंह कभी पराधीनता स्वीकार नहीं कर सकते। बादशाह जोर से हँस पड़े। फलतः पीथल ने निम्नाशय का एक पद्यात्मक पत्र लिख-कर प्रतापसिंह को भेजा :

"यदि बादशाह शब्द तुम्हारे मुँह से निकलेगा
तो, उस दिन, सूर्य पश्चिम में उदित होगा।
अपनी मूँछें क्या मुझे उलटी सँवारनी पड़ेंगी ?
या, मेरे महाराज ! सत्य बोलो, मुझे मरना होगा ?"

दस दिनों में प्रतापसिंह के पास से इसका उत्तर आ गया, जिसका आशय यह था :

"जब तक शरीर में प्राण रहेंगे
मैं अकबर को तुर्क कहता रहूँगा।
तुम अपनी मूछें सीधी ही सँवारो।
सूर्य पूर्व में ही उदित होगा। तुम सदा जीवित रहो।"

अपना पत्र और उसका उत्तर दोनो को राजसभा में पढ़ सुनाने मे पृथ्वीसिंह को संकोच नहीं हुआ।

पीथल उस काल के कवियो मे अग्रगण्य थे। उनका प्रसिद्ध काव्य 'वेलि क्रिसन-रुक्मणी री' आज भी राजस्थान के साहित्य मे अपना उच्च स्थान रखता है। इस प्रकार सर्वथा आदरणीय राजा पीथल से मिलने जाने मे दलपतिसिंह को अत्यधिक आनन्द होना स्वाभाविक था। पीथल नगर से थोडी दूर बादशाह के एक महल मे रहते थे, जो एक वाटिका के बीच बना हुआ था। दलपति जब वहाँ पहुँचा उस समय बहुत से लोग महल के सामने एकत्र थे। एक सेवक एक सफेद घोड़े को सजाये खडा था। दलपति ने समझ लिया कि राजा किसी काम पर जा रहे हैं और आज उनसे मिलना संभव न होगा। किसी भी हालत में, उनके दर्शन कर लेना ही उचित समझकर वह घोड़े से बिना उतरे ही राजपथ से हटकर एक पार्श्व में खडा हो गया। क्षण-भर बाद ही पीथल बाहर निकले और घोड़े पर सवार होकर चलने लगे। इसी बीच उनकी दृष्टि रास्ते से हटते हुए दलपति पर पडी। शकुन आदि पर विश्वास करने वाले उन्होंने एक अनुचर को इस नये व्यक्ति के बारे में पूछताछ करने की आज्ञा दी। जब दलपतिसिंह ने उस अनुचर के हाथ साथ लाया हुआ पत्र भेजा तो उसे निकट जाने की अनुमति मिल गई। राजा ने उस पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालकर कहा : "अपने मित्र की बात तो हम अमान्य नहीं कर सकते और मुझे लगता है कि हम एक-दूसरे के अनुकूल होगे। मैं अभी बादशाह से मिलने के लिए ककराली जा रहा हूँ। मेरे साथ आ जाओ। दूसरे अनुचरों की आवश्यकता नही है।"

आज्ञानुसार, साथ आये हुए सेवक को लौटाकर दलपतिसिंह ने राजा पीथल का अनुगमन किया। वे आगरा से दक्षिण की ओर जाने वाली सड़क से चलने लगे। रास्ते में पीथल ने उससे अनेक बातें पूछी; उसे साथ ले आने का उद्देश्य ही यही था। वे जानते थे कि सेठ कल्याणमल उत्तम व्यक्ति की सिफारिश ही करते है और आज की सिफारिश तो एक प्रकार

की आज्ञा जैसी थी। मन में विचार उत्पन्न हो सकता है कि महाराजाधिराजों को भी आज्ञा देने का, अथवा अनिवार्य सिफारिश करने का अधिकार एक साधारण सेठ को कैसे मिला। राजधानी मे पूर्ण वैभव के साथ रहने वाले प्रमुखजनो को धन का सकट हो जाना असाधारण बात नही थी। सुना जाता है कि उन सबको समय-समय पर आवश्यक सहायता सेठ कल्याणमल से ही मिलती थी। यह सत्य हो सकता था। किसी भी अवस्था मे इतना तो सत्य था ही कि अमीर-उमरा और शाहजादे भी उनकी बात को टालते नही थे।

सब प्रश्नो का ठीक-ठीक उत्तर देने पर भी दलपति ने अपनी सारी कहानी पहले ही पीथल को नही बताई। उसने केवल इतना ही कहा कि मैं रामगढ का राजकुमार हूँ और वहाँ के सूबेदार के अन्याय के कारण मेरे छोटे भाई के राजा बना दिये जाने से बादशाह अथवा किसी हिन्दू राजा की सेवा मे सम्मानपूर्वक जीवन-यापन करने के लिये यहाँ आया हूँ।

सामान्य राजपूत युवको को आश्रय देकर अपने प्रति अपने लोगो का आदर बढ़ाने के इच्छुक राजा पीथल को दलपति की अभिलाषा सुनकर आनन्द हुआ। उन्होने कहा, "सेठ जी ने मुझ पर उपकार ही किया है। मेरी सेना के एक विभाग मे सेनानायक का स्थान रिक्त है। उसके लिए तुम्हारा जैसा युवक मिल जाने से मै बहुत प्रसन्न हूँ।"

सरस सभाषण के लिए प्रसिद्ध पीथल ने मन्दहास और मधुर वाणी से इतना कहा तो दलपतिसिंह का हृदय आनन्द से उमड उठा। अपने इष्टदेव से वर प्राप्त करने की जैसी प्रसन्नता से उसने अपने स्वामी के चरणो पर अपनी तलवार समर्पित करते हुए कहा—

"महाराज! आपकी आज्ञा को मैं वरदान मानता हूँ। आपके जैसे महान् और हिन्दुओं के मुकुटालंकार स्वामी का सेवक बनने का सौभाग्य मुझे अपने कुल-देवता के अनुग्रह से ही मिला है। अन्यथा, आपको प्रसन्न करने योग्य कोई गुण मुझमे नहीं है। अपने महान् पूर्वजो के प्रख्यात नामो पर कलक लगाए बिना आपकी सेवा करूँगा और आपकी सभी आज्ञाएँ

मेरे सिर-माथे होंगी, यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

राजा पीथल ने उत्तर दिया, "तुम्हारे उच्च वंश के योग्य ही है ये बातें। मेरा विश्वास है कि सब हालतों में तुम उचित-अनुचित का विचार करके ही काम करोगे। एक बात तुमको बता देना चाहता हूँ। मुझे अधिकतर बादशाह के पास ही रहना पड़ता है। इसलिए मैं स्वतंत्रता से कुछ नहीं कर सकता। जब बादशाह राजधानी में रहते हैं तब मैं दिन-भर दरबार में या मृगयागृह में या फतहपुरी में रहता हूँ। तुमको भी उन राजमहलों के बाहर दालान में ही रहना होगा। वहाँ जो लोग मिलेंगे वे सब बादशाह के निकटतम लोगों के अनुचर होंगे। उनके भावों और शब्दों से तुम्हें कुछ भी अनुभव हो, अपनी तलवार की तेजी के बल उनसे भिड़ना मत। राजाओं के सेवकों में एक विशेष बात होती है—परस्पर स्पर्धा। सामने स्नेह-भाव दिखानेवाले भी पीठ पीछे काट लेने का अवसर खोजते रहते हैं। राजमहल के अन्दर किसी लड़ाई का कारण मत बनना। इससे बादशाह के क्रोध के पात्र बन जाओगे।"

यद्यपि दलपति को लगा कि कोई कुछ भी कहे और उसे चुपचाप सुन लिया जाय, यह किसी वीर के लिए शोभनीय नहीं है, फिर भी उसने अपने स्वामी के निर्देश को आदर के साथ स्वीकार कर लिया। वह जानता था कि राज-सेवा एक कठिन कार्य है।

राजा पीथल ने दूसरी बात छेड़कर कहा, "इस मार्ग से थोड़ी दूरी पर वह बड़ा, सिंहद्वारवाला महल देखते हो? वह नासिरखां का है। नासिरखां कौन है, तुम्हें सदा याद रखना चाहिए। शायद आज वह मृगयागृह में मिलेगा। वह बादशाह के हिन्दू मित्रों का मुख्य शत्रु है। बादशाह की मुख्य बेगमों में से एक का पिता होने के कारण दरबार में वह प्रबल भी है।

दलपति ने उस ओर देखा जिस ओर राजा पीथल ने संकेत किया था। एक रमणीय उद्यान और उसके बीच एक विशाल प्रासाद, जिसके सामने बहुत बड़ी संख्या में सैनिक पंक्ति बनाये खड़े थे। पीथल ने कहना जारी रखा—

"वह मृगयागृह जिसमें इस समय बादशाह विराजमान हैं, यहाँ से बहुत दूर नहीं है। नासिरखा के महल और उस संरक्षित वन के बीच कुछ सामन्तों के महल हैं। उनमें से एक को छोड़कर शेष सभी तुर्क उमराओं के है। एक महल का तुम्हे सदा ध्यान रखना होगा। वह शाहजादे दानियाल का आवास है। रास्ते मे मै तुम्हे दिखा दूँगा।"

अवसर पाकर दलपति ने पृथ्वीसिंह को सेठजी की यह सलाह भी बता दी कि उसे दानियाल शाह से मिलते रहना चाहिए। उसने शाहजादे के दीवान पंडित दीनदयाल के नाम लाये हुए पत्र की भी चर्चा की। राजा पीथल ने उत्तर दिया—"सेठजी की बुद्धि और दूरदर्शिता आश्चर्यजनक है। दानियाल दासी-पुत्र होने और चतुर एवं कुशल न होने पर भी बादशाह के स्नेह-पात्र हैं। लोगो का खयाल है कि वे सलीम के उत्तराधिकार में बाधक हो सकते है। बादशाह के निकटतम लोग ऐसा नही मानते, फिर भी उनके साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखना वे भी उचित समझते हैं। दानियाल के पक्ष का एक बडा दल राजधानी में है। उसके प्रमुख बादशाह के मुख्य मंत्री और सलीम के शत्रु अबुलफ़ज़ल हैं। बादशाह को अपने श्रेष्ठ सचिव के ऊपर जो विश्वास है उसी के कारण शासन-कार्य में दानियाल शाह की इतनी शक्ति है। अवश्य तुम दीनदयाल से मिलो। शायद दानियाल समवयस्क होने के कारण तुम से प्रेम भी करने लगें।"

राजकीय कार्यों के बारे में अपने सेवक के साथ इतनी बातें करने मे राजा पीथल का एक विशेष उद्देश्य था। शत्रु और मित्र की निश्चित जानकारी न होने से युवक दलपति असावधानी कर सकता था और उन्हें किसी विषम परिस्थिति मे डाल सकता था। दलपति ने भी इन बातों को अपनी राजकीय शिक्षा का प्रथम पाठ मानकर सुना और समझा।

अकबर का नगरकेच (आनन्दभवन) नाम का मृगयागृह आगरा से आठ-दस मील दूर ककराली नाम के स्थान पर था। उसके चारो ओर बादशाह के शिकार खेलने के लिए विशेष रूप से सुरक्षित जगल था। बहराम के

समीन शिकार के शौकीन अकबर शासन-कार्यों से थक जाने पर इस ओर मुड जाते थे। उनके मनोविनोद के लिए सब मुख्य नगरों के आसपास जंगल रखे गए थे। फतहपुरी नाम की नई राजधानी बनने के पूर्व उनका सबसे प्रिय विश्राम स्थल नगरकैच (आनन्दभवन) था। दूर-दूर से तरह-तरह के जानवरों को लाकर उसकी चारों ओर के जंगल में पाला गया था और इन जानवरों के निर्बाध रहने का सब प्रबन्ध कर दिया गया था। इस वन का संरक्षक किशनराय नाम का एक वृद्ध था। बालपन से ही शिकार-विभाग में काम करने वाले किशनराय ने एक बार लाहौर में अकबर पर आक्रमण करनेवाले व्याघ्र का एक ही वार में वध करके बादशाह के प्राणों की रक्षा की थी, अतएव वह बादशाह का प्रियपात्र बन गया था और उनके निजी शिकारी दल में नियुक्त कर दिया गया था। तब से वह नगर-कैच राजभवन के चौतरफ के जंगल का संरक्षक बनकर वहीं रहता था।

केवल वन-गृह होने पर भी नगरकैच राजभवन अकबर की राजसी सुखैषणा का साधक था। उसके दो ऊँचे शिखरों वाले द्वार को पार करने पर एक बडा आँगन मिलता था। उसमें एक ओर राजसेवक प्रभुजनों के घोड़े और अनुचर आदि खड़े होते थे और दूसरी ओर बादशाह की अंग-रक्षक सेना का स्थान था, जहाँ सोने के साज से सजे हुए हाथी, घोड़े आदि भी खड़े किये जाते थे। आँगन के बाद संगमर्मर का बना एक बडा दालान था। बड़े-बड़े कर्मचारी, उमरा, राजाओं के साथ आये हुए मित्र और सेनानायक आदि उसी में प्रतीक्षा किया करते थे। इसके बाद विचित्र शिल्प-कला से अलंकृत, सुन्दर स्तम्भों वाला, लाल संगमर्मर का एक विशाल कक्ष था। वह बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के लिए बना प्रतीक्षा-गृह था।

राजा पृथ्वीसिंह और दलपतिसिंह ने आँगन में अश्वों से उतरकर दालान में प्रवेश किया। उनको देखते ही नासिरखाँ शीघ्रतापूर्वक उनके पास आया और बोला, "राजा पीथल, आज दो-तीन बार बादशाह सलामत ने आपको याद किया है। उनकी आज्ञा है कि आते ही आप दीवानखाने में उपस्थित हो जायें।"

पीथल—"बादशाह सलामत कहाँ विराजमान हैं? उनके साथ और कौन-कौन है?"

नासिरखां—"नदी किनारे के संगमर्मर-मंडप में हैं। राजा बीरबल और खानखाना साथ हैं।"

दलपति को वहीं प्रतीक्षा करने के लिए कहकर राजा पीथल अन्दर चले गए। दलपति बैठने के लिए स्थान देख ही रहा था कि पास खड़ा हुआ एक तुर्क योद्धा बोल उठा, "वाह रे वाह! इस काफ़िर कुत्ते का घमंड तो देखो! मुसलमानों के पैरों की धूल चाटने लायक भी तो नहीं है, मगर बड़प्पन कितना!" इस असभ्य प्रलाप को सुनकर दलपति के शरीर में मानो आग लग गई। तलवार की मूठ पर हाथ रखता हुआ वह अपने स्वामी की निन्दा करनेवाले उस आदमी की ओर मुड़ा और तैश में भरकर बोला, "क्या कहा तुमने?" प्रतिपक्षी ने भी तीव्रता के साथ तलवार निकाल ली और गरजकर कहा, "क्या? सुनना है, क्या कहा?" उस भीमकाय मुस्लिम योद्धा के सामने दलपति भी सिंह के समान डटकर खड़ा हो गया। लड़ाई होने ही वाली थी कि नासिरखां की आवाज वहाँ गूँजी, "दुनिया के बादशाह के महल में लड़ाई करने की हिम्मत किसकी है?"

वह राज-श्वशुर समीप आया और बोला, "झगड़े का क्या कारण है, कासिम बेग? तुमको राजमहल में आते इतने दिन हो गए, अब तक तुम यहाँ के तौर-तरीके को समझ नहीं सके? तलवार को म्यान में डालो।" इसके बाद उसने दलपतिसिंह की ओर मुड़कर देखा और पूछा, "तुम कौन हो? किसके साथ आए हो? बादशाह के महल में जगह और वक्त का खयाल किये बिना लड़ाई क्यों छेड़ी?"

प्रश्नकर्ता के अपरिचित होने पर भी दलपतिसिंह ने घटना का सच्चा विवरण बता दिया। नासिरखाँ के मुँह पर कोई भाव-भेद नहीं हुआ। उसने कहा, "तुम अपने-आपको पृथ्वीसिंह की सेना का एक नायक बताते हो, इसलिए तुम्हें रोकने का हक मुझे नहीं है। फिर भी इतना तो कहना ही पड़ता है कि राजमहल का तौर-तरीका अभी सीखना बाकी है।" और,

यह कहकर वह भी अन्दर चला गया।

स्वामी ने अभी रास्ते में ही जो सलाह दी थी उसको इतनी जल्दी भुला देने का दलपतिसिंह को पछतावा हुआ। निबटारा करने आने वाले व्यक्ति ने सारी बाते जानने के बाद भी कासिमबेग को, जो सचमुच अपराधी था, कुछ न कहकर उसे ही खरी-खोटी सुनाई, इसका कारण भी उसकी समझ मे नही आया। इस प्रकार जब वह खिन्न होकर वहाँ खडा था, एक आदमी उसके पास आकर बातें करने लगा।

उसने कहा, "मै सब देख रहा था। नासिरखाँ राजा पीथल का शत्रु है। इसीलिए उसके अंगरक्षक कासिमबेग को इस प्रकार असभ्यता के साथ बाते करने की हिम्मत हुई। नासिरखाँ ने उसे डाँटा तक नही।"

सुनते ही दलपतिसिंह ने पहचान लिया कि वही व्यक्ति राजा पीथल का शत्रु नासिरखाँ था। उसने मन मे सोचा—चलो, नासिरखाँ को देख तो लिया; कासिमबेग के व्यवहार का प्रतिकार फिर कर लेंगे। इस बीच, नव-परिचित व्यक्ति कहता ही जा रहा था, "इस प्रकार की लडाई न होने देने के लिए हम लोग अपने मालिकों के समान ही अपने-अपने पक्ष के लोगो के साथ खड़े हो जाते हैं। इस पंक्ति मे जो खड़े है वे राजा मानसिंह, बीरबल, अबुल फजल आदि के अनुचर है। आप राजा पीथल के साथ आए है इसलिए हमारे साथ आ जाइये। दलपतिसिंह ने इस आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। फिर भी अपने साथी का नाम, स्थान आदि जान लेने के खयाल से उसने नम्रतापूर्वक परिचय पूछा।

"मेरा नाम महाबतराय है। राजा बीरबल के साथ आया हूँ। उनका दीवान हूँ। आपका शुभ नाम क्या है?"

"मेरा नाम दलपतिसिंह है। आज ही राजा पीथल की सेना के एक विभाग का उप-नायक नियुक्त हुआ हूँ।"

महाबतराय के साथ वह भी दूसरे पार्श्व मे जाकर खडा हो गया। उस दल के सभी लोग हिन्दू थे और बातचीत मे कितना समय बीत गया, पता ही नही चला। पाँच बजे राजमहल से लोग बाहर निकलने लगे। नासिर

खाँ और राजा पीथल को 'हस्तेन हस्ततलमात्तसुखं गृहीत्वा' मित्र-भाव से आते देखकर दलपतिसिंह को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि राज-सेवा का पाठ बहुत-कुछ सीखने को है—एक-दो दिन में नहीं आ जायगा। खाँ और राजा हँसते हुए बाहर निकले थे, परन्तु राजा की प्रसन्नता सुप्रत्यक्ष होने पर भी खाँ की मुस्कराहट के अन्दर विषाद और द्वेष की झलक थी। उसका हेतु भी शीघ्र ही प्रकट हो गया। राजा के पीछे चोबदार आ रहे थे जो दो सोने के थालों में जरी के कपड़े और आभरण लिये हुए थे। सभी ने अनुमान कर लिया कि बादशाह ने राजा पीथल को कोई बड़ा पद दिया है और उसकी खिल्लत और पारितोषिक है यह सब।

सबको सुनाकर नासिरखाँ ने कहा, "महाराज, आप बड़े खुशनसीब हैं। बादशाह इसी तरह हमेशा आप पर अपनी मेहर की नजर रखें!" इसके उत्तर में राजा पीथल ने कहा, "मित्रवर! आपकी शुभ कामना को मैं एक आशीर्वाद मानता हूँ।" इतने में और लोग भी आकर उन्हें बधाइयाँ देने लगे। पीथल दलपतिसिंह के साथ अपने महल की ओर रवाना हो गए।

अब तक हम राजमहलों और सामन्तों तथा प्रभुओं के प्रासादों में उच्च श्रेणी के लोगों के साथ रहे हैं। अब चलें, जरा गरीबों की झोंपड़ियों की भी सैर कर आयें। आगरा राजधानी यदि राजसेवकों, धनिकों और प्रभुजनों के लिए स्वर्ग-समान सुखदायी थी तो गरीबों और दीन-दुःखियों के लिए साक्षात नरक भी थी। राजमार्गों को छोड़कर शेष सब मार्ग गंदे, संकरे और दुर्गन्धपूर्ण थे। उन्हें सड़क न कहकर गलियाँ ही कहना ठीक होगा। उनके दोनों किनारों पर इमारतें इतनी सटी हुई बनी थीं कि वहाँ हवा का संचार भी कठिन होता था। संक्रामक रोगों का तो नगर अड्डा ही बन गया था। मुख्य सड़कों पर सशस्त्र सैनिकों और प्रभुजनों के अनुचरों आदि

की आक्रामक प्रवृत्तियों का सदा भय बना रहता था, इसलिए जन-साधारण और धनिक व्यापारी आदि इन गलियो मे ही ऊँचे-ऊँचे मकान बनाकर रहते थे।

नगर मे जहाँ देखो वही भिक्षुक घूमते हुए दिखलाई पडते थे। उनमे से बहुत-सो को बादशाह के कर्मचारियों ने गुप्तचरो के रूप मे नियुक्त कर रखा था, इसलिए शहर की सडकों पर स्वतंत्रता से बातचीत करने में भी जनता डरती थी। नगर का कोतवाल पुलिस के अधिकार सुचारु रूप से चलाता था। मुहल्लों के चौधरी चोरी आदि को रोकने के लिए पूरी तरह से तत्पर रहते थे, परन्तु इनमे से किसी में भी इतनी शक्ति नहीं थी कि वह धूर्त प्रभुओ के अनुचरो की दुष्ट प्रवृत्तियो को रोक सकता। संक्षेप मे इतना कह देना पर्याप्त होगा कि गरीबो की अवस्था बडी क्लेशमय थी।

मनुष्य-स्वभाव मे कोई भी कष्ट सह लेने को शक्ति होती है। अत्यधिक हो जाने पर कष्ट को रोकने और कम होने पर उससे बच जाने की बुद्धि मनुष्य मे स्वतःसिद्ध है। इसलिए गरीब लोग किसी प्रबल व्यक्ति के आश्रित बनकर उसकी छत्रछाया मे ही जीवन व्यतीत करते थे। धनी व्यापारियो को शाही दरबार मे और मंत्रियो के पास प्रवेश सुलभ होता था, इसलिए मुहल्लों के अन्दर जाकर उपद्रव मचाने का साहस लोग नहीं करते थे।

नगर की इस स्थिति के कारण हिन्दू स्त्रियाँ कभी मुहल्लो से बाहर नही जाती थी। फिर भी अमावस्या और पूर्णिमा आदि को सभी लोग यमुना मे स्नान करके नदी के उस पार श्रीकृष्ण-मन्दिर मे दर्शनों के लिए जाया करते थे। इन अवसरों पर स्नानघाट पर विशेष प्रबंध रखने के लिए बादशाह ने शहर कोतवाल को आज्ञा दे रखी थी।

नदी के उस पार, मन्दिर के पास ही, बादशाह बाबर के स्मारक के रूप में बना हुआ चारबाग नाम का उद्यान था। उसे आजकल रामबाग कहा जाता है। त्योहारों के दिनो में वहाँ हिन्दू जनता आबाल-वृद्ध एकत्र होती थी और मेला लगता था। बादशाह के आदेश से इन अवसरों पर सैनिकों और मुसलमानो को वहाँ जाने की मनाही कर रखी गई थी। इसलिए हिन्दू

स्त्रियाँ वहाँ निर्भय होकर घूम-फिर सकती थीं।

उपवन के बाहर, उसके पास ही, एक छोटी-सी झोपडी थी। बाहर से देखने पर वह निर्जन-सी मालूम होती थी। परन्तु सच बात यह नहीं थी। उसके अन्दर बाध की खाट पर पडा हुआ एक आदमी अपनी अन्तिम श्वासें गिन रहा था। बहुत दिनों से रोगाक्रान्त होने के कारण वह अस्थि-पंजर-मात्र रह गया था। आयु पचास वर्ष के ऊपर न होने पर भी सेवा-शुश्रूषा के अभाव में उसकी यह गति हो गई थी।

वह व्याकुल होकर अपने-आप कह रहा था—"मेरी बेटी! पद्मिनी! तुम अभी तक नहीं आई! कब तक मैं इस तरह पडा रहूँगा? ईश्वर और इन नन्हे बच्चों को छोडकर मेरा अवलम्बन कौन है? मेरे ऐसे जीवन से क्या लाभ?...." और फिर वह मर्मान्तिक पीडा से कह उठा—"किसी तरह मर जाऊँ तो...!" किन्तु जैसे ही उसके मुँह से ये शब्द निकले, उसके शरीर में नए प्राण-से आ गए और वह भगवान् को स्मरण करके कहने लगा—"भगवान्! भूतेश्वर! मुझे क्षमा करो! अपना कर्तव्य पूर्ण किये बिना मरना भीरुओं का काम है। यदि मैं अभी मर जाऊँ तो मेरी बच्चियाँ क्या करेंगी? मेरे दुःखों का प्रतिकार कौन करेगा? नहीं, मैं अच्छा हो जाऊँगा! श्रीभूतनाथ ही मेरी सहायता करेंगे ...!"

इस प्रकार प्रलाप करता पडा हुआ वह रोगी कौन है? वह इस झोपडी में कैसे आ गया? उसकी जीवन-कथा निम्न थी: लाहौर से आगरा आने वाले राजपथ से कुछ दूर बानूर नाम का एक ग्राम है। वह भाटी लोगों का, जो अपने को चन्द्रवंशीय मानकर अपने इस सौभाग्य पर गौरव करते थे, निवास-स्थान था। उस ग्राम में गजराज नाम का एक धनिक अपनी अत्यन्त रूपवती पत्नी और दो कन्याओं के साथ रहता था। एक दिन उस प्रभावशाली और प्रतिष्ठित गृहस्थ के घर में एक मुसलमान प्रभु अपने तीन-चार अनुचरों के साथ आया। उसने बताया कि लाहौर से आगरा आते समय एक तस्कर-संघ ने उस पर आक्रमण किया और सब-कुछ लूट लिया। अनुचरों में बहुत से मारे गए। उसे एक रात उसके घर में रहने

की सुविधा चाहिए। गजराज ने अपनी स्थिति के अनुसार उसका सत्कार किया और सब सुविधाएँ कर दी। वह मुसलमान प्रभु अपने अनुचरों के साथ उस रात को वहाँ आराम से रहा। दूसरे दिन जब वह जाने लगा तो उसे विदा करने के लिए गजराज उसके पास गया। उस समय उसे जो दृश्य दिखलाई पडा उससे उसका हृदय विदीर्ण हो गया। उसके सेवकों ने गजराज की रोती-पीटती हुई पत्नी को एक घोड़े पर बाँध लिया था और वे अपने अधिकार-प्रमत्त प्रभु के साथ सडक पर आगे निकल गए थे। गजराज 'किंकर्तव्य विमूढ' होकर थोड़े समय वहाँ खडा रहा। बाद मे उसने सरहिन्द के सूबेदार के पास, जो उसका मित्र था, फरियाद की। सूबेदार ने अविलम्ब उसकी स्त्री की रक्षा करने के लिए अपने सैनिको को भेजा, परन्तु जब सैनिक लौटकर आये तब उसका रुख बदल गया। उसने कहा कि आपने एक सम्मान्य अमीर का अपमान किया है, जो बहुत बडा अपराध है, किन्तु आप मेरे मित्र है इसलिए आज मैं आपको क्षमा करता हूँ। यह सुनकर गजराज क्रोध मे आ गया और उसने सूबेदार को कडा जवाब दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे तीन मास के लिए कारागृह मे डाल दिया गया। कारावास ने गजराज की शारीरिक शक्ति को तो तोड दिया, किन्तु पत्नी के अपमान का दुःख और उसके प्रतिकार की ज्वाला उसके हृदय मे धधकती ही रही। जब वह कारागृह से वापस आया तो उसने देखा कि राजद्रोह के अपराध में उसकी सारी जमीन-जायदाद जब्त कर ली गई है और उसके बच्चे किसी सम्बन्धी के आश्रय मे रह रहे है। अपना सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी वह निराश नहीं हुआ। उसने प्रतिज्ञा की कि इस प्रकार जिसने मेरा सर्वनाश किया है उससे बदला लेकर ही चैन लूँगा। इसके बाद वह अपने बच्चों को लेकर आगरा के लिए रवाना हो गया। उसकी पद्मिनी और सुलोचना नाम की दो कन्याएँ थी, जिनकी आयु क्रमशः तेरह और दस वर्ष की थी। धर्मशालाओ मे भोजन करता हुआ और बीच-बीच मे यथाशक्ति काम करता हुआ वह दोनों बालिकाओं को लेकर किसी प्रकार मथुरा पहुँचा। यात्रा-श्रम के कारण वह

लगभग एक मास वहीं रहा। बाद में कुछ संन्यासियों के साथ आगरा के लिए रवाना हुआ। मार्ग मे रोग-ग्रस्त हो गया और बड़े कष्ट से राजधानी पहुँचा। राजधानी के महा प्रासादों और नदी-तट पर विराजमान रमणीय हर्म्यों को देखकर उसकी व्याकुलता और भी बढ गई। शायद शारीरिक और मानसिक यातना असह्य हो जाने के कारण ही हो, वह चारबाग नाम के पूर्वोक्त उपवन के पास मूर्छित होकर गिर पडा। किसी कृपालु पथिक ने उसे वहाँ से उठाकर इस झोपडी मे सुला दिया।

लगभग एक मास से वह अभागा इसी झोपडी मे पडा था। पद्मिनी और सुलोचना यमुना नदी मे स्नान करने आने वाली महिलाओं से कुछ भिक्षा माँगकर अपना और अपने पिता का उदर पोषण करती और पिता की सेवा भी करती थीं। गन्दे और फटे कपड़े पहनने पर भी तारुण्य में प्रवेश करनेवाली पद्मिनी के सौन्दर्य और दोनो बहनों के मुख पर प्रत्यक्ष झलकनेवाली कुलीनता से लोगों के हृदय सहज ही दयार्द्र हो उठते थे। इसलिए अधिकतर लोग उन्हे शक्ति-भर भिक्षा दे दिया करते थे। धीरे-धीरे पद्मिनी को स्वयं बोध होने लगा कि उसकी मुस्कान मे माधुर्य है और उसके प्रतिदिन विकसित होने वाले अंग-लावण्य में लोगों को आकर्षित करने की शक्ति है। छोटी सी सुलोचना बहन के पीछे-पीछे रहती। न वह कभी भिक्षा माँगती और न किसी से रसिक बातें करने का प्रयत्न ही करती थी।

एक अमावस्या के दिन दोनों बहनें चारबाग में देवाराधना के बाद लौटनेवाले लोगों की प्रतीक्षा करती हुई मार्ग के किनारे खडी थीं। उस दिन राजधानी से बहुत से लोग आये थे, इसलिए सप्ताह-भर की गुजर के लिए भिक्षा मिल जाने की आशा थी। उस समय सुलोचना ने अपनी बहन पद्मिनी को एक सुन्दर युवक के साथ बातें करते देखा। वह युवक कभी-कभी वहाँ आता था और जब आता, कम-से-कम एक रुपया तो पद्मिनी के हाथ मे दे ही जाता था। इसलिए सुलोचना को इसमे कोई विशेषता नहीं मालूम हुई। इसी समय हाथ में जप-माला लिये एक वृद्धा आती दिख-

लाई पड़ी, इसलिए सुलोचना उसके निकट जाकर भिक्षा माँगने लगी—"माईजी! कुछ दीजिए! दो दिन से भोजन नहीं किया!" उसके स्वर-माधुर्य और दीन-भाव ने वृद्धा के मन को द्रवित कर दिया और उसने एक चाँदी का सिक्का उसके हाथ में रखकर उसे ध्यान से देखा और फिर हृदय से निकली हुई वाणी में आशीर्वाद दिया—"बेटी, भगवान् तेरा भला करें!" अपनी कमाई बहन को दिखाने के उत्साह से सुलोचना भागती हुई वहाँ गई जहाँ पद्मिनी खड़ी उस युवक से बातें कर रही थी। परन्तु पद्मिनी वहाँ कहीं नहीं थी। उसने सब ओर दृष्टि दौड़ाई पर जब कोई चिह्न भी दिखलाई न पड़ा तो चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी···"हाय! मेरी बहन को कोई ले गया!" उसका रोना सुनकर लोग एकत्रित हो गए। प्रश्नों का कोई उत्तर न देकर जब वह रोती ही रही तो एक वृद्ध आगे बढ़ा और उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ पूछने लगा···"बोलो बेटी! क्या हुआ? बात जाने तब तो हम कुछ मदद कर सकेंगे!" जब वह कुछ शान्त हुई तो उसने पिता की बीमारी और बहन के लापता हो जाने की सभी बातें वृद्ध को बताईं। उसकी भाषा, बात करने का ढंग और विनय आदि देखकर वृद्ध को विश्वास हो गया कि यह किसी निम्न कुल की कन्या नहीं है। उसने कहा, "बेटी! चलो मैं भी तुम्हारे साथ तुम्हारे पिता के पास चलता हूँ। तुम रो मत। तुम्हारे पिताजी अच्छे हो जायँगे।"

वृद्ध उसे साथ लेकर उसकी झोंपड़ी की ओर चला। उसके साथ उसका नौकर और पन्द्रह वर्ष की एक पुत्री भी थी। सँवारी हुई मूँछों और गले पर तलवार के घाव के चिह्न से बिलकुल स्पष्ट था कि वह कोई अवसरप्राप्त युद्ध-वीर है। देवाराधना के योग्य वेशभूषा के कारण उसके पद आदि का अनुमान करना सम्भव नहीं था। फिर भी देखने वालों ने अनुमान यही किया कि वह कोई प्रभावशाली व्यक्ति है; इसलिए अन्य सब अपने-अपने रास्ते चले गए। पुत्री, सेवक और सुलोचना के साथ वह झोंपड़ी में पहुँचा। सुलोचना के रोने का वेग कुछ कम हो चुका था। अब उसे बिलकुल ही बन्द करके उसने दबे पैरों झोंपड़ी में प्रवेश किया। वृद्ध पुरुष और उसकी

पुत्री ने भी उसका अनुसरण किया। अपने पास लोगों के चलने का शब्द सुनकर रोगी ने कहा, "बेटी पद्मिनी! आ गई? मुझे बहुत प्यास लगी है। कुछ ला दो!" सुनते ही सुलोचना का बाँध फिर टूट पड़ा। पिता ने व्याकुल होकर पूछा, "क्या हुआ? पद्मिनी कहाँ है? उसको क्या हो गया?"

सुलोचना ने जोर से चीखकर कहा, "हाय पिताजी! दीदी को कोई ले गया!"

गजराज सुनते ही मर्मान्तिक पीड़ा से पुकार उठा, "हे विश्वनाथ! यह भी होने को था! अब मैं किसलिए जिऊँ? उसने दुःखावेग से उठने का प्रयत्न किया, किन्तु शक्ति ने साथ न दिया और वह खाट पर गिर पड़ा।

सुलोचना के साथ आये हुए पुरुष ने शीघ्रता के साथ रोगी के पास जाकर उसकी छाती और नाड़ी देखी। जब मालूम हो गया कि रोगी को मूर्छामात्र आ गई है तब वह शीतोपचार आदि से उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगा। नौकर को बुलाकर कुछ दूध और फल आदि ले आने की आज्ञा दी। पिता की मूर्छा से और भी व्याकुल हो जाने वाली सुलोचना को वृद्ध और उसकी पुत्री ने समझा-बुझाकर समाधान बँधाया।

मूर्छा से उठने पर गजराज ने अपने पास बैठे हुए वृद्ध और सुलोचना को धैर्य बँधाती हुई उसकी पुत्री को देखा तो वह चकरा गया। उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी, परन्तु अभ्यागत ने केवल एक ही उत्तर दिया, "थोड़ा दूध पी लो। दो-चार अंगूर खाओ। थोड़े ठीक हो जाओ फिर सब बातें करेंगे।"

कुछ देर तक गजराज निश्चेष्ट पड़ा रहा, परन्तु अभ्यागत के आग्रह से उसने कुछ दूध और फल ले लिया। उसके बाद ईश्वर की कृपा से अपने सहायक बनकर आये हुए वृद्ध से बोला, "सब कुछ कहने की शक्ति अभी मुझमें नहीं है। फिर भी इस भीषण विपत्ति में आप सहायक बनकर आए यह ईश्वर की कृपा है। इसे मैं जीवन-भर नहीं भूलूँगा।"

गजराज की बातों से वृद्ध को और भी निश्चय हो गया कि मेरा अनुमान गलत नहीं है—यह केवल याचक अथवा निकृष्ट व्यक्ति नहीं है।

सब बातें जानने की उत्सुकता होने पर भी धीरज रखना ही उसने उचित समझा। गजराज जब फिर बोलने लगा तो उसे रोककर वृद्ध ने कहा, "आप अभी अस्वस्थ है। इस समय अधिक थकना नही चाहिए। आप पहले अच्छे हो जाइए, फिर सब-कुछ कहे-सुनेंगे।"

"मै अब कैसे अच्छा हो सकता हूँ?" गजराज ने निराशा के साथ गहरी साँस लेते हुए कहा, "अभी जो हुआ है वह घाव मे काँटा छिद जाने के समान है। यह भी भगवान् की इच्छा है। मर जाऊँ तो ही अच्छा। सब कष्टो का अन्त हो जाय!"

वृद्ध—"ऐसा मत कहो। मनुष्य के ऊपर विपत्तियाँ आती ही रहती है। सब प्रकार के दुःखो को सहन करके अपना कर्तव्य पूर्ण करना ही मनुष्य का धर्म है।"

गजराज—"सच है। मुझे मरना नही है। अपने पर हुए भयानक अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए मुझे जीवित रहना ही है।"

रोगी का क्रोध और सन्ताप बढता देखकर वृद्ध ने कहा, "मेरी बात सुनिए। आप और आपकी पुत्री अब मेरे साथ चलें। कोई कठिनाई न होगी; आपको डोली मे लिवा जाऊँगा। स्वस्थ हो जाने के बाद आप जो चाहें कर सकते हैं।"

उसकी कन्या ने भी कहा, "पिताजी, इनको हम अपने साथ ही ले जायेंगे। यह छोटी सी बच्ची अकेली यहाँ कैसे रहेगी?"

गजराज ने उत्तर दिया, "मै रोगी हूँ और यह छोटी सी बच्ची है। हमको ले जाने से आपको कष्ट ही तो होगा!"

आगत—"आप ऐसा न सोचिए। मैं शहर से कोई सात मील दूर रहता हूँ। बादशाह के मृगया-वन का पालक हूँ। मेरा नाम किशनराय है। बादशाह की असीम कृपा से मेरे यहाँ कोई असुविधा या कष्ट नही होगा। स्थान भी बहुत स्वास्थ्यकारी है।"

गजराज ने मान लिया कि यह सब कहने वाला एक देवदूत ही है; नहीं तो ऐसे अवसर पर ऐसी सहायता कैसे मिलती। महा विपत्ति की

मूर्धन्यावस्था में ही भाग्योदय होता है। निकृष्टतम मृत्यु से अपने को और भीषणतम विपत्तियों से अपनी पुत्री को बचाने वाले भगवान् को उसने मनसः प्रणाम किया। उसके मुख-भाव से उसकी सम्मति जानकर किशनराय ने सेवक को बुलाकर शहर से डोली ले आने की आज्ञा दी।

पहले ही बताया जा चुका है कि राजा पीथल अकबर के पास से प्रसन्न होकर लौटे थे। उनकी मनसबदारी एक हजार से बढ़ाकर दो हजार कर दी गई थी। उनको साम्राज्य के मुख्य उमराओं में सम्मिलित कर लिया गया था। यह बात जब उन्होंने स्वयं बादशाह के श्रीमुख से सुनी तो उनके आनन्द की सीमा न रही। इन्द्र के समान प्रतापी भारत-सम्राट् के स्नेहादरादि का पात्र बनने में किसको अभिमान और आनन्द न होता! इसके अतिरिक्त, महान् अकबर के विशेष स्नेह-पात्र बनने में कितना गौरव था! परन्तु राजा पीथल के आनन्द का कारण केवल इतना ही नहीं था। वे जानते थे कि बादशाह की निकटतम मंडली में ही एक दल उनका विरोधी है और उस दल का मुखिया हैं नासिरखाँ। वह दल तरह-तरह के व्याज-प्रयोगों और षड्यन्त्र से पीथल के प्रति बादशाह के स्नेह को मिटा देने का प्रयत्न किया करता था। उनके मित्र महाराजा मान-सिंह बंगाल के सूबेदार बना दिये जाने से दूर हो गए थे। इतना ही नहीं, यह भी सुनाई देता था कि अकबर उनसे सन्तुष्ट नहीं हैं। शाहजादा दानि-याल के प्रति बादशाह का विशेष वात्सल्य भी शाहजादा सलीम और महाराजा मानसिंह के प्रति अप्रीति का लक्षण माना जाने लगा था। लोग शंका करते थे कि राजा पीथल भी उस अप्रीति के भाजन बने हुए हैं। इधर, कई दरबारों में पीथल आमन्त्रित नहीं किये गए थे। पीथल का वाक्-चातुर्य जिस सभा में नहीं है वह सभा ही नहीं—ऐसा कहने वाले बादशाह ने जब स्वयं कई दरबारों में उन्हें आमन्त्रित नहीं किया तो जनता ने सहज

ही समझ लिया कि इसका कारण बादशाह का असन्तोष है। इस नये पद और सम्मान से सिद्ध हो गया कि वे सब शंकाएँ निराधार थी और राजा पीथल पहले के समान ही बादशाह के अनन्य मित्र बने हुए है।

इतना ही नहीं, उस समय साधारण अमीर लोगो को पहले के समान बड़ी-बड़ी मनसबदारियाँ देने की प्रथा नहीं थी। पाँचहजारी मनसबदारी केवल शाहजादाओ को दी जाती थी। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को तीन-हजारी और मुख्य मन्त्रियो तथा उमराओ को दो हजारी मनसबदारी दी जाती थी। ऐसी स्थिति मे बिना किसी कारण के यह भारी और अनपेक्षित सम्मान मिलने से स्वयं पीथल भी चकित हुए बिना न रह सके। उन्होने मान लिया कि यह कोई बहुत बडा काम सौपा जाने अथवा किसी बड़े पद पर नियुक्त किये जाने की भूमिका है।

किसी भी हालत मे, उन्होने माना कि दलपति का आना शुभ शकुन हुआ है और उसका एक फल है यह गौरव प्राप्त होना। वापस आते समय उनका मन बादशाह के विचारो, उद्देश्यो और अपेक्षाओ आदि पर घूमता रहा, अतएव उन्होने दलपति से कोई बात नहीं की। अन्त मे, आज्ञा मिलने तक किसी विषय मे सिरपच्ची करना व्यर्थ जानकर उन्होने अपने मन को नियन्त्रित किया और दलपति को संकेत से अधिक निकट बुलाकर कहा, "मेरे मित्र! जान पड़ता है, तुम्हारे आते ही मेरा भाग्य खुल गया है। आज बादशाह ने प्रसन्न होकर मेरी मनसबदारी तथा पद को आशा से अधिक बढ़ा दिया है। इसलिए मै तुम्हारा स्थान भी बढा देना चाहता हूँ।"

दलपति—"महाराज! ईश्वर की कृपा और बादशाह की प्रसन्नता से आपकी उन्नति हुई। इससे मुझे असीम आनन्द है। परन्तु आपके पास से अधिक सम्मान प्राप्त करने के लिए मैंने अभी कोई योग्यता नहीं दिखाई। इसलिए यही ठीक होगा कि आपने मुझे जहाँ नियुक्त किया है वही मैं सेवा करता रहूँ।"

पीथल—"तुम्हारी ये बाते ही तुम्हारी विश्वस्तता की परिचायक है।

जब तुम कार्य की खोज में मेरे पास आये थे तब मैं द्वितीय श्रेणी का अधिकारी था। तब मैंने तुमको अपनी सेना मे एक उपनायक बनाया था। अब मैं साम्राज्य के मुख्य उमराओं मे से एक बन गया हूँ। इसलिए तुम्हारा स्थान भी बढ़ा देने में कोई गलती नहीं है। यह उचित ही है न कि मेरी उन्नति से मेरे आश्रितजनों की भी उन्नति हो! फिर सुबह तो मैंने यह निर्णय भी नहीं किया था कि तुम्हे किस पद पर नियुक्त करना चाहिए।"

दलपति ने आगे कोई बाधा उपस्थित नहीं की। राजा पीथल ने फिर कहा, "परसों शाहजादा दानियाल के महल मे एक उत्सव है। मुझे आमन्त्रण है और जाने के लिए बादशाह का आदेश भी है। तुम भी मेरे साथ आना। सेठजी ने भी तो कहा था न कि उनकी मित्रता सम्पादित करने का प्रयत्न करना ?"

दलपति—"पहले उनसे मिले बिना उत्सव में जाना उचित होगा ?"

पीथल—"मामूली तरह से तो उचित न होता। परन्तु तुम मेरे साथ जाते हो तो कोई गलती नहीं है और तुम तो रामगढ़ के राजकुमार हो, इसलिए शाहजादा इस प्रकार के शिष्टाचार की परवाह नही करेंगे। सम्राट् की आयु बढ़ने के साथ-साथ राजकुमारों की दलबन्दी भी बढ़ रही है। किसी भी दल में सम्मिलित होना आवश्यक नहीं है, परन्तु सबसे मिलकर रहना आवश्यक है।"

दलपति—"आप तो इन सब को भली भाँति जानते होंगे। सम्भावना क्या है, कुछ अनुमान है ?"

पीथल—"इस प्रकार की बातचीत बहुत सावधानी से करनी चाहिए। राजा के चार आँखें होती हैं। यह तत्त्व प्रकट रूप में जितना यहाँ देखोगे उतना और कही नहीं देख पाओगे। फिर भी गुप्त बातें करने के लिए सबसे उपयुक्त स्थान राजवीथियाँ ही हैं। हम देख तो सकते हैं कि पास कौन-कौन है ?"

उत्तराधिकार आदि के विषय में पीथल ने कुछ नही कहा। शायद

उन्होंने यह सोचकर मौन रहना ही उचित समझा कि नये सेवक से सब बातें कह देने से उसकी अनभिज्ञता के कारण कभी संकट भी आ सकता है। दलपति ने भी इस विषय में अधिक उत्सुकता प्रकट नहीं की।

दोनों पीथल के निवास-स्थान पर पहुँच गए। उसी समय राजा ने अपने मुख्य प्रबन्धक को बुलाकर सूचना दी कि दलपति को उन्होंने अपनी सेना में उपनायक नियुक्त किया है, उसका वेतन साढ़े सात सौ रुपये होगा और अन्य प्रबन्ध होने तक अंग-रक्षक के रूप में वह सदा उनके साथ रहेगा। उसकी मर्यादा के अनुसार वस्त्र, आयुध तथा अलंकारों के लिए दो हजार रुपये अलग दे देने की आज्ञा भी उन्होंने दे दी। बाद में उन्होंने दलपतिसिंह से कहा, "शहर में नये आए हो। अपने रहने आदि का प्रबन्ध करना होगा। इसलिए परसों शाम तक के लिए तुम्हें अवकाश है। अभी जा सकते हो।"

इस प्रकार द्वार से ही दलपतिसिंह को विदा करके राजा पीथल ने गृह में प्रवेश किया। उसी समय उनके एक निकट कर्मचारी ने आकर बताया कि शेख मुबारक आपसे कुछ बातें करने के लिए गुप्त रूप से आये हैं और अन्दर बैठे हैं।

अबुल फजल और फैजी के पिता शेख मुबारक बादशाह के सम्मान्य गुरुवर थे। इन्होंने बाल्यकाल में ही फारस से भारत आकर अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा से प्रतिष्ठा उपार्जित कर ली थी। सूफियों के ये एक मुख्य पुरोहित थे। यह पन्थ बहुत-कुछ वेदान्त मार्ग का अनुसरण करता है। अन्य धर्मों और मतों के प्रति द्वेष और घृणा सूफियों में नहीं होती। इस महान् व्यक्ति के उपदेशों के अनुसार ही बादशाह ईसाई, पारसी, जैन, हिन्दू आदि विविध धर्मावलम्बियों को आमन्त्रित करके राजसभा में धर्म-सम्बन्धी चर्चाएँ करवाया करते थे। परन्तु कट्टर मुसलमानों को यह सब कितना अप्रिय होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। मुसलमान बादशाह की राजसभा में ईसाई लोग जब इस्लाम धर्म पर आक्षेप करने लगे तो उन लोगों के बीच भयानक हलचल मच गई। मुसलमान उमराओं

और मुल्लाओं का विश्वास था कि इस सब भ्रष्टाचार का कारण शेख मुबारक और उनके काफिर बेटे थे। इसलिए उनके मन में हिन्दू, ईसाई आदि अन्य धर्मावलम्बियों की अपेक्षा अधिक वैर शेख मुबारक के प्रति था।

धीरे-धीरे मुबारक के मन में भी इस्लाम के प्रति आदर कम हो गया। उनको विश्वास हो गया कि मुगल-साम्राज्य को दृढ़ बनाने और भारत के सब लोगों को एक सूत्र में बाँधने का उपाय किसी ऐसे नये धर्म की स्थापना करना है जो सबको मान्य हो सके। उनकी वृद्धावस्था की इस प्रेरणा से ही अकबर ने 'दीन इलाही' नाम के नये धर्म का प्रचार आरम्भ किया था। अकबर अनेक सद्गुणों के आगार थे। सम्राट् के लिए आवश्यक सभी गुण उनमें मौजूद थे। परन्तु अपनी प्रशंसा सुनने का एक भारी दोष भी उनमें था। चाटुकारिता पर विश्वास करना सभी राजाओं का सामान्य दोष प्रसिद्ध है। अकबर में यह दोष सीमा को पार कर गया था। शेख मुबारक कहा करते थे कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होता है और सम्राट् तो अल्लाह का अंशावतार ही है। इस बात पर अकबर धीरे-धीरे विश्वास करने लगे। इसलिए अपने स्थापित किये हुए उस 'दैविक धर्म'—दीन इलाही—में उन्होंने सम्राट् को ही ईश्वर का प्रतिनिधि मानने का विधान कर दिया।

अनेक धर्मों का उद्भव तथा पराभव देखने के अभ्यस्त हिन्दुओं को इस नये धर्म में कोई विशेष महत्त्व दिखलाई नहीं पड़ा। परन्तु मुसलमान प्रजा ने मान लिया कि उसकी शक्ति नष्ट करने के लिए किसी ने बादशाह को यह उपाय सुझाया है। सिंहासन का उत्तराधिकारी शाहजादा सलीम उसके अनुकूल था, अतएव वह साहस के साथ इस नये धर्म को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु शासन-कार्य में सदा जागरूक और विवेकी अकबर के प्रताप के कारण उसके सब प्रयत्न विफल होते रहे।

इस समय शेख मुबारक की आयु पचासी वर्ष से ऊपर हो चुकी थी। फिर भी उनमें शारीरिक और बौद्धिक शक्ति की कमी बिलकुल नहीं हुई थी। लम्बी सफेद दाढ़ी, सफेद भौंहें, लम्बा आजानुबाहु शरीर और उसे

ढकने वाला लम्बा, काला अगरखा—इस प्रकार शेख साहब के रूप को देखते ही कोई भी स्वीकार कर सकता था कि मनुष्यों के हृदयों पर स्वच्छन्द शासन करने की शक्ति उनमें स्वतःसिद्ध है।

शीघ्रतापूर्वक वस्त्रादि बदलकर राजा पीथल ने उनके पास जाकर प्रणाम किया। उन्हें विश्वास था कि बादशाह की किसी विशेष प्रेरणा के कारण ही इस समय उनका आगमन हुआ है। इसलिए उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया कि सावधानी से काम लेना आवश्यक है।

पीथल ने जब कमरे में प्रवेश किया उस समय शेख मुबारक आँखें बन्द किये मानो ध्यानमग्न बैठे थे। पैरों की आहट से उन्होंने आँखें खोलकर पीथल को देखा और कहा, "आप आ गए? मेरे इस समय आने से आपको कोई विशेष असुविधा तो नहीं हुई?"

पीथल ने उत्तर दिया, "आप जैसे महात्माओं के दर्शन ही पुण्य से मिलते हैं। फिर मुझे असुविधा कैसे हो सकती है? आप जब पधारे उस समय मैं यहाँ उपस्थित नहीं था। इसलिए आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ?"

शेख—"नहीं, नहीं!"

पीथल—"तो भोजन के लिए कुछ मँगवाऊँ? काबुल से सूबेदार ने शहतूत भेजे हैं। कश्मीर से एक विशेष प्रकार के अंगूर भी आये हैं। थोड़े से आप लेंगे तो अनुग्रह मानूँगा। आप जैसे महात्माओं के दर्शन सदा नहीं होते न!"

शेख—"हमारे बीच यह सब शिष्टाचार किसलिए? आप जानते हैं, आपको मैं अपने पुत्र के समान मानता हूँ। फिर यह सब क्यों?"

पीथल—"ऐसा न कहिए। मित्रों के बीच भी विशेष रूप से आचारोपचार की आवश्यकता होती है। फिर आप जैसी विभूतियाँ स्वयं पधारें तो···"

शेख—"अच्छा। आपकी ही इच्छा सही। थोड़े से अंगूर और दूध लाने को कह दीजिए। अवस्था के कारण अब मैंने भोजन बहुत कम कर

दिया है।"

फल और दूध आदि उपस्थित किया गया और उसके बाद राजा पीथल विनयावनत होकर शेख साहब के पास बैठ गए। शेख ने कहना आरम्भ किया, "आपको मालूम होगा कि बादशाह सलामत ने शीघ्र ही दक्षिण जाने का निश्चय कर लिया है।"

"नहीं, उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा।"

"हाँ, आज ही यह निर्णय किया है। कल अबुल फजल का पत्र आया था। उसका कहना है कि यदि बादशाह स्वयं आये तो युद्ध मे शीघ्र ही विजय मिल सकती है। सब-कुछ बहुत गुप्त रखा गया है।"

"अबुल फजल का पत्र आया है ऐसा तो बादशाह सलामत ने कहा था। महानुभाव अबुल फजल सकुशल तो है?"

"अल्लाह की कृपा से सब ठीक है। अलहमदुलिल्लाह! बादशाह का इरादा है कि रवाना होने के पूर्व राजधानी के संरक्षण के लिए कुछ विश्वस्त लोगों को नियुक्त कर दे।"

पीथल को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, "इसके पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ? कोई विशेष बात हो गई है क्या?"

शेख साहब ने राजा के मुख को मर्म-भरी दृष्टि से देखा और फिर कहा, "बादशाह तो अब जवान नहीं रहे। शाहजादा सलीम अजमेर गये हुए हैं। और, आप जानते हैं, उत्तराधिकार के विषय मे पिता-पुत्र मे कुछ मन-मुटाव भी है।"

"कुछ-कुछ सुना है। परन्तु निश्चित रूप से मैं कुछ नहीं जानता।"

"बादशाह के हृदय मे दानियाल के लिए अधिक वात्सल्य देखकर सलीम को शक हो गया कि कहीं उनका अधिकार मारा न जाय। इसलिए उन्होंने बादशाह से प्रार्थना की थी कि तुरन्त ही उन्हें उत्तराधिकारी घोषित कर दिया जाय। आप तो जानते ही हैं कि अन्तःपुर में और धर्मान्ध मुसलमान उमराओं के बीच मे सलीम का प्रभाव बहुत है। बादशाह ने कुछ निर्णय नहीं किया। परन्तु मानसिंह को बंगाल भेज दिया और सलीम को

अजमेर। अब बादशाह के दूर चले जाने पर राजधानी पर अधिकार करने के लिए भाई-भाई मे लड़ाई हो जाने का डर है।"

"जी हाँ! तो उत्तराधिकार के बारे मे कोई निर्णय नही हुआ है ?"

"निर्णय प्रकट नही हुआ है, फिर भी मुझे मालूम है कि बादशाह दानियाल को ही उत्तराधिकार देना चाहते हैं।"

पीथल को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ, परन्तु यह सोचकर कि शंका प्रकट करने का समय और स्थान यह नहीं है, उन्होने केवल इतना ही कहा, "अच्छा !"

शेख ने बात आगे बढाई—"मेरी सलाह भी यही है, आप जानते होंगे। इसका कारण भी मैं बताता हूँ। यह तो सच है कि सलीम बादशाह की प्रधान रानी के पुत्र हैं, परन्तु यदि वे गद्दी पर बैठ जायँ तो भारत फिर से धर्म-द्वेष और उससे उत्पन्न युद्धों से नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। 'दीन-इलाही' मे वे द्वेष करते हैं। अब, विद्वेषी मौलवियों के हाथ के खिलौने बने हुए हैं। उन मौलवी-मुल्लाओं और सलीम के हाथ में अधिकार आ गया तो मुगल-साम्राज्य का नाश हो मान लीजिए। नये धर्म का प्रचार करके हिन्दुओं और मुसलमानों को एक करने का मेरा सारा प्रयत्न विफल हो जायगा। इसलिए सलीम को राज्य न देने की सलाह मैं बादशाह को सदा से देता आया हूँ। थोड़े ही दिन पूर्व उन्होंने उसको स्वीकार भी कर लिया है।"

"शाहजादा दानियाल पिता की ही नीति को कायम रखेंगे और उम्र भी उनकी कम है।"

"दानियाल पटरानी के पुत्र नहीं हैं। उम्र कम है। उतनी सामर्थ्य भी नहीं है। इन सब कारणों से उनका शासन मन्त्रियों पर ही निर्भर करेगा। आप, अबुल फजल आदि सहायक बन जायँ तो बादशाह की नीति से वे विचलित नहीं होंगे।"

इस सम्भाषण से शेख साहब की चिन्ता-गति और चतुराई पीथल की समझ में आ गई। उन्होंने अनुमान कर लिया कि वृद्ध उन्हें भी दानियाल के पक्ष में करने का प्रयत्न कर रहे हैं और उनका उद्देश्य अबुल फजल

आदि को अकबर के बाद भी अधिकारारूढ़ रखने का है। अतएव उन्होंने कुछ समय चुप रहकर कहा, "बादशाह जो चाहते है वही करना मेरा काम है। गृह-युद्ध में किसी एक का पक्ष लेने का न तो मेरा अधिकार है और न शक्ति ही। बादशाह जिसे उत्तराधिकार देंगे उसे ही भावी बादशाह मानना मेरा कर्तव्य है। यदि वे शाहजादा दानियाल को ही वह अधिकार देते हैं तो मैं उनकी भी सेवा वफादारी के साथ करता रहूँगा।"

शेख मुबारक को यह सुनकर प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा, "बादशाह ने भी यही बात कही। इसीलिए तो जब वे दक्षिण जा रहे है तब उन्होंने भंडार का अधिकार नासिर खाँ को, सैन्याधिपत्य आपको और अन्तःपुर की रक्षा शाहजादा दानियाल को सौंपने का निश्चय किया है। आप मानेंगे, यह असीम विश्वास का द्योतक है। मैंने जब उनसे कहा कि राजकार्यों में आपका विचार जानकर ही आदेश देना उचित होगा तो उन्होंने क्या उत्तर दिया, आप जानते हैं? 'अपने पीथल को मै जानता हूँ। चाहें तो आप स्वयं जाकर अपनी शंका का निवारण कर सकते हैं।' इसलिए अत्यन्त गुप्त आज्ञाएँ कल ही निकल जायँगी।"

राजा पीथल ने उचित रूप में अपनी कृतज्ञता और प्रसन्नता प्रकट की और फिर अपनी शंकाएँ प्रकट किये बिना ही कहा, "बादशाह के प्रति मेरी भक्ति अटल है और वह किसी कारण से कम नहीं हो सकती। उन्होंने मुझ पर जो विश्वास दिखाया है और मुझे जो सम्मान प्रदान किया है उसके योग्य न होने पर भी मैं उसकी मर्यादा अक्षुण्ण रखने के लिए सदा प्रयत्न-शील रहूँगा।" इसमें अपनी सहायता करने वाले शेखसाहब का भी उन्होंने आभार माना।

शेख मुबारक ने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा का आलिंगन किया और कहा, "महाराज! यह देखकर कि आपकी बुद्धि और राजभक्ति मेरी आशा से तनिक भी उतरकर नहीं है, मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ। एक ही बात मेरी समझ में नहीं आती—भारतीयों के हित के लिए, हिन्दू-मुसल-मानों की एकता के लिए बादशाह की विशिष्ट बुद्धि से निकले हुए नये धर्म

को आप क्यों नहीं स्वीकार करते ? उसके अधिकतर तत्त्व तो हिन्दू धर्म से ही लिये गए हैं और आपके विश्वासों के लिए बाधक भी नहीं हैं; फिर आप जैसे महानुभाव उससे उदासीन क्यों हैं ? अठारह लोगों ने उसे अपनाया। उनमें एक ही हिन्दू है और वह भी ऐसा है, जिसे बुद्धि जैसी वस्तु छूकर भी नहीं निकली।"

पीथल इस प्रश्न की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्होंने उत्तर दिया, "महात्मन्! बादशाह का यह नया धर्म अति उत्कृष्ट है और हिन्दुओं के लिए विशेष उपयुक्त भी है। उसके तत्त्व अत्यन्त गम्भीर होने के कारण अभी मैं उनका अध्ययन ही कर रहा हूँ। धार्मिक कार्यों में उदासीनता से काम नहीं चलेगा न ?"

शेख—"अच्छा, अच्छा! खूब अच्छी तरह सोच लीजिए। उसके तत्त्व मैं ही आपको समझा दूँगा।"

वे हिन्दू-मुसलमान तत्त्वों की तुलना करके एक तत्त्वज्ञानमय भाषण ही देने को तैयार हो गए। उससे बचने का कोई मार्ग न देखकर पीथल ने भी सब सुनने का निश्चय कर लिया। परन्तु ईश्वर की कृपा से उनके धैर्य की परीक्षा नहीं हुई। शेख साहब को कुछ याद आ गया और उन्होंने कहा, "मैं एक बात भूल गया। आपकी सम्मति जानने के बाद बादशाह के पास जाकर समाचार देना था। तो, फिर मिलेंगे।" और वे राजमहल की ओर रवाना हो गए।

उनको गुप्त मार्ग से रवाना करके पीथल अपने कमरे में वापस आ गए और सब बातों पर विचार करने लगे। उनको विश्वास हुआ ही नहीं कि उत्तराधिकार के बारे में बादशाह ने शेख मुबारक के कथनानुसार निश्चय किया है। कोई कुछ भी कहे, वे मानने को तैयार नहीं थे कि एक दासी से उत्पन्न कुमार को भारत के सिंहासन पर बैठाने की बुद्धिहीनता अकबर कर सकते हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी जान लिया था कि यद्यपि शाहजादा दानियाल पिता के प्रियपात्र हैं, तथापि पिता तो तैमूर के वंश के अंकुर सलीम को ही तख्त पर बैठा देखना चाहते हैं। मुल्ला-मौलवी

अकबर के प्रतिकूल सलीम का साथ दे रहे थे, फिर भी पीथल जानते थे कि सलीम कभी अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु नहीं हो सकता। इसके अलावा, अकबर के सभी राजपूत सहायक और मित्र जोधाबाई के पुत्र सलीम के ही पक्ष मे थे। यह सब सोचकर पीथल को निश्चय हो गया कि शेख ने जो-कुछ कहा वह सब उनके ही मनोरथों का प्रतिबिम्ब था।

उन्हें यह भी लगा कि बादशाह का प्रबन्ध भी इसी निष्कर्ष को दृढ़ करता है। दानियाल का मुख्य सहायक नासिर खाँ केवल खजाने का संरक्षक नियुक्त हुआ और स्वयं दानिग्राल को अन्तःपुर की रक्षा का कार्य सौंपा गया! राजधानी का संरक्षण मेरे हाथों में सौंपने का अर्थ यह है कि दानियाल के पक्ष को शंका न हो और दूसरी ओर उसकी शक्ति भी न बढ़ पाये। समय आने पर देखा जायगा, अभी से क्यों सिरपच्ची करूँ। सोचते हुए वे कमरे से निकलकर मित्रो और सेवकों के बीच आँगन में पहुँच गए।

सेठ कल्याणमल के भवन मे बहुत से गरीब लोग एकत्र थे। आँगन और आस-पास के मार्ग में उनका मेला जैसा दिखाई देता था। पिछवाड़े के दरवाजे से चन्दन लगाये, हाथों मे नये वस्त्र लिये और भोजन करके तृप्त हुए लोग निकलते जा रहे थे। दूसरे दरवाजे से नये लोग अन्दर लाये जा रहे थे। स्पष्ट था कि वहाँ गरीबों के लिए अन्न-वस्त्र का दान हो रहा था।

सेठजी के घर मे उस दिन एक महोत्सव था। उनकी दत्तपौत्री सूरज-मोहिनी की सोलहवी वर्ष-गाँठ मनाई जा रही थी। सेठजी की दानवीरता प्रख्यात होने से नगर-भर के गरीब लोग वहाँ एकत्र हो गए थे। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को भोजन और वस्त्र देने का आदेश दे रखा था। अतएव प्रभात में आरम्भ हुआ अन्न-वस्त्र का दान सायंकाल हो जाने पर भी चल

ही रहा था।

सूरजमोहिनी की मातामही दुर्गादेवी ही सेठजी के घर का सारा कार्य-भार सँभालती थी। पैंसठ वर्ष के ऊपर हो जाने के बाद भी उनके स्वास्थ्य और कार्य-कुशलता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी। कल्याणमल के भवन में उनका एकछत्र आधिपत्य चलता था। नौकर-चाकरों की नियुक्ति और बरखास्तगी, आय-व्यय तथा अन्य प्रबन्धों में उन्हें सेठजी से परामर्श करने की भी आवश्यकता नहीं होती थी। इस महासमारोह का समाचार भी सेठजी को तैयारियाँ आरम्भ हो जाने के पश्चात् ही मिला था। बादशाह सलामत के कृपापात्र, राजा-महाराजाओं के परम मित्र और स्वयं महा प्रभावशाली सेठजी को गृह-प्रबन्ध के कार्यों में एक स्त्री के अधीन देखकर आसपास के लोगों को आश्चर्य होता था। परन्तु इतना सब जानते थे कि दुर्गादेवी को अप्रसन्न कर देने के बाद सेठजी को प्रसन्न कर लेने से भी कोई लाभ नहीं है। इसलिए उस गृह-स्वामिनी को अप्रसन्न न करने के लिए सभी सावधान रहते थे।

इस आयु में भी देखकर यह अनुमान किया जा सकता था कि युवावस्था में भी दुर्गादेवी कितनी अधिक रूपवती रही होंगी। वृद्धावस्था के कारण शरीर मांसल होने लगा था, मुख पर भी जरा के आक्रमण के चिह्न दिखाई देते थे, परन्तु उनकी उज्ज्वल आँखें कुलीनता और शासन-शक्ति का मानो ढिंढोरा ही पीटती रहती थीं। उनकी त्वरित गति, विचारमग्नता के समय अचानक कुछ कहने पर उनके विशेष दृष्टिपात, आज्ञा का उल्लंघन करने वाले को भस्म करने योग्य मुखभाव आदि से उनकी अधिकाराकांक्षा और प्रभाव का प्रत्यक्ष परिचय मिलता था। यह भी अनुमान करना कठिन नहीं था कि कठोर यातनाओं के अनुभव और संसार के उच्च-नीचादि भावों के ज्ञान से परिपक्व होने के कारण वे अपने क्रोध को पिये रहती थीं।

इन दोनों के सेठजी के साथ रहने के कारण पहले-पहल लोग अनेक प्रकार की बातें किया करते थे, परन्तु धीरे-धीरे जब लोगों ने उनके स्वभाव आदि का परिचय पाया तो वह अपवाद निःशेष हो गया। उनके ही मुख

से समय-समय पर प्रकट हुई उनकी कहानी यह थी—चित्तौड़ में बाबूमल नाम के एक रत्न-व्यापारी थे, जो कल्याणमल के मित्र और अग्रतुल्य पूज्य थे। महाराणा प्रताप के पिता उदयसिंह के अकबर से पराजित होकर चित्तौड़ छोड़ देने पर बाबूमल भी उनके ही साथ चले गए। परन्तु मार्ग में बाबूमल और उनके पुत्र अकबर के सैनिकों के हाथ में पड़कर मारे गए। उनकी धन-सम्पत्ति भी बादशाह के हाथ लग गई। उनकी पत्नी दुर्गादेवी तथा एक पुत्री अनाथ हो गई। कल्याणमल ने उन्हें अपने आश्रय में ले लिया और उनका स्वजनों के समान पालन करने लगे। चित्तौड़ का व्यापार नष्ट हो जाने पर भी अन्य नगरों में बाबूमल का व्यापार सुरक्षित था। इसलिए विधवा होने पर भी दुर्गादेवी दरिद्र नहीं थी। उनका सब कार-बार कल्याणमल ही सँभालने लगे। इस बीच कल्याणमल पर भी अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आ पड़ीं। उनकी प्रेम-निधान पत्नी का स्वर्गवास हो गया और व्यापार में भी भारी घाटा हुआ। दुर्गादेवी की सहायता से ही वे आगरा में आकर फिर से अपना व्यापार जमा सके। इस प्रकार दुर्गादेवी और कल्याणमल परस्पर ऋण-बद्ध थे।

दुर्गादेवी की दौहित्री सूरजमोहिनी की माता उसे एक वर्ष से भी कम की छोड़कर स्वर्गवासिनी हो गई थी, इसलिए सूरजमोहिनी अपनी माता-मही के लालन-पालन में ही रही। अब वह १६ वर्ष की हो चुकी है। कौमारावस्था को पार कर तारुण्य में प्रवेश करने की यह अवस्था कितनी मनोहर है। अत्यधिक सौन्दर्य उसे सहज प्राप्त था। लम्बे घुँघराले बाल, अष्टमी के चन्द्र का जैसा भाल-देश, नील कमल को भी फीका कर देने वाले नेत्र, निर्मल-निष्कलंक हृदय की द्योतक मन्दहास-मधुरिमा, कमलोपम रक्त करतल, कृश कटि-प्रदेश आदि से भारतीय वनिता-सौन्दर्य की एक मोहक प्रतिमूर्ति बनी हुई थी वह बालिका! नासिकाग्र थोड़ा-सा उन्नत है, उसकी गति मन्दालस नहीं है—आदि दोष छिद्रान्वेषियों को मिल सकते थे और यह सच भी है कि उसकी नासिका सौन्दर्य-पूजकों के मापदण्ड पर पूरी न उतरती; परन्तु सेठजी कहा करते थे कि इस कमी के कारण ही उसका मुख

एक निर्जीव चित्र बनने से बच गया है। और दुर्गादेवी का कहना था कि उसकी आँखों में चमकने वाले नटखटपन के लिए यह ऊँची नाक योग्य ही है।

कौमार्य सम्मिलित यौवनारम्भ उसके अवयवों को एक नई शोभा प्रदान करता था। नयनों में सरसता भरने लगी थी, किन्तु कौमार्योचित लीला-विलास उनसे दूर नहीं हुआ था। मन्दहासादि भावों में आकर्षण बढ़ गया था, परन्तु उनमें बालोचित पवित्रता और निर्मलता ही प्रस्फुटित होती थी। सारे शरीर में, विशेषतः कुछ अंगों में, जो रूप-भेद होने लगा था, उसे बाधा मानने की स्थिति से वह अभी मुक्त नहीं हुई थी।

सूरजमोहिनी बिना किसी बाधा और गुप्तता के घर भर में हिरणी के समान उछलती-कूदती रहती थी। राजधानी में कुलीन हिन्दू बनिताएँ भी मुसलमान स्त्रियों से मुखावरण का आचार ग्रहण करने लगी थीं। उस काल में, जब सुन्दर युवतियों का स्वातन्त्र्य और चारित्र्य सुरक्षित नहीं था, यह आवश्यक भी हो गया था। जब सूरमोहिनी बारह वर्ष की हुई तभी से सेठजी की भी इच्छा थी कि वह मुखावरण पहने और पुरुषों की दृष्टि में न आये। परन्तु यह बात न तो दुर्गादेवी को स्वीकार थी न स्वयं उस कन्या को। हमारे देश में ऐसा नहीं होता, बाहर जाएगी तो पर्दा कर लेगी— यही दुर्गादेवी की सम्मति थी। और सूरजमोहिनी कहती कि रूपमती महारानियाँ और स्वयं दुर्गादेवी भी जब पर्दा नहीं करतीं तो मैं क्यों करूँ? कल्याणमल ने भी विशेष आग्रह नहीं किया। अतएव वह बालिका मुसलमान आचारों की गुलाम बने बिना ही गृहान्तर्भाग में स्वतन्त्र रूप से विहरण करती थी।

अब सूरजमोहिनी की शिक्षा-दीक्षा भी पूर्ण हो रही थी। संस्कृत भाषा में काव्य, नाटक, अलंकार आदि और ब्रजभाषा में भाषा-कवियों की कृतियों का अध्ययन करके उसने अपना साहित्य-ज्ञान बढ़ाया था। साथ-साथ खड्ग-प्रयोग और अश्वारोहण आदि में भी वह दक्ष हो गई थी।

उस दिन वह विशेष वस्त्राभरण आदि से सजकर अपनी मातामही के साथ गृह-कार्य में लगी हुई थी। अपराह्न में जब यह जानने के लिए

कि सेठजी के विश्राम का समय हो चुका अथवा नहीं, वह उनके कमरे में जाने लगी तो उसने सीढ़ियों पर अपने पीछे पैरों की आहट सुनी। मुड़कर देखा तो एक गम्भीर और सुन्दर किन्तु अपरिचित युवक उसी सीढ़ी पर चढ़ रहा था। अब तक सेठजी से मिलने आने वालों में उनके सम-वयस्क अथवा मध्यवयस्क लोगों को ही देखा था, इसलिए एक युवक को निस्संकोच ऊपर चढ़ते देखकर वह वहीं खड़ी हो गई और उसने पूछा, "आप कौन हैं? यहाँ कैसे आए?"

अपने विचारों में डुबकियाँ लगाता हुआ, सिर नीचा किये हुए ऊपर चढ़ने वाला युवक अचानक ये शब्द सुनकर चौंक उठा और क्षण-भर चुप रहने के बाद बोला, "क्षमा कीजिए, मैंने आपको देखा नहीं। सेठजी से मिलने आया हूँ। कभी भी निःसंकोच आ जाने की अनुमति उन्होंने दे रखी है। इसीलिए ऊपर चढ़ आया हूँ। सामने कोई है, यह मुझे नहीं मालूम था।"

सूरजमोहिनी को शंका हुई कि शायद मेरा प्रश्न उचित नहीं था, इसलिए उसका भी मुख नीचा हो गया। फिर भी साहस बटोरकर उसने कहा, "तो, आइए! बैठिए। शायद बाबाजी आराम कर रहे हैं। मैं देखती हूँ।" पास के एक कमरे में युवक को बैठाकर वह सेठजी के कमरे में चली गई।

युवक और कोई नहीं, दलपतिसिंह ही था। राजा पीथल के आज्ञानुसार, अपने निवास, वेश-भूषा, आयुध आदि का प्रबन्ध करने में उसका पूरा दिन चला गया था। अवकाश मिलते ही, सबसे पहले वह अपने हितैषी बूँदी-महाराजा के यहाँ गया और उनकी सेना से उसने रामगढ़ के दो युवकों को लेकर अपना अनुचर बनाया। अपने राजकुमार के ही सेवक बनने में उन दोनों युवकों को हर्ष हुआ। ये लोग परम्परा से अपने वंश की सेवा करते आए हैं और गुप्तचरों से छाई हुई इस राजधानी में घर में रहने वाले अनुचरों का विश्वस्त होना अति आवश्यक है, यही सोचकर दलपतिसिंह ने इन युवकों को चुना था। इसके पश्चात् अपने लिए एक योग्य निवास-

स्थान खोजना था। राजमहल के पास, कचहरी दरवाजे के पीछे की एक गली मे, एक वस्त्र-व्यापारी बनिये के पडोस का एक छोटा-सा घर उसे मिल गया। वहाँ सब आवश्यक प्रबन्ध करने के लिए एक नव-नियुक्त अनुचर—गुलाब—को छोडकर वह स्वयं दूसरे अनुचर—सुचेत—को साथ लेकर वस्त्र आदि खरीदने के लिए निकल पडा। सैनिकों को आवश्यक सामान देने वाली अनेक दुकानें इसी बाजार मे थी, इसलिए शीघ्र ही वह सब काम भी पूरा हो गया।

इस प्रकार अपना सभी काम पूरा करके वह सायंकाल होते-होते सेठजी से मिलने आया था। उस कमरे मे उसे कुछ अधिक समय तक बैठना पडा। उसके सभी विचार उस समय अचानक सामने आई बालिका पर केन्द्रित हो गए थे। सेठजी को उसने बाबा कहा इसलिए उसकी जाति और स्थिति के बारे में सोचने की गुंजाइश ही नही थी। यद्यपि वह जानता था कि वैश्य-कन्या को राजपूत लोग धर्मपत्नी के रूप मे स्वीकार नही करते, तथापि उसका हृदय विद्रोह कर रहा था। उसका स्वर-गाम्भीर्य, आशादायक शक्ति और इस सबके साथ मिला हुआ माधुर्य उसके हृदय को पीडित करने लगा। सर्वाभरण-विभूषित, विशेष वस्त्र-शोभित उसका मधुर रूप उसके मनश्चक्षुओं मे भर गया। कई बार यह सोचकर उसने मन को जीतने का प्रयत्न किया कि "'छिः! इस वैश्य-बालिका के बारे मे मन में ऐसे विचार लाना उचित नहीं है।' परन्तु जब किसी भी प्रकार उसके विचार को दूर न कर सका तो राजा दुष्यन्त के समान इस प्रकार समाधान करता हुआ उसकी चिन्ता मे मग्न हो गया कि—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः"

(अर्थात्—सज्जनों के लिए शंकास्पद बातों में अपने अन्तःकरण की प्रेरणा ही प्रमाण है।)

सूरजमोहिनी अपने बाबा के कमरे में पहुँची तो देखा कि वे विश्राम नही कर रहे हैं, वरन् किसी चिन्ता मे डूबे बैठे हैं। उसे देखकर प्रसन्नता से

उन्होंने कहा, "क्यों ? भोजन आदि समाप्त हो गया ? तू इधर कैसे आई ?"

"आपको आराम के लिए आये बहुत देरी हो गई थी, इसलिए देखने आई थी। सीढ़ी पर एक युवक को देखा। वह कौन है, बाबा ?"

"जानकर तू क्या करेगी ?" उन्होंने मुस्कराकर पूछा।

"मैं क्या करूँगी ? कुछ नहीं। आपके मेहमान तो हमेशा दाढ़ी वाले और बूढ़े होते हैं। इसलिए एक युवक को देखकर आश्चर्य हुआ।"

"वह हमारा एक आप्त है। रामगढ़ का सच्चा उत्तराधिकारी वही है। परन्तु मुगलों ने वहाँ से निकलवा दिया है, इसलिए यहाँ आया है। मुझे उस युवक से बहुत काम है। एक ही बार देखा है, पर जब से मिला, मुझे उस पर पूरा विश्वास हो गया है। सीढ़ी चढ़ते देखा तो वह है कहाँ ?"

"उस कमरे में बैठे हैं। मैं कहकर आई हूँ कि बाबा आराम कर रहे हैं इसलिए थोड़ी देर यहीं बैठिए। आप कपड़े बदल लीजिए। मैं नानी के पास जाती हूँ।"

सेठजी को हाथ-पैर धोकर और कपड़े बदलकर दलपतिसिंह से मिलने के लिए तैयार होने में दस-पन्द्रह मिनट लग गए। बाद में वे स्वयं उस कमरे में गये जहाँ दलपतिसिंह बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। उन्होंने कहा, "आपको इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी, इसका मुझे खेद है। चलिए, अन्दर ही चलें।"

"असमय में आकर कष्ट देने लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

"मैंने तो आपसे कहा ही है कि इस घर को आप अपना समझ लीजिए। आपको किसी भी समय यहाँ आने का स्वातन्त्र्य है। आज मेरी दत्त-पौत्री का जन्म-दिन है। इसीलिए जरा यह गड़बड़ी है।"

'दत्तपौत्री' सुनते ही दलपति का हृदय फिर चंचल होने लगा। सेठजी के परिवार की नहीं है तो इन उपद्रवों के जमाने में···! उसका विचार पूर्ण भी नहीं हो पाया कि सेठजी ने फिर कहा, "चलिए, अन्दर

चलिए। वहाँ आराम से बातें होंगी।"

दोनों जब यथास्थान बैठ गए तब दलपतिसिंह ने पिछले दो दिनों की बातें विस्तार के साथ सेठजी को बताईं और कहा, "मैं जानता हूँ, यह सब आपके असाधारण प्रभाव का फल है। आपके हृदय में पहले से ही मेरे लिए इतनी सहानुभूति उत्पन्न हो गई यह मेरा अहोभाग्य है। इसके लिए मैं आपका आजीवन आभारी रहूँगा।"

"ऐसी कोई बात नहीं है," सेठजी ने कहा, "रामगढ के राजाओं से मेरे परिवार को शताब्दियों से सहायता मिलती आई है। उनकी सारी बातें मैं अच्छी तरह जानता हूँ। स्थानभ्रष्ट होकर देश से निकले आपके चाचाजी अकबर बादशाह के समय से बहुत पहले से ही मुझ पर कृपालु थे। और आप जानते हैं, रत्न-व्यापारियों का बल और आधार तो राज-परिवार ही होते हैं। आपको शायद याद होगा, मैंने पहले ही दिन राम-गढ की बातें जानने की इच्छा व्यक्त की थी।"

"हमारे छोटे से राज्य की भी बातें आपको मालूम हैं यह आपने एक प्रश्न से ही बता दिया था। मुझे आश्चर्य भी हुआ था। आप मेरे चाचाजी के मित्र थे तो मेरी विनय है कि मुझे कम-से-कम एक अनुमान ही बता दीजिए कि उनके लोग अब कहाँ होंगे?"

"उनके लोग तो कोई थे ही नहीं। एक ही पुत्र था जिसका स्वर्ग-वास हो गया था। वह सब सोचकर आपको दुखी नहीं होना चाहिए। और प्रथम भेंट में ही आप पर मेरा विश्वास तथा प्रेम हो जाने का एक कारण और भी है—भोजसिंह राजा मेरे परम मित्र हैं। वे आपके सम्बन्धी हैं और आपकी उन्नति में तत्पर हैं। इस दृष्टि से भी आपकी सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है।"

"कुछ भी हो। आप सब की कृपा से स्वाभिमान का भंग हुए बिना जीविका का मार्ग मिल गया। पृथ्वीसिंह महाराज के जैसे स्वामी मिलना इतना सुगम तो नहीं है!"

"राजा पीथल अति उत्तम व्यक्ति हैं और बादशाह भी उन पर

परम कृपालु हैं। उनको जो इतना ऊँचा पद मिला है उसमे मुझे कोई आश्चर्य नही है। उन्होने सारी बाते मुझे बताई थीं।"

"तो क्या आज आप उनसे मिले थे?"

"हाँ, कल शाहजादा दानियाल के घर मे समारोह है। उसमें जाने के लिए अपने पद के अनुरूप कुछ रत्नाभरण लेने आज प्रातः यहाँ आए थे। तभी आपकी बातें भी की थी।"

सेठजी ने जो कहा सो सच था। परन्तु राजा के आने का उद्देश्य आभूषण खरीदना नही था। शेखसाहब से जो बातें हुई थी उनसे उनके मन में कुछ शंकाएँ उत्पन्न हो गई थी। उन्हीं के बारे में सेठजी से विचार-विमर्श करने के लिए आये थे। सेठजी उनके मित्र ही सो ही नही, राज-कार्यो मे उनके सलाहकार भी थे। यह बात अकबर के अलावा और किसी को नही मालूम थी। बादशाह स्वयं भी कभी-कभी पीथल के द्वारा सेठजी की सलाह लिया करते थे। अनेक विकट प्रसंगो मे उनकी सलाह लेने के लिए बादशाह स्वय पीथल को उनके पास भेजा करते थे। यह बात भी इन दोनो को ही विदित थी। मुख्य व्यापारियो का राज्य के सभी स्थानों मे प्रवेश होता है, इसलिए वे सब जगहो की बाते सूक्ष्म रूप मे जान सकते हैं। फिर, राज्य के मुख्य वणिग्वरो मे से एक का परामर्श लेने मे क्या अनौचित्य हो सकता था? सेठजी के उपदेशों, गहरे विचारों और असाधारण लोक-परिचय का फल सदा अच्छा ही निकलता था। अतएव कठिन प्रसंगों पर पीथल उनके मार्गदर्शन के अनुसार ही काम किया करते थे।

दलपतिसिंह को ये सब बाते मालूम नहीं थी, फिर भी जब उसने सुना कि सेठजी को सारी बाते उसके स्वामी से ही मालूम हुई हैं तो उसने अनुमान कर लिया कि उसके बारे में भी कुछ बातें अवश्य हुई होंगी। यदि ऐसा हो तो अपने आगे के आचरण के बारे में भी इनकी सलाह ले लेना उचित होगा, यह सोचकर उसने कहा, "मुझे मालूम है कि आप यहाँ के सब मुख्य लोगों के बारे मे सबसे अधिक ज्ञान रखते है। इसीलिए पूछ रहा हूँ। अपनी वर्तमान स्थिति मे मुझे क्या करना चाहिए? और ऐसे

कौनसे कार्य हैं जिन्हें किसी भी हालत में नहीं करना चाहिए ? मैं जानता हूँ कि मेरे स्वामी प्रत्येक कार्य के बारे में मुझे आज्ञा नहीं दे सकते और स्वामी की इच्छा बिना कहे ही जान लेना और उसके अनुसार काम कर लेना ही तो समर्थ सेवक का काम है ?"

"आपका प्रश्न बहुत ठीक है । पीथल राजा जैसे प्रभु की सेवा में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है । पहली बात, वे राजसेवकों में अग्रगण्य हैं, इसलिए उनके शत्रुओं की संख्या भी गणनातीत है । उत्तम सेवक को चाहिए कि उनसे निर्देशित व्यक्तियों को छोड़कर और किसी पर विश्वास न करे । दूसरे, उनको दोषी ठहराने और बादशाह की दृष्टि में अपराधी सिद्ध करने के हेतु लोग तुमसे लड़ने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे । आज की घटना—कासिमबेग से झगड़े की बात—उन्होंने मुझे बताई । वह बादशाह तक पहुँच भी गई ।"

दलपतसिंह का मुख म्लान हो गया । उसने खिन्न होकर कहा, "मुझे आशा है कि मेरे स्वामी मुझे अपराधी नहीं मानते हैं । उसकी सत्यावस्था···"

"सत्यावस्था का उसी समय पता लगाकर राजा ने बादशाह को बता भी दिया । इसलिए आप चिन्तित न हों । परन्तु ऐसी घटनाओं से बहुत भीषण विपत्तियाँ—केवल आप के ही ऊपर नहीं—आ सकती हैं । राजा आप से बिलकुल अप्रसन्न नहीं हैं । आपकी स्वामिभक्ति से उनको सन्तोष ही हुआ है ।"

यह सुनकर युवक का मुख फिर प्रसन्न हो उठा । सेठजी ने आगे कहा, "एक ही उपदेश मैं आपको देना चाहता हूँ; वह भी इसलिए कि आपने पूछा है और मैं यहाँ की परिस्थितियों से परिचित हूँ । गलत मत समझना । अकबर एक असामान्य बादशाह हैं । उनके अनेक कृत्य शायद आपको अच्छे न लगें । अनेक तो प्रथम दृष्टि में गलत या मूर्खता-पूर्ण भी मालूम हो सकते हैं । उनके बारे में सोचने अथवा चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है । उन सबका अर्थ आप समझ नहीं पाएँगे । एक

महासाम्राज्य का शासन करने वाला व्यक्ति किस उद्देश्य से क्या करता है या करेगा यह जन-साधारण की समझ के परे की बात है। इसलिए इस विषय में सावधान रहना। बादशाह के कार्यों के न्यायान्याय के बारे में आपसे चर्चा करने के लिए बहुत से लोग तैयार रहेंगे।"

दलपतिसिंह ने इस सलाह के लिए धन्यवाद देते हुए कहा, "अब अंधेरा हो रहा है। जल्दी ही फिर से आकर आपके दर्शन करूँगा।"

"जब कभी भी समय मिले, आने में संकोच न करना। कल दानियाल के यहाँ जाने पर उनके प्रबंधक दीनदयाल से मिलना मत भूलना। वे मेरे मित्र हैं। दृढ़-प्रतिज्ञ और नीति-निष्ठ हैं। विद्वान् भी हैं। उनकी मैत्री आगे चलकर आपके लिए बहुत उपयोगी हो सकती है। और, आपके बारे में उनको सूचना दे दी गई है। इसलिए कभी भी आप उनसे दानियाल शाह के महल में या उनके घर में जाकर मिल सकते हैं।"

दलपतिसिंह विदा लेकर लौट पड़ा। पहले-पहल तो वह सेठजी के गुप्त प्रभाव और प्रेम आदि के बारे में सोचता रहा, परन्तु शीघ्र ही उसके विचार सूरजमोहिनी पर पहुँच गए। उसके प्रत्येक अंग का वह अपनी भावनाओं में पुनः सर्जन करने लगा। मांग भरी हुई नहीं थी इसलिए उसने समझ लिया कि अविवाहिता है। युवक पुरुष से इतनी धीरता और प्रगल्भता से बातें की, इसलिए समझा कि वह शिक्षिता है। सेठजी की वह गोद में ली हुई पौत्री है, इसलिए राज्य-भ्रष्ट और युद्ध में काम आये हुए असंख्य राजपूतों में से किसी की पुत्री हो सकती है। ऐसा हो तो वह क्षत्रिय-कन्या ही होगी। कितनी छोटी-छोटी बातों से युवकों के हृदय कितने बड़े-बड़े किले बाँध लेते हैं! अस्तु, उस कुमारी के रूप ने दलपतिसिंह के हृदय पर अपना अधिकार जमा ही लिया था।

राजधानी के मुख्य बाजार की पश्चिमी ओर एक बड़ी सड़क थी, जिसे 'दिल-पसंद' कहा जाता था। उसके दोनों पार्श्वों पर बहुत बड़े, ऊँचे और सजे हुए भवन थे। प्रायः सभी भवनों के सामने एक या दो मंजिल के गोपुर थे, जिन्हें तरह-तरह के रेशमी वस्त्रों के तोरणों और नाना प्रकार की सुन्दर शिल्पकलाओं से अलंकृत किया गया था। दिन-भर निःशब्द रहने वाली उस सड़क पर सायंकाल में जो कोलाहल होता था उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। कहीं संगीत, कहीं मृदंग और घुँघरुओं का सम्मिश्र स्वर, कहीं वीणा की झंकार, सर्वत्र प्रसरित कुसुम-सौरभ्य और जन-साधारण का उत्साह उस स्थान के 'दिल-पसंद' नाम को सार्थक करता था। गोपुर-द्वारों पर जलती हुई विविध रंगों की दीप-मालाएँ प्रत्येक भवन को अपने विशेष आकर्षण का केन्द्र बना देती थीं। उस वीथी में धनिकों और युवक सैनिकों के शानदार वाहनों और अश्वों का मेला-सा जुड़ा दिखाई देता था। कुबेरतुल्य वणिग्वर, प्रतापशाली प्रभुजन, तारुण्य-गर्व से नलकूबर बनकर घूमने वाले युवक सैनिक आदि जिस प्रकार इस वीथी में निःसंकोच विचरण करते थे वैसा राजधानी के किसी और स्थान में नहीं होता था।

अपने सौन्दर्य को शतगुणा बढ़ा देने वाले अलंकारों से सुसज्जित और अपने हावभावों से दर्शकों के मन को हठात् आकर्षित कर लेने वाली स्त्रियों को तमाम छज्जों पर खड़ी देखने के पश्चात् यह प्रश्न रह ही नहीं जाता कि उस वीथी का नाम 'दिल-पसन्द' क्यों पड़ा और वहाँ का व्यापार क्या है। रूप-जीवी स्त्रियों का निवास-स्थान था वह, और विलासी लोगों की हार्दिक सम्मति थी कि वह राजधानी का तिलक-भूत स्थान है।

संगीत तथा नृत्य के लिए भारत-भर में प्रख्यात अनेक मोहिनियाँ इस स्थान में निवास करती थीं। उनके बीच विद्या और संस्कार-सम्पन्न प्रमदाओं का भी अभाव नहीं था। ललित कला और शिष्टाचार की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रभु-कुमारों और राजकुमारों को उनके पास भेजने की

प्रथा उस समय प्रचलित थी। इससे यह मालूम हो सकता है कि उन स्त्रियों का समाज में क्या स्थान था। उनके बीच भी सम्मान्य और योग्य स्त्रियाँ थीं, परन्तु अधिकतर नहीं। वेश्यावृत्ति से जीविकोपार्जन करने वाली उन मोहिनियों के लिए संगीत-नृत्यादि कलाएँ पुरुषों को आकर्षित करने के उपकरण-मात्र थीं।

वीथी के एक पार्श्व के लगभग बीच में एक बड़ा भवन था। आसपास के अन्य भवनों के समान शिल्पकला-कुशलता अथवा राजसी ठाटबाट उसमें नहीं दिखाई देता था। फिर भी द्वारस्थ सेवकों के व्यवहार और साजसज्जा से स्पष्ट था कि वह भी किसी धनवती गणिका का ही भवन है। हीराजान नाम से आगरा में प्रसिद्ध गणिका उसमें रहती थी। चार-पाँच वर्ष पूर्व वह अनेक प्रमुख व्यक्तियों की प्रेयसी थी। उसके संगीत और नृत्य की प्रशंसा सबके होंठों पर रहती थी। सुना जाता था कि बादशाह के औरस पुत्र सलीम भी हीराजान के वश में थे। उन दिनों वह प्रतिदिन स्वर्ण और रत्नों की राशियाँ ही अर्जित करती थी। राजधानी की सब गणिकाओं में उसका स्थान प्रथम था।

परन्तु पता नहीं क्यों, थोड़े ही दिनों में उसके इस प्रताप का सूर्य मेघमण्डल में छिपने लगा। उसके शरीर-कुसुम का विकास पूर्ण होते ही कामुक-भृंगों ने नव-विकासमान कुसुमों को खोज-खोजकर उन पर मंडलाना शुरू कर दिया। किसी ने यह भी कहा कि सलीमशाह का मत है, हीराजान का संगीत अब उतना अच्छा नहीं रहा। किं बहुना? आज वह भी कल की अनेक प्रमुख वेश्याओं के समान सामान्य स्थिति का जीवन व्यतीत कर रही थी।

उसकी एक अभिलाषा थी। वह जानती थी कि पहले जो स्थान उपलब्ध था वह अब कभी प्राप्त नहीं हो सकता। परन्तु वह सोचती थी कि यदि किसी एक ही प्रबल प्रभु की मैत्री प्राप्त कर ली जाय तो इस प्रतिदिन के अधःपतन से छुटकारा मिल सकता है। इसी अभिलाषा की पूर्ति के लिए अब वह चतुराई के साथ प्रयत्न कर रही थी।

जिस दिन दलपतिसिंह सेठजी से मिलने गए थे उस दिन भी 'दिल-पसन्द' मुहल्ला नित्य के समान गुलजार था। हीराजान के भवन के अन्तर्भाग से हृदय-आह्लादक संगीत-ध्वनि सुनाई दे रही थी। उसके बैठकखाने में, जो अतीव चित्ताकर्षक ढंग से सजा हुआ था, तीन-चार युवक बैठे गाने-वाली स्त्री के गायन-सामर्थ्य की प्रशंसा कर रहे थे। उनके सामने रखे ताम्बूल-सामग्री के रजत-थाल और फारसी मदिरा के स्फटिक-प्यालों से गृह-स्वामिनी के सम्पत्प्रभाव और विलास-बहुलता का प्रख्यापन हो रहा था। सत्कार के लिए जो स्त्री नियुक्त थी वह हीराजान की दासियों में एक थी। एक बार हीराजान के आराधकों में से एक अमीर उस कश्मीरी बालिका को उपहार के रूप में उसे समर्पित कर गया था। संगीत-नृत्य आदि में निपुण और सभाषण-चतुर देखकर हीराजान ने उसे अपनी सखी बनाकर रखा था। उसे यह मालूम था कि इस प्रकार की युवतियों को साथ रखना अपने घर का आडम्बर और प्रचार बढ़ाने के लिए उपयोगी होगा।

उस दिन हीराजान अपने सायंकालीन विहार के लिए तैयार हो रही थी। स्नान, परिधान, अलंकार आदि में उसकी दासियाँ बड़ी सावधानी से सहायता कर रही थी। प्रश्न था कि गहने क्या-क्या पहने? उसने पास खड़ी एक दासी से कहा, "केतकी, बैठकखाने में कौन-कौन हैं, देख आओ।" दासी देखकर आई और बोली, "मिर्जा साहब और उनके दो-तीन मित्र हैं।" इस पर हीराजान बोली, "अच्छा तो वह मरकत-माला लाकर पहना दो। उसने मुझे ऐसी ही एक माला लाने को कहा था न?" सब प्रकार से सुसज्जित होने के बाद उसने दासियों से कहा, "मुझे मिर्जा साहब से बहुत-कुछ कहना है, इसलिए जब तक मैं न बुलाऊँ, तुम लोगों में से कोई वहाँ न आये। मैं रंगमहल में जाती हूँ। केतकी, तुम उनको वहीं ले आओ।" हीराजान धीरे-धीरे रंगमहल में पहुँच गई। केतकी ने बैठक-खाने में बैठे व्यक्तियों में जो प्रमुख था उसे आदर के साथ वहाँ पहुँचा दिया।

यह हमारा पूर्वपरिचित कासिमबेग था। दोनों का परस्पर अभिनन्दन कामिनी-कामुक का जैसा नहीं था। हीराजान के सौंदर्य और वेश-विशेष की प्रशंसा में एक-दो शब्द कहकर कासिमबेग ने कुछ काम की बातें छेड़ दीं। हीराजान ने भी उसके आने पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, "साहब! उस दिन का हीरा बेच देने पर आपने मुझे इस प्रकार की माला ला देने का वादा किया था। उसे बेचकर मूल्य आपको दिये इतने दिन हो गए, परन्तु आपने माला अब तक लाकर नहीं दी!"

कासिमबेग—"तुम डरो मत। माला ही नहीं, जो चाहो वह सब-कुछ मिलने का मौका आ रहा है।"

हीरा की उत्सुकता बढ़ गई। उसने पूछा, "सो कैसे?"

"तुमने सुना नहीं? बादशाह सलामत दक्षिण को जा रहे हैं। वे मेरे मालिक नासिरखाँ को राज-प्रतिनिधि बनाकर यह राजधानी उनके ही हाथों में सौंपकर जायेंगे। तब तुम देखना मेरा सामर्थ्य! इन सब काफिरों को मैं दिखा दूँगा!"

"मिर्जा साहब, नासिरखाँ एक जमाने में मुझे बहुत चाहते थे। अब एक बार आप उनको यहाँ नहीं ले आ सकते?"

"यह क्या कठिन है? वे मेरी बात कभी नहीं टालते। लेकिन तुम यह सब क्यों सोच रही हो? इससे बहुत बड़ा शिकार मैंने तुम्हारे लिए सोच रखा है?"

"नासिरखाँ साहब से अधिक मुझसे प्रेम कर सकने वाला कौन है? मेरी ये मुसीबतें तो तब से शुरू हुईं, जब से शाहजादा सलीम ने मेरी ओर से मुँह मोड़ा।"

"तुम हो मूर्ख! सलीमशाह की क्या बिसात? बादशाह सलामत उनके विरुद्ध हैं। अब उत्तराधिकार मिलेगा दानियाल शाह को। इसीलिए तो मेरे मालिक को राज-प्रतिनिधि बनाया जा रहा है। दानियाल शाह को मैंने अपनी मुट्ठी में कर लिया है। उस दोस्ती को पक्का करने के लिए ही तो मैंने उस लड़की को अपनी न बनाकर तुम्हारे पास छोड़ा है, जिससे वह

सब कलाओं में प्रवीण हो जाय !"

दानियाल शाह का और उमराओं में प्रमुख नासिरखाँ का प्रेम कासिम-बेग के द्वारा उपलब्ध होने की संभावना से ही हीराजान का मुख उदासी छोड़कर खिल उठा। वह क्षण-भर में ही एक लम्बी मनोरथ-यात्रा कर गई, जिसमें उसकी अब तक की सारी मान-हानि मिट गई, वह फिर से राजकुमारों और प्रभुओं की आराधना-पात्री बन गई और गणिका-कुल साम्राज्ञी बनकर राजधानी का शासन करने के स्वप्न देखने लगी। सलीमशाह ने जो अपराध किया उसके प्रतिकार का अवसर मिलेगा, यह सोचकर वह और भी प्रसन्न हो उठी। कासिमबेग के साथ अपने चिर-परिरक्षित परिचय से—जिससे दोनों को अनेक लाभ होते रहे—इतना उत्कर्ष होगा, ऐसा उसने कभी नहीं सोचा था। उसके हृदय में भरा आनन्द जब एक मन्द स्मित के रूप में प्रकट हुआ तब वह सचमुच "सर्वा-नवद्याग संक्रीडारग" शृंगाराधिष्ठान देवी ही दिखाई देने लगी। वह बोली—

"आप तो जानते ही हैं, मैं सदा आपके अधीन हूँ। मैं आपकी मित्र नहीं, दासी हूँ। हमारा प्रेम क्या आज-कल का है ? हमारे आपसी प्रेम से हम दोनों की बहुत उन्नति होगी।"

कहने के स्वर, उसके अनुकूल हावभावों और सबसे अधिक, उन हाव-भावों में प्रकट आत्म-समर्पण ने कासिमबेग को मानो सातवें स्वर्ग पर पहुँचा दिया। कुछ दिनों से वह हीरा की ओर से जो उपेक्षा का भाव अनुभव कर रहा था वह एकाएक मिट गया और वह आनन्द-मत्त हो उठा। उसने कहा—

"तुम्हारे कारण मेरी बड़ी उन्नति होगी। हमारा पूरा भविष्य उस लड़की पर निर्भर है। जब से मैंने दानियाल शाह से उसकी बात कही तब से वे उन्मत्त-से बने हुए हैं। इसलिए उसके बारे में विशेष ध्यान रखना। जल्द-से-जल्द उसे नाच में होशियार बना लेना—पहले जैसा न हो जाय !"

"साहब ! वह तो बडी ही जिद्दी है ! सब तरह से प्रयत्न करके देखा, मगर न तो वह कुछ खाती है, न मेरी कोई बात सुनती है। उसका कहना है कि एक राजपूत अपने साथ विवाह करने के लिए मुझे ले आया था, अब यदि वह आकर विवाह नही करेगा तो अनशन करके प्राण त्याग दूँगी। वह क्षत्रिय है, इसलिए हमारे हाथ का पानी भी नही पीती। बाहर से कोई ब्राह्मण ले आता है तभी पीती है। मैने चाबुक से मार-पीटकर भी देखा। बादशाह के उत्तराधिकारी के महल में पहुँचेगी तब सब ठीक हो जायगा।"

"न ! न ! यह ठीक नहीं है। यदि बादशाह सलामत को मालूम हो जायगा तो सब बना-बनाया खेल बिगड जायगा। पता न लगे सो भी असम्भव ही है। इसीलिए उनके दक्षिण जाने तक किसी प्रकार समझा-बुझाकर ठीक रखना है। उसकी सब बात मानकर उसको प्रसन्न रखना शायद आगे के लिए अच्छा होगा। उससे विवाह करने का वादा करने वाला राजपूत मैं ही हूँ, इसलिए मेरा कहना शायद वह मान लेगी। इधर बुला लाओ।"

हीराजान ने अपनी दासी केतकी को बुलाकर हाल ही में लाई गई उस लडकी को ले आने की आज्ञा दी। परन्तु केतकी ने लौटकर जो बताया उससे दोनो ही व्यक्ति घबरा उठे। उसने कहा, "अभी दस मिनट पहले तो वह कमरे में थी, मगर अब कहीं दिखलाई नहीं पडती।"

"हाय ! यह भी भाग गई ! यह क्या बात है ? एक महीने के अन्दर तीन लडकियाँ इस तरह भाग गईं !" हीराजान और कासिमबेग के दिल थरथराने लगे। तुरन्त आज्ञा निकली—"सब ओर ढूँढो !" जब खोज शुरू हुई तब पता चला कि नारायणदास नाम का एक नौकर भी गायब हो गया है। कासिमबेग की राय थी कि वे बहुत दूर नही पहुँचे होंगे, इसलिए सब जगहो को छान डाला जाय। वह स्वयं चार-पाँच नौकरों को साथ लेकर लडकी की खोज में निकल पडा।

बहुत जल्द ही उसे सफलता भी मिली। बुरके पहने हुए चार-पाँच

स्त्रियाँ दो नौकरों के साथ 'दिल-पसन्द' वीथी से बाजार की ओर जाने-वाली एक गली से निकल रही थीं। पहले कासिमबेग को उन पर कोई शंका नहीं हुई। परन्तु हीरा के नौकरों में से एक को देखकर उनमें से एक बालिका "हाय! वे आ गए!" कहकर चिल्ला उठी। कासिमबेग सब समझ गया। तलवार निकालता हुआ जब वह अपने नौकरों के साथ उन स्त्रियों के पास पहुँचा तो उसने देखा कि वे भी तलवार निकालकर लड़ने के लिए खड़े हैं। समर-चातुर्य और साहस में कासिमबेग किसी से पीछे नहीं था। वह उस बालिका की ओर ही दौड़ा। बालिका का दयनीय स्वर और नौकरों की लड़ाई का कोलाहल सुनकर दूसरे लोग इकट्ठे होने लगे। इतने में एक अश्वारूढ युवक अनुचरों के साथ वहाँ पहुँचा। उसने लोगों से पूछा "यहाँ क्या हो रहा है?" आवाज सुनकर कासिमबेग ने सिर उठाकर देखा तो सामने दलपतिसिंह खड़ा था। अपनी दुष्प्रवृत्ति का पता अधिकारियों तक पहुँच जाने के डर से उसने उत्तर दिया, "मित्र! ये लोग एक लड़की का अपहरण करके भागे जा रहे हैं। मैं आवाज सुनकर यहाँ आया हूँ।" दलपतिसिंह ने अपनी भाषा में अपने अनुचरों से कुछ कहा और फिर कासिमबेग को उत्तर दिया, "अच्छा, तो मैं भी आपके साथ चलता हूँ। बादशाह की राजधनी में ही ऐसी अनीति!" यह कहते हुए उसने तलवार मियान से निकाल ली। कासिमबेग बहुत सन्तुष्ट हुआ परन्तु तब तक न कहीं वह लड़की थी और न उसके स्त्री-वेशधारी सैनिक ही थे। लोगों की भीड़ में वे भी गायब हो गए।

दलपतिसिंह ने कहा, "चलिए, इनको ऐसे नहीं छोड़ना चाहिये।"

कासिमबेग को भी यह बात ठीक लगी। दोनों ने मिलकर आसपास की सब गलियों और मार्गों को छान डाला, परन्तु कोई लाभ न हुआ। कासिमबेग निराशा और क्रोध से तिलमिला उठा, "राजधानी के प्रधान मार्ग पर ही यह दशा! इसका अन्त करना ही होगा।" दलपतिसिंह ने भी उसका साथ दिया। आखिरकार, रात को अधिक ढूँढते रहने में कोई लाभ न देखकर जब वे लौटने लगे तो कासिमबेग ने कहा, "मित्रवर, आपकी मदद

को मैं कभी नहीं भूलूँगा। आगे हम मित्रता से ही रहेंगे।" दलपतिसिंह ने स्वीकृति व्यक्त की और दोनों अपने-अपने घर की ओर चल दिये। कासिमबेग का मुख निराशा और क्रोध से विकृत था, परन्तु दलपतिसिंह प्रसन्न होकर लौट रहा था।

जब यहाँ ये घटनाएँ घटित हो रही थीं उसी समय नगर के दूसरे भाग के एक देवीमन्दिर के पास की धर्मशाला में चार लोग बैठकर कुछ गुप्त बातें कर रहे थे। वे मध्यवयस्क और रूपरंग से अच्छे वंश के मालूम होते थे। परन्तु उनकी वेशभूषा आदि साधारण लोगों की जैसी ही थी। प्रकाश में सावधानी के साथ देखने पर यह स्पष्ट मालूम होता था कि ये सब छद्म-वेश में हैं। एक ने कहा, "आशा करें कि आज का काम ठीक ठीक हो गया होगा, कहीं कोई गलती तो नहीं हुई?"

चारों में जो सबसे कम आयु का था उसने उत्तर दिया, "नहीं, गलती कोई नहीं होगी।" हीराजान के नौकरों में से एक हमारे दल का है। और जो गये हैं वे सब भी विश्वस्त हैं।"

"और क्या समाचार मिला है?" एक ने पूछा।

युवक—सलीमशाह का दलाल, रमजानखाँ, कन्नौज से तीन ब्राह्मण-कुमारियों को पकड़कर लाया है।

"उनको राजकुमार के पास भेज चुका है?"

"नहीं, उसके ही घर में हैं।"

"उनका धर्म-परिवर्तन करा चुका है?"

"जहाँ तक मालूम है, अब तक नहीं।"

"तो, उसके लिए क्या किया?"

"काँच की चूड़ियाँ बेचने के लिए शंकरनाथ को वहाँ भेजा था और वहाँ की एक दासी को धन देकर अपने वश में कर लिया है। वह खुद भी मुसलमान बनी हुई ब्राह्मण विधवा है। सब प्रकार की सहायता करने का उसने वादा किया है।"

"तो अब देरी मत करो। ईश्वर की कृपा से पैसे की कोई कमी नहीं

है। सारा खर्च चलाने का भार वल्लभाचार्य स्वामी ने ले लिया है।"

एक व्यक्ति अब तक चुपचाप बैठा था। परन्तु सब बातें सुनते-सुनते उसका क्रोध बढ़ रहा था। अन्त में उसने कहा, "कब तक ये सब अत्याचार सहते रहेंगे? यदि हममें पौरुष है तो इन लोगों को जड़-मूल से मिटा देना चाहिए। चण्डमुण्ड-प्रमथिनी इस चण्डिकादेवी के सामने मैं प्रतिज्ञा करता हूँ ....."

दल के नेता ने उसे शपथ पूर्ण करने नहीं दी। उसने कहा, "प्रतिज्ञा मत करो। हम सब की इच्छा एक ही है, फिर भी अविवेक से काम नहीं चलेगा। सब धीरे-धीरे सोच-विचारकर करना चाहिए।" बोलने वाले के स्वर में अनुनय और आज्ञा-शक्ति सम्मिलित थी। उसकी दृढ़ता को शपथ लेने वाले ने मान लिया।

ये लोग 'हिन्दू रक्षक संघ' के प्रमुख थे। मुगल-शासन के भारत में जम जाने पर तुर्किस्तान, फारस आदि देशों से अनेक अत्याचारी अमीर लोग आकर बादशाह की सेना में बड़े-बड़े पदों पर आरूढ़ हो गए थे। उनके अन्तःपुरों को भरने के लिए ग्रामों से, शहरों से, राजमार्गों से—जैसे हो सके वैसे—सुन्दर हिन्दू युवतियों का बलात् अपहरण किया जाना एक साधारण नियम बन गया था। शाहजादे भी इस प्रकार के अत्याचार करने में चूकते नहीं थे। गरीबों, अनाथों और दुर्बलों के बाद जब प्रभुजनों के घरों पर भी इस प्रकार के आक्रमण होने लगे तब हिन्दू लोग जाग्रत हुए। राजा मानसिंह और राजा भगवानदास आदि ने सीधे बादशाह के पास फरियाद की। बादशाह ने अपराधियों को कठोर दण्ड देने का वादा किया, जिसकी घोषणा नगर-भर में करा दी गई और कुछ लोगों को दण्ड दिया भी गया। फिर भी इन अत्याचारों का अन्त नहीं हुआ। मुसलमान प्रभुजनों के अन्तःपुरों की पर्दा-प्रथा के कारण अपहृत युवतियों का पता लगाना भी असंभव हो जाता था। यह भीषण अवस्था जब चरम सीमा पर पहुँच गई तब इस गुप्त संगठन का प्रादुर्भाव हुआ। इसके सभासद कौन हैं, केन्द्र कहाँ है, काम कैसे किया जाता है—इन सब बातों

का पता किसी को नहीं था। परन्तु इतना तो स्पष्ट दिखाई देता था कि मुसलमान प्रभुओं के दलालों के हाथों में पड़ी हिन्दू कन्याएँ किसी-न-किसी प्रकार बचा ली जाती थीं और प्रभुओं के अन्तःपुरों में पहुँच जाने के बाद भी उन्हें निकाल लिया जाता था। उनका क्या होता है, वे कहाँ जाती हैं, आदि का पता किसी को नहीं चलता था। एक-आध कन्या अपने घर लौटकर भी गई, परन्तु उससे भी कोई जानकारी पाना सम्भव नहीं हुआ।

इस दल का प्रमुख कोई भी हो, धन और जन-शक्ति इसके पास पर्याप्त थी। लगभग सभी मुसलमान प्रभुओं के अन्तःपुरों में इसको सहायता देने वाले मौजूद थे। धन देकर कन्याओं को निकाल लाने और मालिकों के कोप से निकाले जानेवाले नौकरों की रक्षा करने आदि के लिए सब प्रकार की आवश्यक शक्ति इसके पास मौजूद थी। दिल्ली और आगरा तक ही इसकी शक्ति सीमित नहीं थी। इसके विशाल बाहु भारत के किसी भी कोने तक पहुँच सकते थे। मेलों, बाजारों और मन्दिरों आदि में इसके लोग सदा तैयार रहते थे—यह बात अनेक बार प्रत्यक्ष दिखाई दे जाती थी। कुरुक्षेत्र में देवदर्शन के लिए गई कुछ ब्राह्मण स्त्रियों को पकड़ने वाला एक मुगल सरदार दो मील पहुँचने के पहले ही अपने अनुचरों के साथ यमलोक को पहुँचा दिया गया और वे स्त्रियाँ साधारण रूप से अपने घरों को पहुँच गईं। राजधानी में लोगों को मालूम था कि यह काम उसी दल के लोगों का है। बादशाह ने स्वयं मानसिंह से इसकी चर्चा करके उस दल को खोज निकालने का आदेश दिया, किन्तु मानसिंह के सब प्रयत्न विफल हो गए।

इसी संघ के नायक थे जो काली-मन्दिर में बैठकर बातें कर रहे थे। उपर्युक्त सम्भावण के बाद लगभग एक घण्टे तक और भी वे वहीं बैठे बातें करते रहे। उनकी उत्कण्ठा बढ़ने लगी और प्रमुख व्यक्ति ने पूछा, "जो लोग हीराजान के घर गए थे, अब तक लौटकर आए नहीं?" जो युवक उत्तर दे रहा था वह उठकर बाहर गया और एक व्यक्ति को साथ लेकर फिर से आ गया। प्रमुख के मुँह से सहसा प्रश्नों की झड़ी बँध गई,

"क्या हुआ ? वह स्त्री कहाँ है ? तुम्हारे साथ के शेष लोग कहाँ हैं ?"
आगत ने उत्तर दिया, "मेरे साथियों पर कोई विपत्ति नहीं है। साथ आना ठीक नहीं था, इसलिए अलग-अलग आ रहे हैं।" बाद में उसने बालिका की रक्षा और कासिमबेग से मुठभेड़ आदि की सारी कहानी कह सुनाई।

प्रमुख ने पूछा, "उस बालिका का क्या हुआ ?"

"कोलाहल के बीच सबकी आँखें बचाकर बालिका को अपने घर पहुँचा देने की आज्ञा उस राजपूत ने अपने नौकरों को दी थी। उसकी और अपनी भी रक्षा का उत्तम उपाय समझकर मैंने बालिका को भीड़ में ढकेल दिया। नौकर क्षण-भर में उसे लेकर गायब हो गया।"

"वह किस मोहल्ले में था ?"

स्थान, मार्ग, वीथी आदि सबका आगत ने वर्णन कर दिया।

"उसके बाद उस राजपूत ने क्या किया ?" प्रमुख ने पूछा।

"कासिमबेग ने उसके साथ बहुत स्नेह-भाव दिखाया। वह भी उसकी सहायता करने के बहाने हमें दूर छोड़कर उस बालिका की खोज में उसके साथ शहर-भर में घूमता रहा।"

प्रथम व्यक्ति ने कहा, "यह राजपूत, कोई भी हो, चतुर व्यक्ति मालूम होता है। कासिमबेग को यह बताने के लिए कि कन्या हाथ से निकल गई और उसकी शंका अन्यत्र बदल देने के लिए उसने जो उपाय किया वह बहुत अच्छा था। अब उस बालिका के बारे में चिन्ता की कोई बात नहीं है।"

इसके बाद उनकी सभा विसर्जित होने में देरी नहीं लगी। वे एक-एक करके निकले और भिन्न-भिन्न मार्गों से अपने-अपने निवास को चले गए।

दानियाल शाह के महल में उस रात को होने वाले समारोह की सब तैयारियाँ पूरी हो चुकी थी। संध्या होते ही नगर की प्रमुख नर्तकियाँ अपने गायकों, वादकों, कुटनियों आदि के साथ आगन में एकत्रित होने लगीं। उनके ठाट-बाट और शान-शौकत का क्या वर्णन करें! अपने सम्पत्प्रभाव, रूप-लावण्य और कला-वैदग्ध्य को सर्वोत्तम रूप में प्रकट करने का उपयुक्त अवसर समझकर सभी वारांगनाएँ पहला स्थान पाने की इच्छा से वहाँ आई थीं। पहले आकर अपना स्थान सुरक्षित करने की इच्छा से वे लोग आए थे जो अधिक प्रसिद्ध नहीं थे। आगतों का स्वागत-सत्कार करने के लिए नियुक्त चाकर-गण सबको यथोचित स्थान पर बैठाकर भोजन-पान आदि से सत्कार कर रहे थे। लगभग साढे सात बजे सुवर्ण तथा रत्नजटित वस्त्रालंकार धारण किये और शिरस्त्राण में अपने पद का चिह्न लगाये हुए एक सुन्दर एवं दर्पशील व्यक्ति ने प्रवेश किया। उसको देखते ही सभी स्त्रियों ने आदरपूर्वक उठकर उसका अभिवादन किया। वह कासिमबेग था। दासियों के नियन्ता-जैसे दीखने वाले एक कर्मचारी ने आगे बढकर जब उसे सलाम किया तो कासिमबेग ने बडी गंभीरता के साथ पूछा, "अली खाँ, अभी कौन-कौन आने को बाकी है?"

अली खाँ ने सिर झुकाकर सलाम करते हुए कहा, "हुजूर! गुल-अनारा, चंचल, हीरा, कलदार और मुराद अभी आने को हैं।"

"आठ बजे के पहले यहाँ पहुँच जाने की आज्ञा थी न? फिर अब तक वे क्यों नहीं आईं?"

"समय नहीं हुआ। अभी आधा घंटा बाकी है।"

"सब आ जायँ तो मुझे बताना।"

"जो हुक्म, हुजूर!"

अली खाँ के जवाब की सुनी-अनसुनी करके कासिमबेग सब अभ्यागतों की ओर मुसकराहट के साथ देखता हुआ अन्दर चला गया।

जिनकी प्रतीक्षा थी वे सभी नर्तकियां एक-एक करके धीरे-धीरे आने लगीं। चंचलजान नाम की मोहिनी सब से पहले आई। वह संगीत-विद्या

मे समस्त भारत मे अग्रगण्य थी। वीणावादिनी के वरदान-भाजन गायक-प्रवर तानसेन उसके गुरु थे। वह बादशाह के हाथ से अनेक पुरस्कार प्राप्त कर चुकी थी। अकबर का उसके संगीत के प्रति जो विशेष आदर था उसके कारण उसे आज्ञा थी कि जहाँ कहीं भी वे जायें उसे भी उनके साथ ही रहना चाहिए। अपने इस आदर-मान के योग्य ही उसका आगमन भी हुआ। बादशाह के हाथो पुरस्कार मे मिला एक बडा मरकत-रत्न, जिसके जोड का रत्न राजा-महाराजाओं के मुकुटो मे भी न पाया जा सकता था, हीरों के हार में पिरोया हुआ उसके कंठ-प्रदेश की शोभा बढ़ा रहा था। उसके शेष आभूषण भी अत्यन्त मूल्यवान थे, जो समय-समय पर राजमहल से ही मिले थे। जूड़े में वह जो नवरत्न-जटिल बुन्दा पहने थी वह एक राजकुमार के जन्म-दिन पर गाने के लिए रानी जोधाबाई ने दिया था। छः लडियों वाले मोती के हार, हाथो मे हीरक-जटित चूड़ियो, वस्त्रो के ऊपर शोभायमान मेखला और पैरों के नूपुरों से उसका सहज सौन्दर्य दसगुना बढ गया था। उसकी दासियाँ और वाद्यवादक आदि भी राजसी वेश-भूषा में ही थे। उसको देखते ही सब लोगो ने आदर व्यक्त किया और वह एक सम्मान के स्थान पर जा बैठी।

चंचल के आगमन का कोलाहल अभी शान्त भी न हुआ था कि दो अन्य रमणियो ने प्रवेश किया। पहली थी हीराजान। समय के महत्त्व का खयाल रखकर उसने भी खूब बनाव-सिंगार किया था। मुख को विशेष कमनीय बनाने के लिए लगाए गये रंग, ताम्बूल-चर्वण से रक्त-वर्ण हुए अधरोष्ठ, स्याही से काली की हुई भौहें, अजनादि से नयनों आदि की कृत्रिम रमणीयता रसिक प्रभुजनों को वश में करने के लिए पर्याप्त होगी, यह भी हीराजान जानती थी। परन्तु उसकी वेश-भूषा और सुन्दरता देखने का भी उपस्थित लोगो को अवसर नहीं मिला।

उसे दीप के समान निष्प्रभ बनाकर एक प्रोज्वल सौन्दर्य-प्रभामंडल ने रंगभूमि मे प्रवेश किया। यह थी गुलअनारा, जिसने अपने रूप-लावण्य, नृत्य-नैपुण्य आदि से बादशाह तथा सभी दरबारियों का प्रेम

और आदर संपादित किया था। उसके आगमन का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—

नीलोत्पलाक्षि तदनन्तरमुत्तराशा
वद्धारवे चोटिकलनु भुवन्नेरिनु।
काणायितुज्वल विभूषण रत्न शोभा-
दीपावली कवलिता नयनाभिरामा॥

अर्थात्—उत्तर दिशा मे लाल प्रकाश फैलाती हुई, उज्ज्वल विभूषण-रत्नो की शोभा से दीपावली को निष्प्रभ बनाती हुई, वह नयनाभिरामा—

सत्कारमाय् मणमुलाचिन नलकलं पु-
चकत्रीणकान्तिनिरवे पुरतोनयन्ती
भूषा मणिस्तेलिम कोपटोरकाल संध्या-
शंकां जनस्य हृदये विनिवेशयन्ती॥

अर्थात्—आगमन का निवेदन करने के लिए पहले ही अपनी प्रकाश-राशि को अग्रसर करती हुई, मणि-भूषणों के विशेष प्रकाश से लोगों के हृदयो में असमय मे आई-हुई सन्ध्या की शंका उत्पन्न करती हुई—

नालंचुपत्तु धनिभिः समुपास्यमाना
मन्दार-सुन्दर-मृदुस्मित वन्दनीया
नानाजनं जय-जयेत्यनुवेलमाशी-
र्वदिङ्ङल चैतु तेलियुं मुखचन्द्रबिंबं॥

अर्थात्—चार-पाँच-दस धनिक लोगो से आराधित होकर, मन्दार-पुष्प जैसे सुन्दर मृदुस्मित के कारण योग्य बनी, विविध लोगों के जय-जयकार और आशीर्वादो से अधिक प्रकाशित हो उठे मुख-बिम्ब के साथ—

वैमानिकैरपिगणैः परिपीयमान-
रूपामृतं, मकरकेतन वैजयन्ती
आलोलनीलनयनोत्पल मालिकाभि-
राशासुसान्द्र जनतासु विनिक्षिपन्ती॥

'अर्थात्—विमानों में विचरण करने वाले देवताओं द्वारा आस्वाद्य रूपामृत की स्वामिनी वह कामदेव की विजय-पताका अपनी चञ्चल नील-नयनोत्पल मालाओं से सब उपस्थित जनों के हृदयों में आशा-किरणों का सञ्चार करती हुई आई।

गुलअनारा ने जब उस सभा में प्रवेश किया तो मानो और किसी ओर देखने के लिए किसी के पास आँखें ही नहीं रहीं। चञ्चलजान ने तुरन्त उठकर उसका स्वागत किया और मन्दहास के साथ स्नेहपूर्वक उसे लाकर अपने पास बैठाया। हीराजान के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसे अपने वेश-विशेष आदि के कारण इन लोगों के बीच स्थान प्राप्त करने की आशा थी। परन्तु गुलअनारा के आगमन के बाद कोई उसकी ओर आँखें उठाने को भी तैयार नहीं है, यह देखकर उसको क्रोध और दुःख एक साथ हुआ। मन में प्रतिकार की प्रतिज्ञा करती हुई वह एक स्थान पर बैठ गई।

अन्दर दरबार-भवन में भी बहुत हलचल थी। शाहजादा भोजन आदि करके अन्तःपुर से अब तक बाहर नहीं निकले थे। परन्तु अनेक प्रमुख लोग वहाँ आ चुके थे। उस कक्ष की सजावट दानियाल शाह की स्थिति के अनुरूप ही थी। फर्श पर बिछे हुए फारसी कालीनों की शोभा ऊपर टँगे हुए दीप-वृक्षों के कारण दुगुनी बढ़ गई थी। उस विशाल कक्ष का आधा भाग खाली रखा गया था, शेष में रेशम और जरी के काम के कालीन बिछे हुए थे। बीच में एक मसनद थी, जो सबसे अधिक सजाई गई थी। स्पष्ट था कि वह शाहजादा के लिए थी।

सभी अतिथि धीरे-धीरे आ रहे थे। अनेक आ भी चुके थे। विश्वविश्रुत नूरजहाँ के भाई इब्राहीम खाँ, अकबर बादशाह के अश्वपाल राजा किशनदास' और जामाता मुजफ्फर हुसेन मिर्जा आदि पहले से ही वहाँ उपस्थित थे। दानियाल शाह के दीवान पंडित दीनदयाल शाहजादा के प्रतिनिधि के रूप में इन सबके साथ खड़े थे। उस समय इब्राहीम खाँ दानियाल का एक आश्रित-मात्र था। वह अति सुन्दर युवक फारसी भाषा

का प्रसिद्ध कवि, विलासी और रसिक था और सदा ही दानियाल शाह के पानोत्सवों का संयोजन तथा संचालन किया करता था। राजधानी में सब की मान्यता थी कि वही शाहजादा को दुष्पथ में ले जानेवाली प्रेरकशक्ति है। परन्तु बादशाह उस पर विशेष स्नेह दिखाया करते थे, इसलिए उसके प्रतिकूल व्यवहार करने का साहस किसी को नहीं होता था। जिन उपायों का अवलम्बन करके वह शाहजादा का प्रेम-पात्र बना था उन्हीं उपायों द्वारा उनका प्रिय बनने और इब्राहीम खाँ को दूर करने का प्रयत्न कासिमबेग करता रहता था। परन्तु अब तक उसे सफलता नहीं मिली। राजा किशनदास सभी के मित्र थे। जिस-किसी भी महल में उत्सव-समारोह हो, वे वहाँ पहुँचे बिना न रहते थे। उन्हें प्रथम पंक्ति में स्थान प्राप्त होता था। राजा पीथल, नासिर खाँ आदि यह भी मानते थे कि उनका काम ऐसे स्थानों पर होनेवाली सब बातों का समाचार बादशाह के पास पहुँचाना था। हुसेन मिर्जा इस प्रकार के व्यक्ति नहीं थे। उनकी एक बहन से दानियाल शाह का विवाह हो जाने के कारण ही ऐसे संघ में उनका प्रवेश हुआ था।

राजकुमार का आमन्त्रण स्वीकार करके जो लोग वहाँ आए थे उनमें अधिकतर तुर्क और फारसी थे। हिन्दू लोग केवल चार-पाँच ही थे। राजा पीथल, गंगाधर राय और नगरकोट के संभोगसिंह उनमें प्रमुख थे। राजा पीथल के साथ दलपतिसिंह भी था। सभी राजोचित वेशभूषा से समलंकृत थे। मुसलमान प्रभुओं के कण्ठों के हार, पगड़ियों के रत्न, राजपूतों के कुण्डल, सभी के सुवर्ण वस्त्र, रत्न-जटित कमरबन्द आदि उस काल की दरबारी पोशाक के अनिवार्य अंग थे। आगतों के स्वागत और उनसे कुशल-प्रश्न के लिए पंडित दीनदयाल द्वार पर ही मौजूद थे।

दलपतिसिंह के साथ राजा पीथल द्वार पर आये तो पंडित दीनदयाल शीघ्र ही उनके पास पहुँच गए। उन्होंने उनका स्वागत करते हुए पूछा, "महाराज! आप आ गए? कुशल तो है? हुजूरवाला आपसे मिलने के लिए आतुर हो रहे थे। ये कौन हैं?"

"ये टीका दलपतिसिंह हैं," राजा पीथल ने परिचय दिया, "रामगढ़ के युवराज हैं। इस समय मेरी अंगरक्षक सेना के उपनायक हैं।"

"ओहो! समझ गया! सेठजी ने आपके बारे में मुझसे बात की थी। आपका स्वागत!"

दलपतिसिंह ने उचित उत्तर दिया।

पंडित दीनदयाल ने फिर कहा, "मेरे लिए एक पत्र भी है न? अब तो महाराजा ने स्वयं हमारा परिचय करा दिया, पत्र का महत्त्व क्या रह गया? आपको मेरी क्या सहायता चाहिए, आदेश-भर देने की देरी है।"

दलपतिसिंह—आपका आशीर्वाद ही अभी मुझे चाहिए। मेरे महानुभाव स्वामी की कृपा से इस समय मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रही।

"मेरा स्नेह और मैत्री सेठजी और महाराजा के मित्रों को सदा उपलब्ध है।"

जब ये इस प्रकार बातें कर रहे थे उसी समय कासिमबेग ने प्रसन्नता के साथ आकर राजा पीथल का अभिवादन किया। फिर दलपतिसिंह को देखकर बोला, "आइए, आइए! आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरी इच्छा है, अपने स्वामी नासिरखाँ साहब के साथ आपका परिचय करा दूँ।"

इसका उत्तर राजा पीथल ने दिया, "अच्छा है, टीका को ले जाइए अपने स्वामी के पास और मेरी ओर से भी उन्हें सलाम कहिए।"

दोनों नासिरखाँ के पास चले गए। राजा पीथल और दीनदयाल आश्चर्य के साथ एक-दूसरे की ओर देखने लगे, मानो पूछ रहे हों—"यह क्या बात है?" पहले दिन कासिमबेग और दलपतिसिंह के बीच जो मुठभेड हो गई थी उसकी बात इन दोनों को मालूम थी। उस दृष्टि से दोनों के बीच इस समय जो मैत्री दिखाई दी वह आश्चर्यजनक थी। परन्तु इस विषय में दोनों ने कोई बात नहीं की।

इसी बीच एक चोबदार ने आकर पंडित दीनदयाल को बताया कि शाहजादा अन्तःपुर से निकल चुके हैं। यह बात एक-दो प्रमुख व्यक्तियों को बताकर दीनदयाल इब्राहीम खाँ के साथ शाहजादा को ले आने के लिए चले गए।

दानियाल शाह की आयु उस समय लगभग बाईस वर्ष की थी। वह सुकुमार था और तैमूर-वंशजों का सहज गम्भीर्य तथा पौरुष मानो उसे छूकर भी नहीं निकला था। दासी-पुत्र होने के कारण भाइयों और मुगल सरदारों को उसके प्रति कोई आदर नहीं था। परन्तु अकबर का उस पर विशेष वात्सल्य होने के कारण और इस जन-श्रुति के कारण भी कि शायद वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा, सभी उसके प्रति श्रद्धा और विनय दिखाया करते थे। दानियाल की माँ पुत्र-जन्म के समय ही परलोकवासिनी हो गई थी, इसलिए इस पुत्र का भी रानी जोधाबाई ने ही पालन-पोषण किया था। बालिकाओं की वेश-भूषा तथा आभरणों आदि से अत्यधिक आकर्षित होनेवाले इसके स्वभाव के कारण सलीम, मुराद आदि शाहजादों को इसके प्रति एक प्रकार का परिहास-भाव हो गया था। बड़ा हो जाने पर भी इसका यह स्वभाव बढ़ता ही गया। गायकों और हिजड़ों के साथ इसकी मित्रता थी और यह अधिकतर उनकी ही संगति में समय बिताता था। शाहजादा सलीम तो इसे 'दानियाल बानू' कहकर पुकारता था।

इस स्वभाव के अनुकूल ही शाहजादा की वेशभूषा भी थी। ढाका की मृदुतम मलमल की चपकन, पतली रेशम की फुतवार और जरी के मखमली जूते, यही थी उसकी पोशाक। गले में मरकत, मोतियों और हीरों का हार और शिर पर विविध रत्नों से विभूषित पगड़ी पहने था। दोनों हाथों में जो भुजबन्ध थे उनके बीच में एक एक बड़ा नील-रत्न जड़ा हुआ था। उसके शरीर से इत्र की सुगंध फैलकर सारे भवन को सुवासित कर रही थी।

एक ओर इब्राहीम खाँ और दूसरी ओर पंडित दीनदयाल से अनुगत वह दरबार-कक्ष में प्रविष्ट हुआ। सभी ने उठकर तीन-तीन बार झुककर

सलाम किया। शाहजादा ने अति प्रसन्न होकर मन्द हास से सबको अनुगृहीत किया। बाद मे नासिर खॉ को दाहिनी ओर, राजा पीथल को बाईं ओर शेष सब को यथोचित बैठने की आज्ञा दी। जब सब आसनस्थ हो गए तब नर्तकियो को बुलाने की आज्ञा दी गई। वे सब एक-एक करके आईं और शाहजादे को सलाम करके पंक्ति बनाकर खाली जगह पर बैठ गईं। बाजे बजाने वालो मे केवल चंचलजान और गुलअनारा के ही लोगों को उनके साथ अन्दर आकर पीछे बैठ जाने की अनुमति दी गई।

"चंचलजान का नाच पहले हो," शाहजादा ने कहा। वह धीरे-धीरे उठकर राजकुमार का अभिवादन करके आगे आ बैठी। उसके तबलची आदि भी आगे आ गए। अमीर खुसरो का एक गाना गाकर उसके अनुसार वह नृत्य करने लगी। हाथ, पैर, नेत्र और भावों के सम्मिलित नैपुण्य को देखकर प्रेक्षक 'वाह! वाह!' कर उठे। कुछ समय कला का आस्वादन करने के बाद शाहजादे ने राजा पीथल से पूछा, "क्यो राजा! अच्छा है न?"

"खूब! बहुत अच्छा!" पीथल ने सम्मति प्रकट की।

एक पद का नृत्य होने के बाद वह मानो विराम के लिए नीचे बैठी। शाहजादे ने उसे निकट बुलाकर कहा, "हमारे मित्र पीथल तुम पर मुग्ध हो गए है। तुम इनके ही पास बैठो।" वह मन्दहास के साथ राजा के चरणो के पास बैठ गई। राजा ने उसके सिर पर हाथ फेरा और शाहजादे से कहा, "हुजूर! मै तो चन्चलजान से बहुत दिनों से परिचित हूँ। परन्तु नासिरखॉ साहब तो इसे जानते ही नही। इसको उनके पास बैठने का अवसर दीजिए न?"

"ऐसी बात है? अच्छा चंचल, तुम नासिरखॉ के पास बैठो।" दानियाल के इस आदेश का तुरन्त पालन हुआ। परन्तु नासिरखॉ को यह व्यवहार बिलकुल अच्छा न लगा। शाहजादा की आज्ञा थी इसलिए उसने बिना कुछ कहे उसे मान लिया।

अब गुलअनारा को आज्ञा मिली कि वह अपनी कला का प्रदर्शन

करे। उसका नृत्य चंचल के नृत्य से भी सुन्दर था, परन्तु शाहजादे को कला का ज्ञान न होने से उसने उसमे कोई विशेष अभिरुचि नहीं दिखाई। उसने कहा, "मालूम होता है, शहर मे कोई नई गायिकाएँ नहीं आई हैं। एक भी नया मुँह इस सभा मे दिखलाई नही पडता। अरे हाँ! एक बात याद आ गई। इस शहर में लूट-पाट के काम बहुत बढ गए हैं। घरों के अन्दर से लडकियो को उठा ले जाते हैं। मैंने सुना कि मेरे अन्तःपुर के लिए लाई गई एक लडकी को भी किसी संघ के लोग भगा ले गए हैं। पीथल, हमारे हाथ में अधिकार आते ही इस सब का इन्तजाम करना होगा।"

पीथल—अच्छा! आपके अन्तःपुर से भी अपहरण शुरू हो गया? तब तो साहस की हद हो गई।

दानियाल—नही, नहीं! इतनी धृष्टता तो नहीं की गई। कासिमबेग मेरे अन्तःपुर के लिए एक लडकी ले आया था। उसकी बात है।

नासिरखाँ—किसने अपहरण किया?

दानियाल—यह तो कोई नहीं जानता। कासिमबेग कह रहा था कि लड़कियों को भगा ले जाकर पैसे कमाने वाला एक गिरोह राजधानी में है। अब्बाजान बहुत ही नर्मदिली से काम लेते हैं। हमारे हाथ मे अधिकार आने के बाद उनमे से एक को भी छोड़ना न होगा। ठीक है न?

पीथल—और क्या? ऐसे अत्याचारियो का पता लगाकर उन्हें दण्ड देना ही आवश्यक है। आपकी इच्छानुसार सब हो जायगा।

गुलअनारा का नृत्य जारी था। इतना मनोहारी गीत और इतना सुन्दर नृत्य दलपतिसिंह ने कभी न देखा था। इसलिए वह मुग्ध हो कर देखता रहा। गुलअनारा अपने गान से मधुर अधरो, आसव से अरुण, प्रस्फुरित कपोलों, मत्स्य-जैसे चंचल नयनो, नूपुर-ध्वनि से कविता-रस प्रवाहित करने वाले चरणों, मोती बिखेरने वाली स्मित-चन्द्रिका और लोल, नील भ्रकुटियों से प्रेक्षको के हृदय हर रही थी। नृत्य के अनुसार रस बरसानेवाली आँखें, ताल के अनुसार नृत्य करने वाले कुच-कुम्भ,

शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करने वाले अभिनय-विशेष, नूपुर-स्वन और गान-माधुरी यह सब आस्वादन करते हुए दलपतिसिंह को भ्रम होने लगा कि वह देवसभा में है और उर्वशी, मेनका आदि अप्सराओं के दर्शन हो रहे हैं। गुलअनारा ने भी इस प्रकार निर्निमेष दृष्टि से देखने वाले उस युवक को देख लिया था। राजसभाओं में इस प्रकार का सुव्यक्त अभिनन्दन एक असाधारण बात थी, इसलिए उस युवक के प्रति उसका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उसने नृत्य के बीच दो-तीन बार उसकी ओर देखा और गीत की एक-दो पंक्तियों का अभिनय उसी को लक्ष्य करके किया। अपने मन में कौतुक पैदा करने वाले व्यक्तियों के प्रति स्नेह प्रकट करने की यह रीति नर्तकियों में प्रचलित थी।

सम्भाषण करते-करते गुल अनारा और अन्य सभासदों की ओर प्रासंगिक दृष्टिपात करने वाले शाहजादे ने नर्तकी की यह चेष्टा देख ली। उसने पूछा, "गुलअनारा, किसके प्रति यह हाव-भाव दिखा रही है? मैंने तो सुना है यह बड़ी मानिनी है।"

राजा पीथल भी यह सब देख रहे थे। परन्तु उन्होंने ऐसे भाव से चारों ओर देखा मानो कुछ जानते ही नहीं। नासिरखाँ ने उत्तर दिया, "वह राजा पीथल का अनुचर है। अति समर्थ और सुयोग्य राजकुमार है, ऐसा कासिमबेग ने मुझसे कहा था।"

पीथल—वह रामगढ़ के स्वर्गीय राणा का ज्येष्ठ पुत्र है। मेरी सेना का एक उपनायक है। राजधानी में आये अभी चार-पाँच दिन ही हुए हैं। आपके दरबार में आकर दर्शन करने का अवसर उसे नहीं मिला, इसीलिए मैं आज उसे यहाँ ले आया हूँ।

दानियालशाह—अच्छा किया। इधर बुलाइए। बड़ा रसिक मालूम होता है।

पीथल ने संकेत से दलपतिसिंह को बुलाया। वह दानियाल शाह के पास आकर आचारानुसार अभिवादन करके खड़ा हो गया।

दानियाल ने पूछा, "तुम अभी नये आए हो?"

"हुजूर ! चार-पाँच दिन ही हुए। अब तक सेवा में उपस्थित नहीं हो सका। अपराध के लिए क्षमा चाहता हूँ।"

"नहीं नहीं, कोई बात नहीं ! तुम पीथल की सेवा मे हो। हमारी आपसी मित्रता ऐसी है कि उनसे मिलना हमसे ही मिलना है।"

इन सम्मानसूचक बातों के लिए धन्यवाद व्यक्त करने के रूप मे पीथल ने सिर झुका दिया।

दलपतिसिंह ने कहा, "आपकी कृपा।"

दानियाल शाह--यहीं बैठो। हमारे पास समर्थ और हमारे योग्य व्यक्तियों की कमी है। इसलिए जब-जब हो सके, दरबार मे आ जाया करो।

पीथल---यह मैंने पहले ही कह रखा है। आपके आदेश के अनुसार सेवा मे उपस्थित होने के लिए मेरे अनुचरों को विशेष अनुज्ञा की क्या आवश्यकता ?

दानियाल शाह---शाबाश, पीथल ! आपका स्नेह मैं जानता हूँ। वह हम सब के लिए और विशेष रूप मे साम्राज्य के लिए हितकारी ही होगा।

इस बात पर नासिरखाँ ने भी सहमति प्रकट की। अब तक गुलअनारा का नृत्य समाप्त हो चुका था। अब किसको आज्ञा दी जाय पूछने के लिए कासिमबेग उपस्थित हुआ। आज्ञा मिली, "किसी से एक गीत गाने को कहो।"

हीराजान के प्रति अपना स्नेह प्रकट करने का यही अवसर जानकर कासिमबेग ने जाकर घोषणा की कि अब हीराजान का गायन होगा। गुल-अनारा अपने स्थान पर लौट आई। हीराजान अपनी अवश्यंभावी विजय को सोच-सोचकर, समाधान के साथ, शृंगारमय लज्जा का अभिनय करती और सरस हाव-भाव दिखाती हुई कक्ष के बीच में आ गई। इधर बहुत दिनों से राजमहल में उसका गाना नहीं हुआ था, इसलिए बहुत से लोग सुनने को उत्सुक थे। तबले और बाजे वाले आकर जब तैयार हुए तब दानियाल

शाह ने नासिरखाँ को देखकर कहा, "अरे ! मै तो भूल ही गया था ! आप दोनो से कुछ आवश्यक बाते करनी है। बाते क्या है, बताने की आवश्यकता नही। आप जानते ही है। आइए। पास के कमरे में चले।" ऐसा कहकर वह अपने स्थान से उठा और 'सब चलने दीजिए' कहता हुआ नासिरखाँ और राजा पीथल के साथ दूसरे कमरे में चला गया।

हीराजान का दुःख असीम था। आगरा की सभी अग्रगण्य गणिकाओं के सामने शाहजादे ने जान-बूझकर उसका अपमान किया, यही उसका विश्वास था। उसने इसका मुख्य कारण कासिमबेग को समझा और वह क्रोध से लाल हो उठी। परन्तु, वास्तव मे शाहजादे का इससे अधिक कोई दोष नही था कि ललित कलाओं मे उसे कोई रस नहीं आता था। इसीलिए जब उसे एक आवश्यक कार्य याद आ गया तो उसमे लग गया। हीराजान तो कासिमबेग की बातों पर विश्वास करके शाहजादे की प्रीति से भारी अभिवृद्धि और ऐश्वर्य पाने के स्वप्न देख रही थी। उसके सब मनोरथ इसी मार्ग पर चल रहे थे। उसका सारा सकल्प-दुर्ग इस प्रकार ढह गया तो स्वाभाविक था कि वह क्रोध और ताप से तिलमिला उठी।

कासिमबेग के सब विचारो का अनुमान कुछ कुछ इब्राहीमबेग ने कर लिया था। उसने अपहास-भाव से कहा, "क्यों हीरा ! गाती क्यों नहीं ? तुम्हारा गाना सुनने के लिए सभी उत्सुक हो रहे हैं !" किसी भी उद्देश्य से कहा गया हो, अब वह कथन टाला नहीं जा सकता था। परन्तु शाहजादे की अनुपस्थिति में सभी अमीर-उमरा अपनी-अपनी प्रिय वारांगना के साथ प्रेमलीलाओं में निरत हो गए और हीरा का गाना सुनने का समय ही किसी को नही रहा। अवसर पाकर गुलअनारा हँसती हुई दलपतिसिंह के पास गई। उसने पूछा, "आप आगरा में नये आए है ? इसके पूर्व कभी देखा नहीं।"

दलपतिसिंह बहुत संकोच मे पड़ा, फिर भी चुप रहना उचित न समझकर उसने उचित शब्दों में उत्तर दिया। दानियाल शाह के पास बैठा देखकर गुलअनारा ने अनुमान कर लिया था कि यह युवक उच्च वंश का

और अच्छे पद पर है। अतएव, उससे परिचय बढ़ाने की दृष्टि से उसने और भी बातें करने का प्रयत्न किया। दलपतिसिंह के उत्तरों से लोकाचार में पटु उस राजनर्तकी को सब बातें स्पष्ट रूप से समझ लेने में विलम्ब न लगा।

एक घण्टा और सभा चलती रही। जब शाहजादा अन्तःपुर में चले गए तो सब अतिथि भी अपने-अपने घर को रवाना हुए। पीथल को शाहजादा के पास से लौटने में विलम्ब हुआ, इसलिए दलपतिसिंह को भी रुकना पड़ा। उसे यह भी नहीं मालूम हुआ कि किसी बहाने से गुल अनारा बाहर खड़ी उसकी राह देख रही थी।

भारत के बादशाह जलालुद्दीन अकबर ने दक्षिणापथ जाने का जो निश्चय किया उसका समाचार निर्दिष्ट दिवस के निकट आते-आते सारे भारत में फैल गया। लोग यह भी जानते थे कि उनके वापस आने तक राजधानी का कार्य एक समिति के हाथ में रहेगा, जिसमें दानियाल शाह भी सम्मिलित होंगे। इस समिति के सदस्य कौन-कौन होंगे और किसे कौनसा अधिकार सौंपा जायगा आदि विस्तृत बातें किसी को ज्ञात नहीं थीं। परन्तु इस बात में किसी को शंका नहीं थी कि सलीम का उत्तराधिकार बादशाह ने अस्वीकार कर दिया है। उसका बड़ा प्रमाण यह था कि सलीम को राजधानी में बुलाने के बदले राणा प्रताप से युद्ध करने के बहाने अजमेर में रहने का आदेश दिया गया है। अजमेर आगरा से बहुत दूर नहीं था, फिर भी यदि राजधानी दानियाल शाह के हाथ में हो तो बाहर से सलीम क्या कर लेगा? यह भी सब पर विदित था कि मुबारक और अबुल फजल आदि राजप्रिय लोग सलीम के शत्रु हैं। इन सब बातों के आधार पर जनता ने यही अनुमान कर लिया कि भावी बादशाह दानियाल शाह ही हैं।

प्रस्थान का दिन समीप आते-आते बादशाह यात्रा के विरुद्ध मालूम होने लगे। पहली बात तो यह थी कि उनकी उम्र साठ के आसपास थी। इतनी लम्बी यात्रा के बाद लौटना भी असम्भव हो सकता था। दूसरे, उनके गुरुवर शेख मुबारक रोगग्रस्त होकर शय्यावलम्बी हो गए थे। तीसरे, उत्तराधिकार का विषम प्रश्न भी उनके सामने एक समस्या बन गया था। इसलिए जाने की बात अनिश्चित ही मालूम होती रही।

उन दिनों राजा पीथल अधिक समय उनके पास ही रहा करते थे। चाहे राजसभा हो, चाहे मृगया-विनोद हो, चाहे शास्त्र-चर्चा हो, पीथल को सदैव मेरे पास ही रहना चाहिए—यह बादशाह की निश्चित आज्ञा थी। ऐसी स्थिति में दलपतिसिंह को भी किसी दूसरे काम के लिए समय मिलता था।

दो-तीन सप्ताह से वह एक विषम अवस्था में पड़ा हुआ था। बिना किसी मित्र के राजधानी में एकान्त जीवन व्यतीत करने वाले उस युवक के मन में आयु के अनुरूप विचार-विकार उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। सेठजी के भवन में तीन सप्ताह पूर्व जिस सुकुमार छवि को देखा था वह उसके हृदय की अधीश्वरी बन चुकी थी। उस दिन के बाद अनेक बार सेठजी के घर जाने और सूरजमोहिनी से बातें करने का अवसर उसे मिला था। जब से वह परिचित हुआ तब से वह बालिका उसके रहते हुए भी अपने बाबा के पास यथापूर्व आ जाया करती थी। कोई धार्मिक अथवा सामाजिक चर्चा होती तो धीरे-धीरे वह भी उसमें सम्मिलित हो जाती। सेठजी ने भी इसमें कोई प्रतिकूलता नहीं दिखाई और यह बात उनसे छिपी हुई भी नहीं थी कि सूरजमोहिनी उस युवक को देखने और उससे बातें करने के लिए उत्सुक रहती है।

दलपतिसिंह के हृदय में उसके प्रति आकर्षण बढ़ता ही गया। अब वह यहाँ तक सोचने लगा कि यदि यह कन्या वैश्य जाति की ही हो तो भी स्वयं राज्यभ्रष्ट होने के कारण उससे विवाह करने में कोई विशेष दोष नहीं हो सकता। अनुलोम विवाह राजपुत्रों के बीच असाधारण भी नहीं था।

ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान को राज्याधिकार नही हो सकता, किन्तु अपने पितृव्य के वंशजों को ही रामगढ का उत्तराधिकारी मानने वाले दलपति को इसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता ? इस विषय में उसे दुःख अथवा विषमता अनुभव करने का अवकाश ही नहीं था।

अब वह सोचने लगा कि उस कन्या के हृदय में भी मेरे प्रति अनुराग है अथवा नही ? एकान्त में भेंट न होने से यह शंका निवारण करने का कोई अवसर नहीं था। अतएव इस स्वल्प काल के परिचय में जो-जो घटनाएँ हुई उन सब पर वह एक-एक करके विचार करने लगा। उसके प्रत्येक शब्द और भाव पर अपनी भावनामयी दृष्टि से दुबारा सूक्ष्म-वीक्षण करके वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सूरजमोहिनी भी उससे प्रेम करती है। इस स्थिति में आगे क्या करना चाहिए सो वह सोचने लगा। सीधे सेठजी से यह बात करना उसे उचित न जँचा। इसलिए उसने राजा पीथल से सब बाते कहने का निश्चय किया। राजा ने उसकी सब बातें ध्यान से सुन ली, किन्तु उत्तर कुछ नहीं दिया।

दो दिन बाद जब दलपतिसिंह सेठजी से मिलने गया तब स्वयं उन्होंने ही इस विषय की चर्चा चलाई। उन्होंने कहा, "मोहिनी के बारे में आपकी इच्छा मुझे मालूम हुई। आप राजपूत-वंशज और एक राज्य के उत्तराधिकारी हैं। इस हालत में एक वैश्य वंश की कन्या के साथ कैसे विवाह कर सकते हैं ?"

"मैं राजपुत्र अवश्य हूँ," दलपतिसिंह ने उत्तर दिया, "परन्तु किसी राज्य का उत्तराधिकारी नहीं हूँ। अपने पिताजी की अन्तिम आज्ञा मैंने आपसे निवेदन की ही है। मेरे पितृव्य के वंश में जब तक एक बच्चा भी शेष है तब तक रामगढ़ राज्य पर मेरा कोई अधिकार नहीं हो सकता।"

"अच्छा, परन्तु आपके पितृव्य, उनके बेटे या उनकी कोई सन्तान न हो तब तो राज्य आपके ही हाथ में आएगा न ?"

"उस हालत में मुझे ही राज्य-शासन करना होगा। परन्तु बादशाह के अधिकारियो ने मेरे भाई को राज्य दे दिया है।"

"अर्थात्, इससे विवाह करने के लिए आप राज्य का अधिकार भी छोडना चाहते है ?"

"जो मेरा है ही नहीं उसे छोडने की बात ही कहाँ उठती है ? और यदि आवश्यक हो तो उसके लिए मैं तैयार हूँ।"

"ऐसे कार्यों मे बहुत सोच-समझकर प्रतिज्ञा करनी चाहिए। मैंने कहा था कि आपके चाचाजी की सभी बातें मुझे ज्ञात है। उनके पुत्र जीवित नहीं हैं। इस स्थिति मे रामगढ के सच्चे उत्तराधिकारी आप ही है। क्या इतना बडा अवसर एक क्षुद्र मोह के लिए त्याग देना उचित है ? क्या यह आपके वंश को शोभा देने योग्य है ?"

"इस विषय मे मैंने विचार किया है। मेरे पितृव्य राजर्षि थे। प्रजा उनको देवता मानती थी। उन्होंने अपने उत्कर्ष के लिए भ्रातृवध उचित न समझकर राज्य छोड देना पसन्द किया। और मुगलो के नीचे क्या राज्य है, क्या राजा ! यहाँ बादशाह के नौकर, वहाँ उनके नौकरों के नौकर। ऐसी राज्यलक्ष्मी मेरे छोटे भाई के लिए ही मुबारक रहे, यही मेरा विचार है। इसमें राज्य-त्याग की कोई बात नहीं है।"

सेठजी इसका उत्तर दे नहीं पाये। उसके पहले ही सूरजमोहिनी उस कमरे में आ पहुँची। इसलिए उस दिन यह बात यही रुक गई। थोड़े समय बाद मोहिनी की नानी भी उस कमरे में आई। उनके आग्रह से दलपतिसिंह ने उस दिन भोजन भी उनके साथ ही किया।

उस युवक का हृदय इस प्रकार एक स्थान पर स्थिर था। परन्तु उसकी प्रेम-स्थिरता के परीक्षण के अनेक प्रसंग भी उपस्थित हुए। कासिमबेग के हाथों से जिस कन्या को बचाया था उसकी समस्या सबसे पहले सामने आई। उस अंधेरी रात में उसने उस बालिका को देखा भी नही था। उस समय उसे बचाने की दृष्टि से ही नौकर को आज्ञा दी थी कि उसे अपने घर ले जाय। जब वह लौटकर घर आया तब तक वह सो चुकी थी। दूसरे दिन सुबह जब सुचेत ने आकर पूछा कि उसके लिए क्या व्यवस्था करनी चाहिए तब पहली बार उसके मस्तिष्क मे उसके बारे में प्रश्न उठा। उसने बालिका

को अपने पास बुलवाया। देखा, वह लगभग चौदह वर्ष की थी। अपने रक्षक को देखते ही वह उसके चरणों पर गिरकर रोने लगी। उसे किसी प्रकार शान्त करके उसने धीरे-धीरे उसका परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उससे गजराज की करुण कहानी, राजपुत्र के वेश में उस युवक का आना, जो पिछले दिन उसे पकड़ने के लिए आया था, और उसे विवाह का वादा करके भगा लाना, हीरा के घर में उसका उत्पीड़ित किया जाना आदि बहुत-कुछ मालूम हो गया। उसकी दुःखगाथा और अनाथ अवस्था ने उसके हृदय को द्रवित कर दिया। उसके पिता की खोज करने का उसने वादा किया। "परन्तु", उसने कहा, "तुमको मैं अपने पास कैसे रखूँ ? मैं अकेला यहाँ रहता हूँ। एक क्षत्रिय-कन्या को अपने साथ कैसे रख सकता हूँ ?"

पद्मिनी ने रोते हुए उत्तर दिया, "हाय ! मुझे वापस मत भेजिए। पिताजी के पास भेजेंगे तो वह आदमी फिर मुझे पकड़कर ले जायगा। मैं यहाँ एक दासी बनकर रह लूँगी। आप तो राजपुत्र हैं।"

तारुण्यावस्था में प्रविष्ट एक कन्या को अपने साथ रखने में उसे संकोच हुआ। परन्तु कोई दूसरी गति नहीं थी। उसे मालूम था कि कासिमबेग अपने हाथ से निकली हुई कन्या को वापस प्राप्त करने का सिरतोड़ प्रयत्न करेगा। यह भी मालूम था कि उसकी खोज पहले चारबाग में ही होगी। इसलिए वहाँ भेजना उसे बाघ के मुँह में डालना ही होगा। अन्ततः उसने तत्काल उसे अपने पास ही रहने देना ठीक समझा। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उसी दिन कोई एक वृद्ध गजराज तथा उसकी पुत्री को डोली में बैठाकर कहीं ले गए थे। बाद में यह भी मालूम हो गया कि ले जाने वाले किशनराय थे। उनके पास स्वयं जाकर बताने का इरादा किया तो चार दिन का विलम्ब और भी हो गया।

इस प्रकार दस दिन के बाद ही दलपतिसिंह नगरकोच महल के पास वाले मकान में जा सका। किशनराय को सब बातें मालूम होने पर बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने कहा, "उसको मेरे पास भेज दीजिए। मेरे एक

ही लड़की है। उसको एक सखी मिल जायगी। परन्तु चार-पाँच दिन हो गए, गजराज कहीं नहीं दीखता। समझ में नहीं आता अब क्या करूँ!"

गजराज का स्वास्थ्य जब अच्छा होने लगा तब से वह कभी-कभी बाहर घूमने निकल जाया करता था। कोई चार दिन पूर्व इसी प्रकार घूमने गया था फिर वापस नहीं आया। वृद्ध किशनराय ने अनुमान कर लिया कि वह अपनी पत्नी की खोज में गया होगा। आखिर उन्होंने कहा, "तो इन बच्चों को मैं क्या करूँ? आपके कहने से मालूम होता है कि पद्मिनी विवाह के योग्य हो गई है। खैर। किसी भी हालत में उसके पिता शायद यहीं वापस आएँगे। उसकी छोटी बहन तो यहीं है, फिर उसे भी यहीं भेज दीजिए।"

अपनी जिम्मेदारी छूट गई इस सन्तोष से दलपतिसिंह वापस आया। सब बातें सुनकर पद्मिनी को भी आनन्द हुआ। परन्तु अपने को वहाँ भेजने की बातें सुनकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसने आग्रह किया—"आपने मुझे बचाया, अब आपकी ही दासी बनकर मैं रह लूँगी।" उसका यह आग्रह किसी प्रकार टाल न सकने के कारण अन्त में वह अपने नौकर गुलाब को बुलाकर परामर्श करने लगा। गुलाब ने कहा—"महाराज! यह कन्या क्षत्रिय कुल की है। अनाथ भी है। इसे अपने पास ही रहने देने में क्या बुरा है?"

दलपतिसिंह ने पूछा—"इससे अपवाद नहीं फैलेगा?"

"महाराज, आप तो राजकुमार हैं। हमारे भावी राजा भी हैं। इस आयु में दिवंगत महाराणा के अन्तःपुर में कितनी स्त्रियाँ थीं? यह सब तो राजाओं के लिए आवश्यक है।"

"राजाओं को अपने सामन्तों के साथ सम्बन्ध दृढ़ रखने के लिए यह उपाय आवश्यक होगा। परन्तु मैं तो दूसरे की सेवा में जीवन बिताने वाला हूँ। मेरे लिए ऐसा सोचना भी उचित नहीं है।"

"तो इसको अपनी बहन के रूप में यहाँ रहने दीजिए।"

अन्त में पद्मिनी की इच्छा ही पूर्ण हुई। दलपतिसिंह के प्रति उसकी

भक्ति और आदर देखकर गुलाब विस्मित हो जाता था। उनके कमरे को साफ करने और सजाने का काम वह किसी और को करने नहीं देती थी। उसकी मान्यता थी कि वह सब उसी का काम है। दलपतिसिंह ने एक शब्द भी उससे बोल दिया तो उस दिन उसे भोजन की भी आवश्यकता नहीं रहती थी। परन्तु सूरजमोहनी की ही चिन्ता मे डूबे हुए दलपति को यह सब देखने की आँखें नही थीं। नौकरों की बातों से पद्मिनी को मालूम हुआ कि दलपतिसिंह के विवाह की बातें चल रही हैं। परन्तु महाराजाओं और प्रभुओं में बहुपत्नीत्व की प्रथा प्रचलित होने के कारण उसे इससे कोई असन्तोष नही हुआ।

. इन्ही दिनों मे दलपतिसिंह के हृदय को अस्वस्थ बना देने वाली एक और भी घटना हुई। दानियाल शाह के महल मे जब गुल अनारा ने उसे देखा तब से वह उसके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। चार-पाँच दिन तक जब वह नहीं गया और न कोई संदेश ही भेजा तब गुल-अनारा ने स्वयं अपनी दूती को उसके पास भेज दिया। दूती घर मे आई तब दलपतिसिंह बाहर गया हुआ था। इसलिए सुचेत ने उसे अन्दर आकर प्रतीक्षा करने की अनुमति दे दी। एक वृद्ध स्त्री को किसी कार्यवश आई देखकर उस सेवक ने अपने स्वामी के महत्त्व और पद का वर्णन करने में संकोच नहीं किया। इस सम्भाषण से वृद्धा को मालूम हो गया कि दलपतिसिंह का हृदय एक महान् सेठ की बेटी पर आसक्त है और शीघ्र ही विवाह हो जायगा।

वृद्धा ने कहा, "अच्छा! ऐसी बात है? मेरी मालकिन तो उन पर जान दे रही हैं और वे एक सेठ की लड़की से शादी करेंगे? सेठ का पैसा देखा होगा।"

सुचेत ने अभिमान के साथ उत्तर दिया, "रामगढ़ के राजा लोग धन-लोभी हैं, ऐसा अभी तक तो किसी ने नहीं सुना। और तुम्हारी मालकिन ऐसी बडी कौन हैं?"

"सारे भारत में ऐसा कौन है जो मेरी मालकिन को नही जानता? गुल-अनाराजान बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को भी अप्राप्य है। उनके एक

मन्दहास पर सर्वस्व न्योछावर कर देने के लिए शाहजादा लोग भी तैयार रहते हैं। सम्पत्ति में भी उनसे बढकर आज कौन है? स्वर्गीय शाहजादा मुराद ने एक दिन गाना गाने के लिए पाँच लाख से अधिक का हार उनको भेंट किया था। मैंने अपनी आँखो से देखा था। और क्या-क्या बताऊँ? ऐसी महा प्रतापिनी का प्रेम इस राजकुमार के साथ हुआ यह इसका अहोभाग्य ही समझना चाहिए!"

सुचेत को यह सब सुनकर वृद्धा के प्रति अत्यधिक आदर उत्पन्न हो गया। वारागनाओ को उन दिनो मुसलमान लोग पतित नही समझते थे। उनमें से अनेक राजाओं के अन्तःपुरो मे उच्च स्थानो को सुशोभित करती थी। इसी प्रकार अन्तःपुर मे आई हुई एक दासी का पुत्र था दानियाल। राजपूत लोग भी उनका आदर करते थे। इसलिए बाल्यकाल से आगरा मे पले सुचेत ने यदि गुल अनारा को एक बडी प्रभ्वी और उसकी दूती को एक सम्माह्य अतिथि मान लिया तो इसमे आश्चर्य क्या?

सुचेत ने कहा, "माताजी, पान खाइए। आराम से बैठिए। महाराजा अभी आते ही होगे। गुलअनारा बेगम को इनसे इतना प्रेम हुआ यह भाग्य ही है। ये भी अति सुन्दर और सुयोग्य पुरुष हैं।"

दूती ने उत्तर दिया, "इनको तुम वहाँ पहुँचा दोगे तो मेरी मालकिन तुमको बडा पुरस्कार देंगी।"

"हाय! मैं मालिक से ऐसी बात कैसे कहूँ?"

"अरे! रहने भी दे! यदि ये इतने बडे रामचन्दर हैं तो अभी-अभी यहाँ से जो लडकी गई वह कौन थी?"

"वाह भइ! वह तो रास्ते में मिली हुई एक लडकी है, जिसे वे पाल रहे हैं! आप जैसा सोचती हैं वैसा नहीं है।"

ऐसी बातें हो ही रही थी कि दलपतिसिंह लौटकर आ गए। आचारोपचार के बाद वृद्धा ने एक सुगंध-परिपूर्ण स्फटिक-राशि, जो वह हाथीदांत के एक डिब्बे मे उपहार के रूप में लाई थी, उनके समक्ष रखते हुए अपने आने का उद्देश्य बताया। गुल अनारा को राजमहल मे तथा

बड़े-बड़े प्रभुओं के पास उपलब्ध स्थान का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए उस कुशल दूती ने बताया कि उन सब को निःसार समझकर उसकी मालकिन ने दलपतिसिंह जैसे अप्रसिद्ध युवक से जो प्रेम किया है उससे उसके हृदय की निर्मलता का ही परिचय मिलता है।

दानियाल के महल में जो दृश्य देखा था वह दलपतिसिंह के हृदय से मिटा नहीं था। नीलोत्पल नयनों, नृत्य के आयास से स्वेदांकुर-युक्त मोहन वदन-बिम्ब जो हिमबिन्दुओं से अलंकृत पाटल-पुष्प जैसा दिखाई पड़ता था, नर्तन में भी आलिंगनोत्सुकता प्रकट करने वाली मृणाल-नाल जैसी बाहु-लता, रसानुकूल प्रकटित हावभाव आदि ने मादक सौरभ्य के समान उसके हृदय को तरलित कर दिया था। अब वृद्धा के वाक्-चातुर्य ने उस अन्तर्हित स्मृति को पुनरुज्जीवित कर दिया। मुखभाव से हृदय की गति को पहचानने में समर्थ उस दूती ने अपना कथन जारी रखा, "महाराज! मेरी मालकिन अपने घर में सब बड़े-बड़े प्रभुओं को आमन्त्रित करके एक गायन-समारोह करना चाहती हैं। वह सम्राट् की अनुमति से, उनकी विजय-कामना के हेतु किया जायगा। उस दिन आप भी वहाँ पधारकर अतिथि-सत्कार स्वीकार करें। इतनी ही उनकी प्रार्थना है। बाकी सब आपकी इच्छा।"

इसमें कोई बुराई न देखकर दलपतिसिंह ने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

जब वह दूती को सम्मानपूर्वक विदा करके अपने कमरे में आया तब उसने कहीं से किसी के रोने की आवज सुनी। उसने अनुमान कर लिया कि वह पद्मिनी ही होगी। उसने कारण का पता लगाने के लिए गुलाब को भेजा, परन्तु जब वह सफल नहीं हुआ तो बालिका को स्वयं अपने पास बुलाया। उससे भी जब उसने किसी प्रकार कुछ कहा ही नहीं तब यह सोचकर कि कल तक ठीक हो जायगी, वह दूसरे कामों में लग गया।

अकबर बादशाह के दिग्विजय के लिए प्रस्थान का समाचार अजमेर में सलीम के पास भी दूसरे ही दिन पहुँच गया। जब से यात्रा का निर्णय हुआ था तब से प्रतिदिन की घटनाओं के समाचार शाहजादे को देने के लिए अनेक लोग उत्सुक थे। सलीम को यह भी मालूम हुआ था कि बादशाह के आगरा छोड़ने के बाद शासन का कार्य दानियाल के पक्ष के लोगों के हाथ में जायगा। उसने अनुमान कर लिया था कि यदि बादशाह ने ऐसा किया तो उसका अर्थ यही होगा कि उन्होंने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भी निर्णय कर लिया है। यह सब जानकारी प्राप्त करने के बाद भी उसने कोई निराशा या दुःख प्रकट नहीं किया। कुछ साहसी लोगों का कहना था कि सलीम राजधानी पर अधिकार करके और बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन करके अपने-आपको बादशाह घोषित कर देगा। परन्तु यह विश्वास किसी को नहीं था कि महाप्रतापी अकबर के साथ युद्ध करके जीत जाने की शक्ति या धैर्य उसमें है। और सब यह भी जानते थे कि सलीम के सहायकों के रूप में नियुक्त सभी अधिकारी अकबर के परम विश्वासपात्र थे। शाबास खाँ कम्बू, शा कुली खा बहराम और राजा जगन्नाथ—ये तीन ही उसके साथी थे। इनमें प्रमुख शाबास खा बादशाह के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे यह सर्वविदित था।

शायद इन्हीं कारणों से परिस्थिति को विपरीत देखकर सलीम शान्त था। जिस दिन अकबर के प्रस्थान का समाचार मिला उसी दिन उसने अपने सब सेनापतियों को एकत्र करके कहा, "आप जानते हैं, मेरे पूज्य पिता दक्षिणापथ को जीतने के लिए प्रयाण कर चुके हैं। अब हमको भी विलम्ब नहीं करना चाहिए। राणा प्रतापसिंह को जीतने का कठिन काम उन्होंने हमारे ऊपर सौंपा है। परन्तु हम अपने काम में तुरन्त जुट नहीं सकते; हमारे दीवान भगवानदास कहते हैं कि इतनी बड़ी युद्ध-यात्रा के लिए हमारे पास पर्याप्त धन नहीं है। उनकी राय है कि कम-से-कम एक करोड़ रुपया पास में न हो तो इस बड़ी सेना को आगे बढ़ाना उचित नहीं है। क्यों भगवानदस ?"

दीवान ने कोष की स्थिति का पूरा विवरण दे दिया। हमारे पास कठिनाई से साठ लाख रुपये ही होंगे। इतने से काम नहीं चलेगा। उन्होंने अपनी सारी बात युक्तिपूर्ण ढंग से स्पष्ट कर दी।

सलीम ने कहा, "परन्तु किसी भी कारण से काम में बाधा नहीं आने देनी चाहिए। इसलिए राजा जगन्नाथ अपनी २५००० सेना को लेकर आगे बढ़ें। शाबास खां कम्बू की मुख्य सेना राजधानी से धन आते ही उनकी सहायता के लिए पहुँच जायगी। कोषाध्यक्ष नासिर खां के पास से आवश्यक धन लाने के लिए तुरन्त किसी को भेजना ही सबसे पहला काम है। इसके लिए शा कुली खां स्वयं आगरा चले जायें। नासिर खां उनके मित्र हैं इसलिए काम निर्बाध रूप से और शीघ्र हो जायगा।"

सबने स्वीकार किया कि यह सब विवेकपूर्ण विचारों का फल है। शाबास खां और शा कुली खां ने सलीम की बुद्धि की विशेष प्रशंसा की। छः महीनों से अजमेर में पड़े-पड़े थके हुए शा कुली खां को आगरा जाना बहुत पसन्द आया। इतना ही नहीं, उसको यह भी लगने लगा था कि समयानुसार दानियाल शाह का प्रीति-पात्र बनना आवश्यक है। जब सलीम ने उसको जाने की आज्ञा दी तब वह किसी प्रकार का बहाना बनाकर वहाँ जाने की बात सोच ही रहा था। शा कुली खां के चले जाने पर सेना का पूर्ण अधिकार पाने के खयाल से शाबास खां भी खुश हुआ। सेना में दोनों का अधिकार बराबर था, इसलिए इन छः महीनों में परस्पर मनोमालिन्य बहुत बढ़ गया था। इनका वैर बढ़ाने में सलीम भी शक्ति-भर प्रयत्नशील रहा करता था।

इस प्रकार परस्पर विरुद्ध कारणों से सभी ने सलीम की बातों को एक-स्वर से स्वीकार किया। दीवान को तुरन्त आज्ञापत्र तैयार कर देने का आदेश दिया गया। पहली आज्ञा थी कि एक छोटी सी अश्व-सेना के साथ शा कुली खां आगरा के लिए प्रस्थान करें। सलीम ने उसे यह कहकर उसी समय विदा भी दे दी कि "देरी न करना। शाम के पहले ही रवाना हो जाना। घोड़ों की सवारी के कारण आप लोग दो दिन में वापस आ

सकते है !"

दूसरा आदेश राजा जगन्नाथ को था। उन्हें अँधेरा होते ही, राजपूत सेना के साथ गुप्त रूप से रवाना हो जाने के लिए कहा गया। यह आदेश हर्ष-ध्वनि के साथ स्वीकार किया गया।

सभा विसर्जित हो जाने पर सलीम ने शाबास खा को सस्नेह पास बुलाकर कहा, "पिताजी ने कोई भी निर्णय किया हो, मेरे कारण राज्य में कोई गड़बड़ी न हो यही मेरी इच्छा है। इसलिए हमे शीघ्र-से-शीघ्र उदयपुर को अपने हाथ मे ले लेना चाहिए। धन' आते ही रवाना होने का सब प्रबन्ध आप कर लीजिए।"

शाबास खा ने उत्तर दिया, "यही मेरी भी सलाह है। आप अवश्य जीतेंगे।"

"जय-अपजय तो" सलीम ने कहा, "समय पर मालूम होगी। कुछ भी हो, शा कुली खा के लौटने तक मैंने शिकार मे समय बिताने का निश्चय किया है। सुना है, यहाँ से तीस-चालीस मील पर पाँच-छः शेर दिखाई दिए हैं। वहाँ शिकार की सब तैयारी भी हो रही है। इसलिए लगभग एक सप्ताह मे वहीं रहूँगा। साथ मे अधिक लोगो को नही ले जाना चाहता। पचास घुडसवार सैनिक, अमरसिह और दिलेरजंग ही मेरे साथ होंगे। जब मे लौटू, सेना रवाना होने के लिए तैयार रहे। शा कुली खाँ के आने तक आपकी मदद के लिए मैंने भगवानदास को नियुक्त कर दिया है।"

शाबास खाँ—जैसी आपकी आज्ञा! परन्तु साथ केवल पचास लोगो को ले जाना काफी नहीं होगा। कम-से-कम डेढ सौ को तो साथ रखना ही चाहिए।

सलीम—क्यो? स्त्रियाँ तो यही रहेगी। ऐसे मौके पर कम-से-कम लोगो को ही साथ ले जाना ठीक है।

शाबास खाँ को मान जाना पड़ा। सब प्रबन्ध शीघ्रातिशीघ्र पूरा हो गया। संध्या के पूर्व शा कुली खाँ आगरा के लिए रवाना हो गया। किसी

प्रकार आगरा पहुँचने की उतावली मे वह आज्ञानुसार थोड़े से आदमियों को साथ लेकर निकल पड़ा। राजा जगन्नाथ २५,००० पैदल सेना और आवश्यक शस्त्रास्त्र के साथ रवाना हुए। रात के भोजन के बाद आराम से सलीम ने भी पचास सवारों के साथ प्रस्थान किया।

आगरा में बादशाह के जाने के बाद उनका जो फरमान प्रकाशित हुआ उससे अनेक क्षेत्रों में एक प्रकार का परिभ्रम फैल गया। जनता के मन में कोई शंका नहीं रही थी कि सिंहासन का अधिकार दानियाल शाह को मिलेगा, परन्तु जब उसने सुना कि उसे बादशाह का प्रतिनिधि भी नियुक्त नहीं किया गया और केवल अन्तःपुर और राजमहल की रक्षा का कार्य सौंपा गया है, तो दानियाल शाह के पक्षपातियों को अत्यधिक निराशा हुई। बादशाह के राजधानी छोड़ते ही अपनी अधिकार-शक्ति सबको बता देने के लिए पूरा प्रबन्ध करके तैयार बैठे उन लोगों को यह कार्य-विभाजन बिलकुल पसन्द नहीं आया। कोष का अधिकार नासिर खाँ को मिला था, परन्तु सेना का अधिकार चाहने वाले उसे यह भार-रूप मालूम हुआ। यथार्थ में राजधानी का अधिकार राजा पीथल के हाथ में गया। दुर्ग की रक्षा और राजधानी में शान्ति कायम रखने के लिए अलग की हुई सारी राजपूत सेना ने उन्हें प्रबल बना दिया था।

बादशाह ने प्रस्थान करने के पूर्व ही राजा को बुलाकर विशेष आज्ञाएँ दे दी थीं, यह सब को मालूम था। परन्तु वे आज्ञाएँ क्या और किस बारे में थीं, भिन्न-भिन्न लोगों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अनुमान किया। वस्तुतः आज्ञाएँ ये थीं—"आगरा दुर्ग के अन्दर किसी की सेना को आने मत देना। अन्दर या बाहर से कोई भी बल-प्रयोग करने का प्रयत्न करे तो उससे युद्ध करके राजधानी की रक्षा कर लेना। राज-प्रतिनिधि के रूप मे कोई नियुक्त नहीं है। शंकास्पद कार्यों में मेरे पास आदमी भेजकर

आज्ञा ले लेनी चाहिए। मेरे लौटने तक राजधानी मे कोई गडबडी न हो इसके लिए सब आवश्यक काम अपने नाम पर कर लेना चाहिए।''

पीथल ने समझ लिया कि उत्तराधिकार के विषय में बादशाह ने कोई आखिरी निर्णय नही किया है। इसलिए उनके जाते ही सैन्याधिप के अधिकार से उन्होंने यह घोषणा की कि दूसरा आदेश निकलने तक पचीस से अधिक सशस्त्र लोग एक साथ दुर्ग मे प्रवेश नही कर सकते। सामन्तो तथा अन्य प्रमुख व्यक्तियो के दुर्ग मे प्रवेश करते समय सशस्त्र अनुचरों के लिए विशेष अनुज्ञा प्राप्त करना आवश्यक कर दिया गया। यह घोषणा सुनकर नासिर खां आदि दानियाल के समीप रहने वाले लोगो को बहुत क्षोभ हुआ। उन्होने सोच रखा था कि बादशाह के जाने के बाद अपनी सेना से राजधानी को भर लेंगे और फिर यदि पीथल ने साथ न दिया तो उसे बल-प्रयोग द्वारा स्थानभ्रष्ट कर देंगे। पीथल की सावधानी और दीर्घ दृष्टि ने यह दुरभिसंधि विफल कर दी। घोषणा कराकर, उसके अनुसार सेना-नायकों को आदेश देने के बाद, वे नासिर खॉ को समाचार देने के लिए उसके पास गये। वे जानते थे कि यह सब प्रबन्ध दानियाल शाह और नासिर खॉ को पसन्द नहीं होगा। परन्तु यह भी उनको मालूम था कि अपना विरोध प्रकट करने का साहस भी उनको नहीं होगा। इसलिए अपने काम के बारे में कोई शंका हो तो उनको समझा देने के उद्देश्य से ही वे वहॉ गये।

पीथल को देखकर नासिर खॉ ने बिना कोई विरोध-भाव दिखाए उनका स्वागत किया। जब पीथल ने देखा कि राज्यकार्यों के बारे मे बातें करने पर भी उसने उस घोषणा के बारे मे कुछ नहीं कहा तो विवश होकर उन्हें ही बात निकालनी पड़ी। उन्होने कहा, ''आज मैंने एक कडा आदेश जारी किया है सो आपने सुना होगा। उसके द्वारा पचीस से अधिक सशस्त्र लोगो के दल बनाकर दुर्ग के अन्दर प्रवेश करने पर रोक लगा दी है।''

नासिर खॉ ने कहा, ''ठीक किया।''

''आप भी सहमत हैं इसलिए मुझे प्रसन्नता हुई। बात यह है कि शाहजादा सलीम के साथ एक बडी सेना अजमेर में है। बादशाह की

आशाओं के बारे में पता चलने के बाद उनके सेना-सहित इधर आ जाने का भय है।"

"क्या ? बादशाह के विरुद्ध ?"

"कैसे कहा जा सकता है ? शाहजादा साहसी हैं। एक प्रबल सेना उनके अधीन है। और सभी मुल्ला-मौलवी उनके पक्ष में हैं। राजा मानसिंह भी सेना के साथ आ सकते हैं। मेरे अधीन केवल पचीस हजार पैदल सेना ही है। दुर्ग के बाहर से आक्रमण करने वालों को रोकने के लिए यह पर्याप्त है। परन्तु युद्ध अन्दर भी छिड़ जाय तो कठिन हो जायगा।"

अब नासिर खाँ को लगने लगा कि मेरी शंकाएँ गलत हैं और पीथल का उद्देश्य दानियाल को मदद करना ही है। परन्तु उसने कहा, "फिर भी, बादशाह की अनुपस्थिति में उनके प्रतिनिधि शाहजादे से पूछकर करते तो अच्छा होता।"

"मैंने भी यह सोचा था," राजा पीथल ने उत्तर दिया, "परन्तु जब मैंने बादशाह से यह बात कही तो उन्होंने कहा कि शाहजादा अभी छोटे हैं और उन्हें अनुभव भी नहीं है, इसलिए राजधानी के रक्षा सम्बन्धी कार्यों में उनसे परामर्श करना उचित न होगा।"

"अच्छा! ऐसा फरमाया ? दानियाल शाह के गुणों से बादशाह तो अनभिज्ञ नहीं हैं! उनके बारे में बहुत विश्वास के साथ ही उन्होंने मुझसे बातें की थीं।"

"मालूम होता है, आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ। आप सोचते होंगे कि अपना अधिकार स्थिर रखने के लिए मैं यह कहानी बनाकर कह रहा हूँ।"

"महाराज! ऐसा मैं कैसे कह सकता हूँ ? परन्तु बात इतनी ही है कि बादशाह सलामत ने मुझसे जो फरमाया और आप जो-कुछ कह रहे है इन दोनों बातों में कोई समानता नहीं है। शायद मैंने गलत समझा हो। जब सलीम शाह का विचार किये बिना ही दानियाल शाह को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया तब मैं कैसे मान लूँ कि बादशाह सलामत उनकी विचार-

शक्ति को तुच्छ मानते हैं ?"

"मैंने यह बात भी बादशाह सलामत के सामने निवेदन की थी। उसके उत्तर मे उन्होंने एक फरमान लिखवाकर दिया।"

"क्या है उस फरमान मे ?"

"उसकी नकल मै लाया हूँ, देखिए।"

जेब से उन्होने एक कागज निकालकर नासिर खॉ के हाथ मे दे दिया। उसका सार यह था, "जब तक हम दक्षिण मे रहे तब तक के लिए राजधानी के संरक्षण की सब व्यवस्था और अधिकार हम अपने विश्वासपात्र और अपने विशेष कृपापात्र महाराजा पृथ्वीसिंह राठौर को सौंपते है। पृथ्वीसिंह की आज्ञाएँ हमारी ही अनिषेध्य आज्ञाएँ हैं, ऐसा मानने के लिए इस फरमान द्वारा हम सब को बाध्य करते हैं। जो लोग इस आज्ञा के विरुद्ध व्यवहार करेंगे वे यदि राजपरिवार के ही अंग हो तो भी राजद्रोही माने जायँगे और उन्हें कठोर दण्ड दिया जायगा।"

यह फरमान पढकर नासिर खॉ व्याकुल हो उठा। उसने कहा, "अच्छा ! बादशाह सलामत का विश्वास और कृपा आपके ऊपर असीम है। इससे तो सचमुच उन्होंने आपके हाथ मे सर्वाधिकार ही सौप दिया है। वास्तव में बादशाह के प्रतिनिधि आप हैं। हम सब आपके आज्ञापालक ही रह गए। आपकी आज्ञा को बादशाह की आज्ञा ही मानने को इसमे कहा है।"

पीथल—लिखा तो ऐसा ही है। परन्तु यह अधिकार मुझे प्राप्त है, ऐसा मैं नहीं मानता। बादशाह जब तक यहाँ नही है तब तक सब काम यथापूर्व चलाते रहने की ही मेरी इच्छा है।

वे परस्पर स्नेहभाव प्रदर्शित करते हुए विदा हुए। परन्तु राजा पीथल ने समझ लिया कि नासिर खॉ को पहले से ही उनके प्रति जो द्वेष है उसमे इस पत्र से और भी वृद्धि हो गई है। और, नासिर खॉ के हृदय मे ? दानियाल को राज्याधिकार मिलने पर राजा पीथल को अच्छा पाठ पढाने का उसने जो निश्चय कर रखा था उसकी विफलता से निराशा हुई और बादशाह ने उन पर जो विश्वास दिखाया उससे अपना तेजोभंग समझकर

उसका कोप भी बढ़ता गया। वह महसूस करने लगा कि मुस्लिम दौलत का संरक्षण-भार एक 'काफिर कुत्ते' को सौंपने वाला बादशाह मुसलमान जनता के आदर के योग्य नहीं है। बादशाह और पीथल के प्रति जो क्रोध हुआ उससे एक-दो बार उसने अट्टहास किया। षड्यंत्र करके पीथल की हत्या ही करा देने की उसे इच्छा हुई। परन्तु उससे राजपूत सैन्य क्षुब्ध होकर उसकी ही हत्या कर डालेगी और कठोर दण्ड के लिए प्रसिद्ध बादशाह भी क्या करेगा कहा नहीं जा सकता! इन सब विचारों से जब वह परेशान हो रहा था उसी समय कासिमबेग उसके पास आ गया।

नासिर खाँ ने उससे कहा, "तुमने सुनी सब बातें? बादशाह ने सेना का सर्वाधिकार ही उस 'काफिर' को दे रखा है। उसका आदेश जो नहीं मानेगा उसे राजद्रोही माना जायगा। हम सब उसी के नीचे रहें! वह कुत्ता लात से भी छूने योग्य नहीं है और उसी के अधीन हमको रहना है! यदि ऐसी बात है तो इस राज्य को हमने क्यों जीता? हिन्दुस्तान को मुगलों के अधीन करानेवाले तो हम हैं और हम ही आज कहीं के नहीं रहे! बादशाह हमको केवल दास मानते हैं। इतना ही नहीं, इन काफिरों को सम्मान्य बनाकर हमारे ऊपर चढ़ाकर रखा है। यह सब कहाँ तक सहेंगे? इस पृथ्वीसिंह को नष्ट न कर देना हमारे लिए अपमानजनक है। इसका दर्प और गौरव! दिखा दूँगा सब! यह राज्य मुसलमानों ने अपनी भुजाओं के बल से जीता है, सो इसलिए नहीं कि बहनों को बेचने वाले इन नीचों को दान कर दें।"

कासिमबेग और अन्य मुस्लिम सरदारों की भी राय यही थी। उसने कहा, "हुजूर! आपका कहना बिलकुल ठीक है। परन्तु अभी सीधे विरोध करने से कोई लाभ नहीं। पहली बात यह है कि शहर की सारी सेना उसके अधीन है। हम विरोध करें तो हमें दबाने में उसे कोई कठिनाई नहीं होगी। किसी तरह से उसकी हत्या कर डाली जाय तो भी बादशाह को पता चल ही जायगा। परिणाम क्या होगा, कहने की आवश्यकता नहीं है। शाहजादा के ही हाथ से हत्या हो जाय तो ठीक हो सकता है। परन्तु

उसमें भी कठिनाई है। कितनी मुश्किल से हमने दानियाल शाह को इतना ऊँचा उठाया है। यदि एक भी कदम गलत हो जाय तो सब-कुछ बिगड जायगा।"

"तो क्या तुम्हारा मतलब है कि हम चुपचाप सब सहते रहें?"

"मेरी विनय है कि हम सावधानी से काम लें। सीधा विरोध करने से कोई लाभ तो होगा नही, उलटे हमारा ही सब काम बिगड सकता है। इसलिए प्रकट रूप मे कोई प्रतिकूल काम नहीं करना चाहिए।"

"फिर क्या करें?"

"हमारे द्वारा नही और किसी तरह उसकी हत्या हो जाय या बादशाह स्वयं उस पर रुष्ट हो जायँ तो हमारी इच्छाएँ पूर्ण हो सकती हैं। मैंने इसका रास्ता देख लिया है।"

"क्या? सुनूँ तो सही।"

"पहली बात, बादशाह को विश्वस्त रूप से यह समझा दिया जाय कि पीथल सलीम का साथ देने वाला है। इसमे कोई कठिनाई न होगी। दानियाल शाह के ही आदमी राजधानी में बिना इजाजत प्रवेश नही कर सकते—यही उसका लक्ष्य है। सोचने पर और भी कई कारण मिल जायँगे। सम्राट् के गुप्तचरों द्वारा ही यह सब उनके पास पहुँचना चाहिए। उनमे से कुछ लोग मेरे मित्र है। उनके द्वारा काम बनाया जा सकता है।"

"ठीक है, परन्तु उनके पक्ष मे भी तो लोग होंगे?"

"वह सब मेरे ऊपर छोड़ दीजिए। मैं सब ठीक कर लूँगा। आप केवल इतना ही देख लीजिए कि किसी प्रकार दानियाल शाह को पीथल से वैर हो जाय।"

"आज की सब बातें मालूम होने का परिणाम और क्या होगा? पीथल को स्वतन्त्र अधिकार देने का अर्थ ही दानियाल का अपमान है और उसने इस अधिकार का प्रयोग भी उनके विरुद्ध किया है। चलो, अभी उनसे मिलता हूँ। बाकी सब तुम कर लेना।"

नासिर खाँ सीधा दानियाल शाह के महल में पहुँचा। शाहजादा अपने

सम्राट् होने का स्वप्न देखकर प्रसन्न हो रहा था। नासिर खाँ को आया हुआ सुनकर उसे शीघ्र ले आने की आज्ञा दी और जब वह आया तो उसका मुख देखकर ही उसने अनुमान कर लिया कि बात कुछ गम्भीर है। उसने कहा, "क्यों नासिर, तुम्हारा मुँह गुठली-खोई गिलहरी जैसा क्यों दीख रहा है? क्या हो गया? क्या हमारे सम्मान्य अग्रज आगरा में आ पहुँचे हैं?"

"आप जब इतने खुश हैं तब किसी प्रकार का कष्ट देने में संकोच होता है। फिर भी कार्य आवश्यक है इसलिए हाजिर हुआ हूँ। दो मिनट अलग मिलना चाहता हूँ।"

सहज भीरु शाहजादे का मुख मलिन हो गया। वह नासिर खाँ को दूसरे कमरे में ले गया। नासिर खाँ ने कार्य की गम्भीरता बढ़ा देने के लिए अभेद्य मौन का अवलम्बन कर लिया। इससे दानियाल और भी घबरा गया और उसने पूछा, "क्यों नासिर, आखिर बात क्या है? इतनी जल्दी में कैसे आये हो?"

नासिर बोला, "आप सावधानी से सुनिए। मालूम होता है, मामला सब गड़बड़ हो गया है।"

"क्या गड़बड़? हमारे हाथ में राज्याधिकार है, तुम मदद के लिए साथ हो, फिर गड़बड़ी क्या हो सकती है?"

इसके उत्तर में नासिर खाँ ने पीथल के आदेश, बादशाह के फर्मान, उससे अपने और दानियाल के अपमान तथा शक्ति-क्षय आदि को चौगुना बढ़ाकर बताया। "बादशाह सलामत के पुत्र और भावी बादशाह आप और मैं इस कुत्ते के नीचे काम करें? यह हम कभी सहन नहीं कर सकते। और वह सलीम का पक्षपाती है, इसमें भी मुझे कोई शक नहीं!"

दानियाल—यदि ऐसा हो तो उसे किसी प्रकार······

नासिर—यह भी सोचा था। परन्तु किले के अन्दर की सारी सेना राजपूत है। इसलिए यदि पीथल को कोई हानि पहुँची तो वह हमारे ऊपर टूट पड़ेगी। हम इसका कोई और उपाय करेंगे।

, उसने कासिम बेग की सलाह बताई तो दानियाल ने उसका समर्थन किया। उसने कहा, "तुरन्त ही इसका प्रयत्न करो। यदि पीथल इतना विरोधी है तो सलीम शीघ्र ही यहाँ आ पहुँचेंगे। यदि भाई साहब ने राजधानी पर अधिकार कर लिया तो हमारा कुछ बचेगा ही नहीं। मुझे क्या करना चाहिए?"

"मुख्य बात आप यह ध्यान रखिए कि पीथल में चाहे कोई दोष हो, नीति और सामर्थ्य की उसमें कमी नहीं है। सारा अधिकार अपने हाथ में होने पर भी वह यह दिखायेगा कि जो कुछ करता है, आपकी सलाह से करता है। इस प्रकार रिआया को आपके ऊपर जो श्रद्धा है उसे वह नष्ट कर देगा। सम्राट् का फर्मान उसके हाथ में है इसलिए सीधे लड़ने से कोई लाभ नहीं। ऐसा करना चाहिए जिससे मालूम हो कि वह घमण्डी और आपकी आज्ञाओं का उल्लंघन करने वाला है। सेना-सम्बन्धी कार्यों में उसका सर्वाधिकार है। उसी तरह अन्तःपुर के कार्यों में आपका भी सर्वाधिकार है और आप भावी बादशाह भी हैं। इसलिए आपकी अधिकार-सीमा के अन्दर वह किसी बात में विरोध करे या विपरीत भाव दिखाये तो उसे राजद्रोही सिद्ध कर सकते हैं। ऐसा हुआ तो बादशाह का ही विश्वास उस पर से उठ जायेगा।"

दानियाल—ठीक है। यह कुछ मुश्किल नहीं है। इस सेठ की ही बात ले लेंगे। यदि हुक्म न माना तो······।

नासिर खाँ—आपका क्या विचार है?

दानियाल—तुमको याद नहीं, चार-पाँच महीने पहले तुमसे भी मैंने कहा था। सेठ कल्याणमल के घर में जो लड़की है उसे मेरे अन्तःपुर में भेजने की आज्ञा दी थी। पिछले नौरोजे में मीना बाजार में मैंने उसे देखा था। अब्बाजान उससे बहुत देर तक बात करते रहे थे। मैं भी साथ था। उसके सौन्दर्य की बात क्या कहूँ? हूरें भी उसके सामने कुछ नहीं। उसी समय मेरा मन खो गया। सेठ को बुलाकर मैंने कहा। उसने जवाब दिया कि बादशाह सलामत का आदेश हो तो मैं मान लूँगा। वैसा न हो

तो सम्भव नही है। सेठ के ऊपर अब्बाजान की कृपा मैं जानता हूँ। इसलिए वहाँ निवेदन करने मे मुझे सकोच हुआ। अब अन्तःपुर का अधिकार मेरे हाथो मे है। इसलिए बल-प्रयोग से भी हम अपनी इच्छा पूरी कर सकते हैं। पीथल को आज्ञा देकर देखूँगा। न माना तो राजद्रोही होगा।

नासिर खाँ को भी यह ठीक लगा। जैसे पीथल के साथ वैसे ही कल्याणमल के साथ भी उसका वैर था। उसे यह भी मालूम था कि हिन्दू बालिकाओ को मुस्लिम अन्तःपुर में लाने को पीथल कभी सहमत न होगा। इसलिए कल्याणमल की पौत्री पीथल के द्वारा ही दानियाल के अन्तःपुर में आये तो कितना अच्छा होगा!

नासिर खाँ अति प्रसन्न होकर घर लौटा।

बादशाह के दरबार मे नौरोज का उत्सव बडी धूम-धाम से मनाया जाता था। बादशाह उसे अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद से मनाते थे। उस समय यह नौ दिन चलता था, किन्तु बाद मे चौदह दिन तक चलने लगा था। उन नौ दिनों में बादशाह का दरबार राजमहल के बड़े आँगन में लगा करता था। दूर-दूर से राजा-महाराजा, प्रभुजन और उमरा लोग आते थे और आँगन में बने हुए मण्डप मे बैठकर बादशाह को अपनी भेंटें दिया करते थे। धनी और प्रमुख व्यक्तियों के लिए यह अवसर अपने वैभव और आडम्बर के प्रदर्शन का भी माना जाता था।

दिन में दरबार, जलसे, व्यायाम-प्रदर्शन और हाथियों की लडाई आदि हुआ करती थी, रातें संगीत तथा नृत्य आदि में व्यतीत की जाती थीं। गज-युद्ध अकबर का एक परम प्रिय विनोद था, इसलिए विशेष रूप से प्रशिक्षित हाथियों को लडाना राजधानी का एक मुख्य विनोद बन गया था। भिन्न-भिन्न प्रभुजनों के सेवकों में से कुशल वीरों को चुनकर लडाना,

पहलवानो की कुश्तियाँ, बाजीगरी के खेल, पण्डितो के वादविवाद आदि अनेक प्रदर्शन इन दिनों राजधानी मे होते थे, जिनसे लोगो का मनोविनोद होता था। प्रभुजनों को पुरस्कार और राज-प्रिय लोगो को पदवियाँ देना तथा नवसम्मानित लोगो का अभिनन्दन करना भी उत्सव का अग होता था।

इस सबके अतिरिक्त, राजमहल के अन्दर बादशाह ने मीना बाजार लगाना भी शुरू किया था। अनेक सद्‌गुणों के आगार अकबर में विषया-सक्ति एक बडा अवगुण था। देवेन्द्र-तुल्य प्रतापी उसमे देवराज का यह विशेष दोष भी उतना ही प्रबल था। सुना जाता है कि विभिन्न देशों से विभिन्न जातियो की चुनी हुई पाँच हजार स्त्रियाँ उसके अन्तःपुर का अलंकार बनी थीं। उसके इस स्वभाव के अनुरूप ही प्रबन्ध था इस मीना-बाजार का। राजमहल के अन्दर बड़े उपवन मे छः-सात पंक्तियो में बड़ी-बडी दूकानें सजाई जाती थीं और राजधानी की मुख्य-मुख्य दूकानो से तरह-तरह का सामान लाकर उनमे रखा जाता था। उन अस्थायी दूकानों में कुलीन महिलाओं को विक्रेत्री नियुक्त किया जाता था। बादशाह और उनके साथ जाने वाले उनके पुत्रों को छोडकर कोई पुरुष उसके अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता था। सौन्दर्य, वंश-महत्ता और पद के कारण प्रसिद्ध स्त्रियो को वहाँ आकर विक्रय करने की जो आज्ञा मिलती थी उसका उल्लघन अथवा उसके विरुद्ध आवाज निकालना राजद्रोह माना जाता था। इस प्रकार राजाज्ञा को मानकर मीना बाजार में आने वाली महिलाओं मे से यदि किसी की ओर बादशाह का मन आकृष्ट हो जाता तो वह उसके चरित्र का नाश कर देने में भी संकोच नहीं करता था। अपनी स्त्रियो को इस बाजार में भेजने की बाध्यता से केवल सिरोही के महाराज मुक्त थे। इस प्रकार के एक समारोह मे ही सलीम ने बाद में जगत-प्रसिद्ध हुई नूरजहाँ को देखा था।

चार माह पूर्व इसी मीना बाजार में दानियाल ने सूरजमोहिनी को देखा था। उसी दिन से वह उस बालिका को अपने अन्तःपुर में

लाने की इच्छा कर रहा था। उसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि यह कासिमबेग अथवा इब्राहीमखाँ के वश का काम नहीं है। इसलिए उसने सेठजी को बुलाकर अपनी इच्छा सीधे उनसे ही प्रकट की। उनके उत्तर से उसे सन्तोष नहीं हुआ। सेठजी ने कहा था कि यदि सूरजमोहिनी मेरी पुत्री अथवा पौत्री होती तो मैं कोई बाधा नहीं डालता। परन्तु वह गोद ली हुई है, इसलिए उसके अन्य बन्धु-बान्धवों से पूछना आवश्यक है। शाहजादा को यह स्वीकार करना पड़ा। दो माह बाद जब उसने फिर से वह बात उठाई तो उत्तर मिला, "बन्धु-बान्धवों का कथन है कि बादशाह स्वयं ऐसी इच्छा प्रकट करें तभी इस पर विचार किया जा सकता है।" दानियाल शाह संकट में पड़ गया। वह जानता था कि बादशाह सेठजी का सम्मान करते हैं। ऐसी हालत में यह भी स्पष्ट था कि यदि उनके सामने अपनी इच्छा प्रकट की जाय तो वह क्या उत्तर देंगे। सैनिकों को भेजकर उसका अपहरण कराया जाये तो भी बादशाह के कोप का भाजन बनाना होगा। यही सब सोचकर अब तक वह चुप रहा था। अब उसे लगा कि यह अवसर अपनी उद्देश्य-सिद्धि के लिए उपयुक्त है। बादशाह की घोषणा थी कि शाहजादे की आज्ञा राजाज्ञा के समान ही माननी चाहिए, इसलिए उसने मान लिया कि कल्याणमल को भी अब विपरीत आचरण करने का साहस नहीं होगा। और यदि क्षत्रिय वीर पृथ्वीसिंह राठौर ही दूत बनकर जायें तब तो सेठजी इसे बहुमति ही मानेंगे।

विलम्ब को कार्य के लिए हानिकर समझकर दूसरे ही दिन दानियाल ने राजा पीथल को बुलवा भेजा। आदमी उत्तर लाया कि राजा नगर निरीक्षण और सेना का ठीक प्रबन्ध करने के लिए गये हैं और सायंकाल तक नहीं लौटेंगे। आते ही उन्हें भेज देने का निवेदन कर दिया गया है।

अब तक सेठजी को भी ये सब बातें मालूम हो चुकी थीं। उन्होंने पूरी जानकारी मिलने के पहले ही सम्भावनाओं का अनुमान कर लिया था। दानियाल शाह ने उनसे अपनी अभिलाषा सीधे बताई थी और बादशाह की कृपा से अब तक उसके विरुद्ध खड़ा हुआ जा सका था। अब

बादशाह दूर है और दानियाल शाह के हाथ में अधिकार है इसलिए सम्भव है कि वह बल-प्रयोग करके सूरजमोहिनी को अपने अन्तःपुर में ले जाय। यह सब सोचकर उन्होंने निश्चय किया कि उसको इसका अवसर ही नहीं देना चाहिए। इसलिए बादशाह के दक्षिण को प्रस्थान करते ही सेठजी ने सूरजमोहिनी और उसकी नानी को पर्याप्त अनुचरों के साथ हरिद्वार भेज दिया। जब उनको दानियालशाह की विचार-गति का पता चला तो उन्होंने अपनी कार्रवाई का औचित्य सोचकर ईश्वर को धन्यवाद दिया।

सब सेनाओं का निरीक्षण करके दलपतिसिंह के साथ राजा पीथल लौटे तो उन्हें दानियाल के आगमन की सूचना मिली। शीघ्र ही शाहज़ादा से मिलने के लिए वे राजमहल में पहुँचे। अपने स्वामी की उन्नति के साथ दलपतिसिंह की भी पदोन्नति हो गई थी। पीथल की निजी सेना का उपनायक वह पहले ही था, अब राजकीय सेना के एक विभाग का नायकत्व और आगरा के संरक्षण में एक उत्तरदायित्व भी उसे मिल गया।

दानियाल शाह ने अति प्रसन्नता के साथ पीथल का स्वागत किया। कुशल-प्रश्नों के बाद उसने कहा, "राजधानी की रक्षा के लिए आप जो व्यवस्था कर रहे हैं वह बहुत अच्छी है। यदि बादशाह स्वयं आक्रमण करें तो उनको भी बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा।"

पीथल ने उत्तर दिया, "बादशाह सलामत की आज्ञा का पालन करने के लिए मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ। यहाँ कोई भी बल-प्रयोग करने को तैयार होगा ऐसा मैं नहीं मानता।"

दानियाल—भाई साहब की बात आपने सुनी नहीं? वहाँ से अब कोई डर नहीं है।

पीथल—नहीं, मैंने कुछ नहीं सुना। पूरे दिन सैनिकों के बीच में और भिन्न-भिन्न केन्द्रों को देखने में व्यस्त रहा।

"भाई साहब के पास से शा कुली खाँ आज दुपहर को आया है। अब्बाजान के समान ही विजय पाने की इच्छा उनकी भी है। इसलिए उन्होंने सारी सेना को उदयपुर के लिए रवाना होने की आज्ञा दे दी है।

राजा जगन्नाथ और राजपूत सेना परसों रवाना हो चुकी है। शेष सेना को आगे बढाने के लिए अधिक धन की आवश्यकता है। उसके लिए पत्र लेकर शा कुली खॉ आया है। कम-से-कम एक करोड रुपया चाहिए। रुपया पहुँचते ही शाबास खॉ तोपों के साथ चल पडेंगे।"

"ऐसा हो तो मेरे मन पर से एक भारी भार उतर जायगा। सलीम शाह सेना के साथ यहॉ आ जायँ तो उनको रोकने की शक्ति शायद हममे नही होगी। यदि वे उदयपुर की ओर बढ़ते हैं तो हमारा भय मिट जाता है।"

"सेना लेकर इधर आने का साहस भाई साहब मे नही मालूम होता। बादशाह सलामत की आज्ञाएँ सुनकर जो निराशा हुई उसीसे उन्होंने प्रताप-सिंह के साथ युद्ध छेडने या निश्चय किया होगा। इसमे कोई दोष नहीं। कोई भी जीते, हमारे लिए अच्छा ही है।"

"बादशाह सलामत के सीमन्त पुत्र के साथ युद्ध करना कोई प्रसन्नता की बात नहीं है। इसलिए हमको धर्म-संकट में न डालकर शत्रु से युद्ध करने के लिए चले गये,यह अच्छा ही हुआ।"

"बाधा मिट गई। अच्छा, मैंने आपको इस सब चर्चा के उद्देश्य से नही, अपने एक काम के लिए बुलवाया है।"

"आपकी आज्ञा भर की देरी है। बादशाह की अनुपस्थिति मे, आप जानते हैं, आपको ही मै उनका प्रति-पुरुष मानता हूँ।"

"हमारे पीथल के मन में और कोई बात नही होगी, मै जानता हूँ। मेरी एक इच्छा है। उसमें आपकी सहायता चाहता हूँ। सेठ कल्याणमल को आप जानते हैं। उनकी एक पौत्री है। उसे मैं अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ।"

मुसलमान शाहजादो का कुलीन वंशो की हिन्दू कन्याओं के साथ विवाह करना उस काल में कोई नई बात नहीं थी। इसलिए यह मोह पीथल को विलक्षण नहीं मालूम हुआ। परन्तु वे यह भी जानते थे कि इस कन्या को सेठजी ने दलपतिसिंह को देने का संकल्प कर रखा है और वे

दोनों परस्पर प्रणय-बद्ध भी हैं। इसलिए बात टालने के इरादे से उन्होंने कहा—

"इसमें क्या कठिनाई है? आप यदि उससे विवाह करें तो सेठजी अनुग्रह ही मानेंगे। वैश्यों का राज-परिवार के साथ सम्बन्ध हिन्दुओं में असंभव नहीं है। ऐसी स्थिति में बादशाह के प्रिय पुत्र की पत्नी बनना कितनी बड़ी बात है। तो आपने उनसे ही सीधे बात की है?"

"दो-तीन बार बुलाकर कहा, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि यदि बादशाह की आज्ञा हो तो कोई विरोध नहीं है।"

"तो बादशाह सलामत की सेवा में ही निवेदन करने में क्या बुराई है?"

"बुराई कुछ नहीं, लेकिन वैसा किया नहीं। अब तो हम ही राज प्रति-पुरुष हैं। अब्बाजान की आज्ञा भी है कि हमारी आज्ञाओं को राजाज्ञाएँ मानना चाहिए। यह विवाह अभी सम्पन्न करने का मैंने निश्चय किया है। आप इसकी सब व्यवस्था कर दीजिए।"

"यदि सेठजी को यह स्वीकार न हो तो?"

"हमारा हुक्म बादशाह का हुक्म है। उसकी अनुमति किसलिए चाहिए? यदि वह मंजूर न करें तो तुम बल-प्रयोग करके लड़की को ले आओ। यह मेरी आज्ञा है।"

पीथल का मुख क्रोध से लाल हो गया, परन्तु वह भाव उन्होंने अपने शब्दों में नहीं उतरने दिया। उन्होंने उत्तर दिया, "हुज़ूर, इस आज्ञा का पालन अभी नहीं हो सकता।"

"क्यों?"

"पहली बात, वह कन्या और उसकी नानी दो-तीन दिन पहले ही द्वारिका या गोकर्ण—पता नहीं कहाँ—तीर्थ-यात्रा के लिए गई हैं। और मैंने यह भी सुना है कि एक योग्य वर के साथ उसका विवाह कर देने का निश्चय भी हो चुका है।"

दानियाल शाह का मुख म्लान हो गया। विवाहित स्त्रियों का अप-

हरण करके राजकुमारी का विवाह करना अकबर को बिलकुल पसन्द नही था। सलीम के साथ रुष्ट होने का मुख्य कारण भी यही था। इसलिए यदि सूरजमोहिनी का विवाह हो गया तो मेरी इच्छा कभी पूर्ण न होगी, यह उसे मालूम था।

उसने पूछा, "आपको कैसे मालूम कि वह तीर्थयात्रा के लिए गई है? किस रास्ते से गई है? यदि रास्ते से अपहरण कर लिया जाय तो हमारे ऊपर दोष नही आ सकता। विवाह भी हो जायगा, बादशाह का प्रातिकूल्य भी न होगा।"

पीथल ने उत्तर दिया, "यह भी असाध्य है। सम्राट् की मुद्रा के रक्षा-पत्र और उनकी ही सेना से दस राजपूतों की रक्षा में वे गई हैं। इस सब की व्यवस्था मैंने ही की थी। कल्याणमल के प्रति सम्राट् कितने कृपालु हैं आप जानते ही हैं। अपनी पौत्री के बारे में उन्होंने एक आवेदन बादशाह को समर्पित करने के लिए मुझे दिया था। बादशाह सलामत ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसलिए इस प्रकार काम करने से कोई लाभ नहीं मालूम होता।"

"सेठजी ने हमको बिलकुल बेवकूफ बना दिया है। आप उसको समझा दीजिए कि मैं उस पर बहुत अप्रसन्न हूँ। अवसर आने दीजिए। अच्छा सबक सिखा दूँगा।"

"ऐसा न फरमाएँ। कल्याणमल बहुत प्रबल व्यापारी हैं। बादशाह के प्रियपात्र भी हैं। आपकी इच्छा के विपरीत उन्होंने कुछ कहा नहीं। केवल यही तो कहा था न कि बादशाह की सम्मति चाहिए! इसमें आपको क्या कठिनाई हो सकती है?"

"इस बारे में, पीथल, मुझसे कुछ मत कहो। उसको एक सबक सिखाऊँगा ही। उसका साथ देने वाले सभी को मैं विद्रोही मानूँगा।"

पीथल ने समझ लिया कि संकेत उनकी ओर है। उन्होंने मुस्कराकर कहा, "आपका विरोधी बनना कोई नहीं चाहेगा। परन्तु अकारण क्रोध से राज-कार्य में बाधा आ सकती है, यह आपको मुझसे नहीं सीखना है।"

पीथल की बातों से शाहजादे को प्रसन्नता नहीं हुई। फिर भी उनका उत्तर देने का साहस उसमें नहीं था। बातें पूरी हो गईं और पीथल विदा लेकर निकल पड़े। तब तक रात हो चुकी थी। राजमहल के बाहर बिलकुल प्रकाश नहीं था। बड़े बाजारों को छोड़कर अन्य वीथियों में दीपक जलाने की व्यवस्था उन दिनों नहीं थी। प्रभुजन आदि के आने-जाने पर सेवक मशाल लेकर साथ निकला करते थे। साधारण लोग भी साथ में प्रकाश लेकर चलते थे।

शीघ्रता से आने के कारण पीथल के दीपवाहक उनके साथ नहीं आ सके थे। उस धीर को इससे कोई भय भी नहीं हुआ। साथ चलने वाले दलपतिसिंह से कुछ-कुछ बातें करते हुए जा रहे थे।

पीथल ने कहा, "घर पहुँचते ही तुम सेठजी के पास जाकर एक बात बता देना।"

सेठजी से मिलने जाना सदा ही दलपतिसिंह को प्रिय था। पीथल ने कहा, "बात यह है—उनको सावधान कर देना है कि उनकी पौत्री और उसकी नानी कहाँ और किस मार्ग से गई है, इसका पता किसी को न चले।"

व्यस्त रहने के कारण दो दिन से दलपति सेठ जी के घर नहीं गया था। इसलिए पीथल के संदेश का अन्तर्गत समाचार उसके लिए बहुत दुःख का कारण बन गया। उसने पूछा, "क्या? सूरजमोहिनी दूर देश गई है? उस पर कोई विपत्ति आ सकती है?"

पीथल ने उत्तर दिया, "डरो मत। उसकी सुरक्षा का सब प्रबन्ध मैंने कर दिया है। कुंडली के अनुसार अभी उसके लिए बुरी दशा है। उसकी शान्ति के लिए वह तीर्थ-यात्रा के लिए भेजी गई है।"

इस पर दलपतिसिंह को पूरा विश्वास नहीं हुआ। उसने अनुमान किया कि कष्ट-दशा के परिहार के लिए यात्रा हुई तो इतने गुप्त रूप से और शीघ्रता के साथ होने की आवश्यकता नहीं थी। उसे शंका हुई कि सूरजमोहिनी के साथ उसका प्रेम सेठजी को स्वीकार नहीं है, इसीलिए

उन्होंने उसे दूर कर दिया है। उन्होंने मेरी विवाह-प्रार्थना का विरोध नहीं किया, परन्तु स्वीकृति भी नहीं दी। इसी कारण से यह तीर्थ-यात्रा शुरू हुई होगी। फिर भी उसे लगा कि उसके डर से दूर जाने की आवश्यकता तो नहीं थी। इसलिए शायद यह बात न भी हो।

पीथल ने दलपतिसिंह की विचार-गति का अनुमान कर लिया और कहा, "तुमसे साफ बात करने में कोई बाधा नहीं है। तुम्हें भी जान लेना चाहिए। उस कन्या का विवाह तुम्हारे साथ करना सेठजी को स्वीकार है, परन्तु इसमें कुछ कठिनाई है। पहली बात तो यह है कि दानियाल शाह उसको अपनी बनाना चाहता है। अब तक सेठजी किसी प्रकार बचाते रहे; अब बादशाह के दूर होने से शाहजादा इसके लिए बाध्य करेंगे यह सोचकर हमने पहले ही उन्हें दूर कर दिया है।"

दलपतिसिंह को अपनी आशा पूर्ण होने का हर्ष और दानियाल शाह पर अत्यधिक क्रोध हुआ। वे दोनों इस प्रकार बातें करते जा रहे थे, उसी समय, पता नहीं किधर से, चार-पाँच सशस्त्र लोग उनके सामने आकर कूद पड़े। "लडकी-चोर! राक्षस! यही है!"—चिल्लाते हुए एक ने पीथल के घोड़े के गले पर तलवार का वार किया। चोट के कारण घोडा भाग पड़ा और श्रेष्ठ अभ्यासी पीथल सावधानी के साथ उससे नीचे कूद पड़े। दलपतिसिंह भी लगाम छोड़कर तलवार हाथ में लेकर आक्रमणकारियों के सामने आ गया। आक्रमणकारियों के प्रमुख ने गालियों की वर्षा करते हुए पीथल पर आक्रमण किया। बाकी तीनों उसको घेरने ही जा रहे थे कि उनमें से एक दलपतिसिंह की तलवार के प्रहार से धराशायी हो गया। फिर जो युद्ध हुआ उसमें जय-पराजय की शंका रह ही नहीं गई। शरीर-बल और अभ्यास-बल दोनों में अद्वितीय पीथल से चारों एक साथ युद्ध करते तो भी डर न होता। अब तो उनमें से एक घायल हो चुका था और पीथल की सहायता के लिए दलपतिसिंह भी मौजूद था। इसलिए उन चारों का डटा रहना कठिन हो गया। कुछ देर तक तीनों इन दोनों से युद्ध करते रहे, परन्तु अन्त में उनका प्रमुख भी कन्धे पर तलवार लगने से गिर

पड़ा। बाक़ी दोनों भाग खड़े हुए।

अपनी तलवार का रक्त साफ करके उसे मियान में डालते हुए पीथल ने कहा, "तुमने मेरे प्राणों की रक्षा की। इसलिए मैं आजीवन तुम्हारा ऋणी हूँ। पृथ्वीसिंह कृतघ्न नहीं है।"

दलपतिसिंह ने उत्तर दिया, "शत्रु से युद्ध करना सैनिक का कर्तव्य है। इसमें प्रशंसा की क्या बात है?"

"लेकिन, यह काम किसका है? उनकी बातें तुमने सुनीं? उनमें अवश्य कोई अर्थ है। इसका पता लगाना चाहिए। परन्तु अभी किसी को कुछ बताना नहीं।"

"कोई रहस्य अवश्य है। आपको 'कन्या-चोर' कहा था। वह हत्यारा गिरा तो पड़ा है, लेकिन मरा नहीं है। उस को पकड़कर पूछें तो शायद बातें मालूम हो जायें।"

"ठीक है। मैं तुम्हारे घोड़े पर चला जाऊँगा। आसपास से किसी को बुलाकर मेरे घायल घोड़े को और इस आदमी को अपने घर ले जाना। नहीं तो कल शहर-भर में यह बात फैल जायगी। इससे कई कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं।"

ये लोग इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि दस-पन्द्रह घुड़सवार सैनिकों के संरक्षण में एक पर्देदार डोली वहाँ आई। दो-दो लोग मशाल लेकर आगे-पीछे चल रहे थे। डोली का आकार-प्रकार और ठाठबाट देखकर यह अनुमान सहज ही किया जा सकता था कि किसी प्रभु-परिवार की स्त्री जा रही है। उस दल के नायक से दलपतिसिंह ने सारी बात कह सुनाई। उसने शिविका के पास जाकर अपनी स्वामिनी से सब बात कही और लौटकर कहा, "आपको जो सहायता चाहिए सो कर देने की आज्ञा मेरी स्वामिनी ने दी है। मुझे स्वयं अपने साथ चलने की अनुमति दीजिए।"

पीथल—"मैं आपकी स्वामिनी का बहुत उपकृत हूँ। सबसे आवश्यक है इस घायल घोड़े की रक्षा। यह मुझे बहुत प्रिय है। आपकी स्वामिनी

इसकी रक्षा की व्यवस्था करें तो बड़ी कृपा हो। दूसरे, मेरी हत्या, करने के लिए आये हुए इस आदमी को मेरे अंगरक्षक के घर पहुँचाना है। मेरे साथ किसी के आने की आवश्यकता नहीं।"

इसका उत्तर पालकी से आया, "राजा पृथ्वीसिंह की प्रार्थना आज-कल आज्ञा के समान गणनीय है। वैसे भी आपकी सब प्रकार की सहायता करने के लिए मैं सदा तैयार हूँ।"

पीथल की इच्छा के अनुसार सब काम करने की आज्ञा दी गई। पीथल अपने घर को चले गए। दलपतिसिंह घायल होकर मूर्छित पड़े व्यक्ति को देखता बहुत देर तक खड़ा रहा। वह राजपूत वेश-धारी था। उसके इस साहस का कारण कितना भी सोचने पर उसकी समझ में नहीं आया। अन्त में उसे एक घोड़े के ऊपर लेकर स्वयं दूसरे के ऊपर बैठकर वह अपने घर चला गया।

मार्ग में इस असमय में मिली हुई कुलीन स्त्री कौन हो सकती है, क्यों इस समय राजमार्ग से जा रही थी आदि प्रश्नों पर विचार करते हुए पीथल अपने घर पहुँचे। मिलने आये हुए लोगों को वापस कर देने की आज्ञा देकर वे घर के अन्दर चले गए। नित्यकर्म से निवृत्त होकर, पूजा आदि के बाद जब वे भोजन के लिए जाने लगे तो अन्तःपुर के पालकों को बुलाकर आज्ञा दी कि पहरेदारों और अंगरक्षक सेना को चेतावनी दे दें कि किसी को भी अन्दर आने न दिया जाय और पहरे में विशेष सावधानी रखी जाय।

"यह आज्ञा मेरे लिए भी बाधक है? समय-असमय के नियम पुराने मित्रों के लिए नहीं होते"—मेघहीन आकाश से अचानक गर्जन जैसा यह प्रश्न सुनकर पीथल ने चौंककर पीछे देखा तो अपने मुख्य सचिव के साथ एक स्त्री-वेशधारी किन्तु पौरुषशाली युवक निस्संकोच आगे आ रहा

था। इनके मुख से निकल गया—"आप ?"

आगत—हाँ ! मैं ही। क्यो, कोई असुविधा तो नही हुई ?

एक संकेत मे ही सेवकों को कमरे से बाहर करके पीथल ने कहा—"हुजूर ! यह साहस है ! शा कुलीखाँ ने आज शाम को समाचार दिया था कि आप प्रतापसिंह से युद्ध करने के लिए रवाना हो चुके हैं।"

आगत था सलीम शाह। उसने कहा—"वह सब ठीक है। परन्तु यह तो बताइए कि रास्ते के युद्ध मे आपको चोट तो नही आई ?"

"तो उस शिविका मे आप थे ?" शाहजादा और राजा पीथल दोनों जोर से हँस पड़े।

सलीम—"हाँ, अपने को मदद करने वाली स्त्री-रत्न को देख लीजिए। मुझे पता नहीं था कि अब्बाजान ने मेरे नगर में प्रवेश करने पर पाबन्दी लगा रखी है या नही। और दूसरों को पता चलने की आवश्यकता भी नही थी। यदि पहले मालूम होता तो शायद मेरे परम प्रिय मित्र पृथ्वीसिंह राठौर कहीं नगर-द्वार मे ही आकर मेरा स्वागत करते और फिर किसी महल में निवास करा देते। वहीं मेरे छोटे भाईजान बड़े प्रेम के साथ मेरे लिए कोई मिठाई भेज देते और उसे खाकर मुझे सुख-भोग के लिए सीधे स्वर्ग की ओर चल देना पड़ता। यह सब सोचकर ही, पुरुषों के योग्य न होने पर भी—परन्तु पुरुषों में मैंने दानियाल को शामिल नहीं किया है—यह बुर्का पहनकर आने का निश्चय किया। इससे यह तो सम्भव हुआ कि अपने मित्र से मिल सका।"

पीथल—"हमे मालूम था कि परसों तक आप अजमेर में थे। इन दो ही दिनों मे आप यहाँ कैसे आ गए ?"

"क्यो पीथल, इसमे कठिनाई क्या है ? मेरे प्रपितामह बाबर शाह ने इससे अधिक दूरी एक ही दिन मे तय नहीं की थी ? और मेरे अब्बाजान जब पन्द्रह दिन के अन्दर एक अश्व-सेना लेकर गुजरात पहुँचे थे तब तो उनके साथ आप भी थे ? क्या मैं तैमूर का वंशज नहीं हूँ ? दासी-पुत्र तो कदापि नहीं हूँ ! मेरी धमनियों मे प्रवाहित होने वाला रक्त शत-शत

अश्वमेध करने वाले सूर्यवंशी राजपूतों का है। तब, आपका प्रश्न असंगत नहीं है?"

"सरकार! अपराध क्षमा हो! ऐसी बात नहीं कि आपका बल और पराक्रम मैं जानता नहीं। परन्तु, आप सेवकों के साथ तो आये होंगे?"

सलीम फिर से हँस पड़े। बोले, "मेरे मित्र! डरो मत। मेरे साथ कोई सेना नहीं आई। क्या मैं अपने परम मित्र पीथल से युद्ध करूँगा?"

पीथल की जान-में-जान आई। वे जानते थे कि सलीम के साथ की बड़ी सेना यदि दुर्ग को घेर ले तो रक्षा करना कठिन होगा। उन्होंने पूछा, "तो फिर, उदयपुर जाने का निश्चय करके इधर क्यों लौट आये? हम सब ने सोचा था कि पिताजी को प्रसन्न करने योग्य विजय पाकर आप यथासमय वहाँ पहुँच जायँगे।"

"ऐसा ही सोच रखा था। शा कुली खाँ के धन लेकर आते ही रवाना होने का निश्चय था। परन्तु परसों जब मैं शिकार खेलने के लिए निकला तो सुना कि हमारे सेनापति, अब्बाजान के विश्वस्त सेवक शाबास-खाँ किसी छोटी लड़ाई में मारे गए। बिना सेनापति के क्या युद्ध हो सकता है? इसलिए सोचा, जरा राजधानी तक जाकर देखें, हमारे मित्रोत्तम क्या कर रहे हैं।"

"क्या? शाबास खाँ मर गये? किससे लड़कर मरे?"

"जब मरे तब मैं अजमेर में नहीं था। इसलिए यथावत समाचार नहीं मालूम है। समाचार जो देने आया था उसका कहना था कि हमारे दीवान भगवानदास से कुछ वाग्विवाद हो गया और अन्ध-क्रोधी भगवान-दास ने तलवार निकालकर उसका कण्ठ छेद दिया।"

बुद्धिमान पीथल को सलीम की बातों से यथार्थ अवस्था समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। बादशाह के विश्वासपात्र शाबास खाँ को कोई तुच्छ बात लेकर मार डालने का साहस भगवानदास को होगा यह विश्वास के योग्य नहीं था। इसलिए "यदि कीचक मरा तो मारा भीमसेन ने" इस तर्क के अनुसार पीथल ने जान लिया कि यह घटना सलीम शाह

की अनुमति के बिना नहीं घटी है।

यह सभी को विदित था कि सलीम को नियन्त्रण में रखने के उद्देश्य से ही बादशाह ने उनकी सेवा में शाबास खाँ को भेजा था। शाबास खाँ के जीवित रहते सलीम स्वतन्त्र रूप से कोई अधिकार नहीं चला सकता था। इसलिए पीथल को कोई शंका नहीं रही कि सलीम की आज्ञा से ही भगवानदास ने उस पर हाथ उठाया। धन लाने के बहाने शा कुली खाँ को आगरा भेजने का हेतु भी उनके सामने स्पष्ट हो गया। उन्होंने पूछा "शाबास खाँ के स्थान पर अब सेनापति कौन है?"

"बादशाह का आदेश आने तक भगवानदास को ही काम चलाने की आज्ञा मैंने दी है।"

"अच्छा! शाबास खाँ के निजी कोष में तो पर्याप्त धन था......"

"मैंने सुना कि उसी के कारण लड़ाई हुई थी। शाबास कम-से कम पाँच करोड़ रुपया अपने साथ ले गया था। हमारी युद्ध-यात्रा के लिए धन की कमी देखकर भगवानदास ने उसमें एक हिस्सा राज्य की आवश्यकता के लिए दे देने की प्रार्थना की। शाबास ने उसे स्वीकार नहीं किया। तुर्क होने पर भी उसकी जान सचमुच बनिये की थी। हमें इतनी आवश्यकता थी परन्तु वह एक कौड़ी भी देने के लिए तैयार नहीं हुआ।"

"इसलिए अब उसका पूरा खज़ाना ही भगवानदास के हाथ में आ गया। है न?"

"हाँ, ऐसा ही कुछ है।"

ज़रा हँसकर, निस्सार बनाकर, सलीम ने जो ये बातें कहीं उनकी गुरुता सोचकर पीथल का हृदय चंचल हो गया। सलीम की बातों से दो तथ्य स्पष्ट थे—एक तो यह कि प्रतापसिंह से लड़ने के लिए सजाई गई भारी सेना अब सलीम के स्वतन्त्र शासन में आ गई; सलीम को नियन्त्रण में रखने की दृष्टि से नियुक्त शाबास खाँ की मृत्यु से उस सैनिक शक्ति को चाहे जिस ओर मोड़ना और चाहे जिसके विरुद्ध ले जाना उसके लिए सुसाध्य हो गया। दूसरे, मानसिंह आदि हिन्दू राजा और अकबर के

'दीन इलाही' के विरोधी मुसलमान प्रमुजन बादशाह के विरुद्ध सलीम की सहायता करने मे और आवश्यक हुआ तो उसे सिंहासनारूढ़ भी करा देने मे संकोच नहीं करेंगे। इन सबके लिए एकमात्र बाधा हो सकती थी धन-दौर्बल्य की, सो वह भी अब नहीं रही। पीथल को भय होने लगा कि साहसशील शाहजादा सलीम क्या न कर बैठेगा! उन्हे विचार-मग्न देखकर सलीम ने पूछा—"मालूम होता है, मेरी बातो से आपके सामने कोई बडी समस्या खडी हो गई। ऐसा क्यो ?

पीथल ने उत्तर दिया—"नहीं, कुछ नहीं। निजी झगडो से प्रमुजनों के मरने में कोई विशेष बात नही है। फिर भी, अजमेर मे जब यह स्थिति है तब इस प्रकार अकेले आप यहाँ पधारे, सो क्यो, यही मैं सोच रहा हूँ।"

"वाह भाई वाह! अपने प्रिय मित्र पीथल से मिलने आ रहा हूँ तब मुझे कौनसी बाहरी सहायता की आवश्यकता है? और जो यह प्रश्न है कि इस समय इधर क्यों आया, सो मित्रो से मिले बहुत दिन हो गए थे। सुहृद-समागम तो सदा आनन्ददायक होता है न ?"

पीथल इसका कोई उत्तर न देकर केवल मुसकरा दिया। इस पर सलीम ने पूछा—"तो क्या मेरे यहाँ आने की मनाही है ?"

पीथल—"ऐसा क्यों पूछते हैं? आप बादशाह के सीमन्त पुत्र नहीं हैं? ऐसा कौनसा शहर है जहाँ आप प्रवेश नहीं कर सकते ?"

सलीम को हँसी आ गई। उसने कहा, "पीथल, तुम बड़े नय-निपुण हो। यद्यपि मैं अजमेर मे रहता हूँ, यहाँ की सारी बात जानता हूँ। लोग विश्वासपूर्वक कहते हैं कि अब्बाजान उस दासी-पुत्र को राज्याधिकार देकर गए हैं। मै जानना चाहता था कि उसमे कितना सत्य है। यदि बादशाह सलामत ने ऐसा निश्चय किया है तो आपको मालूम ही होगा।"

"लोग ऐसा कहते है," पीथल ने कहा, "सो मैं भी जानता हूँ और मैं यह भी जानता हूँ कि बादशाह सलामत ने इस बारे में कोई निश्चय प्रकट नही किया है।"

"मेरे मुँह पर सीधे देखकर कहिए। बादशाह ने उस शैतान के बच्चे मुबारक की सलाह से दानियाल को उत्तराधिकार नहीं दिया ?"

"आप निश्चिन्त रहिए। बादशाह सलामत ने ऐसा कुछ नहीं किया। न वे ऐसा काम करेंगे ही।"

"मेरे दोस्त ! इसमें इतना निश्चिन्त होने को क्या है ? क्या बाबर-शाह को राज्य किसी ने दिया था ? हमारे पितामह हुमायूँ शाह कितने दिन राज्य-भ्रष्ट होकर इधर-उधर घूमते फिरे थे ! अब्बाजान भी, जो सार्वभौम बने हुए हैं सो भी अपने ही पराक्रम से न ? यदि दानियाल को उत्तरा-धिकार दे भी दिया तो क्या आपको विश्वास है कि वह दो दिन भी राज्य कर सकेगा ? इसलिए मुझे कोई डर नहीं। परन्तु ऐसे मौकों पर यह तो जान सकूँगा कि सच्चे मित्र कौन हैं और शत्रु कौन है ? यही एक हर्ष की बात है।"

"गलती हो गई। और शायद इसीलिए बादशाह सलामत ने भी कोई निश्चय नहीं किया।"

"यदि ऐसा नहीं किया तो आपने जो यह आज्ञा जारी की है कि पच्चीस से अधिक सशस्त्र लोग राजधानी में प्रवेश नहीं कर सकते उसका क्या अर्थ है ?"

"मैं आपसे स्पष्ट बात ही कहूँगा। बादशाह की आज्ञा है कि उनके लौटने तक दुर्ग का अधिकार मेरे ही हाथों में रहना चाहिए। इसीलिए यह प्रबन्ध किया गया कि अधिक सशस्त्र लोग अन्दर न आयें। बाधा अन्दर और बाहर दोनों ओर से हो सकती है।"

"समझ गया। यह व्यवस्था जैसे मेरे वैसे ही दानियाल के लिए भी बाधक है। संक्षेप में, अब्बाजान प्रकट रूप से मुझ पर असंतोष प्रकट करते हैं, परन्तु उनका असंतोष मेरे उत्तराधिकार में बाधक नहीं है। दानियाल को घमण्ड करने की आवश्यकता भी नहीं है। दोनों हाथ जोड़कर उनकी कृपा की राह देखता रहे। है न यही बात ?"

"बादशाह सलामत का उद्देश्य मुझे नहीं मालूम है। न उसकी खोज

करना मेरे लिए उचित ही है। आप बुद्धिमान हैं। सोचेंगे तो बहुत-कुछ समझ में आ जायगा।"

"आप बहुत योग्य व्यक्ति हैं। सीधे आदमी। दोनों में से किसी पक्ष में नहीं। परन्तु मित्रवर! दोनों के बीच में खड़े होने वाले की क्या दशा होती है, जानते हो न ?"

पीथल ने दृढ़ता के साथ कहा—"अच्छी तरह जानता हूँ। दोनों ओर से खूब प्रहार सहने पड़ेंगे। परन्तु मेरी स्थिति ऐसी नहीं है। मैं एक पक्ष में दृढ़ता से खड़ा हूँ।"

सलीम ने उत्सुकता से पूछा—"किस पक्ष में ?"

"बादशाह सलामत के पक्ष में," पीथल ने उत्तर दिया। "उनकी आज्ञा मानने में मुझे और किसी का मुँह देखना नहीं है। उसको अक्षरशः अलंघनीय मानकर ही पालना मेरा कर्तव्य है।"

सलीम फिर चिन्ता में डूब गया। अब तक का मैत्री-भाव विलीन हो गया और उसके मुख पर स्थानोचित गौरव स्पष्ट दिखलाई दिया। वह गम्भीर विचार में है, यह देखकर पीथल ने भी मौन का अवलम्बन किया। अन्त में सलीम ने कहा—"पीथल, मेरी बात ध्यान से सुनो। हमारा परिचय आज या कल का नहीं है। हम बचपन से एक-दूसरे के मित्र हैं। मैं तुम्हे कितना चाहता हूँ यह जानने का अवसर तुम्हे कितनी बार मिल चुका है। अपने ऊपर तुम्हारा स्नेह भी मैं जानता हूँ। इतना ही बस नहीं, हम एक-दूसरे के सम्बन्धी भी हैं। इसलिए मैं विश्वास करके जो कहता हूँ उसे अपने ही तक सीमित रखोगे, यह भी मैं जानता हूँ। तुमको मालूम है कि मेरे अधीन एक प्रबल सेना है। आवश्यकता के लिए धन भी अब मेरे पास आ गया है और आपके अधीन केवल पच्चीस हजार राजपूत सैनिक हैं। शहर की अधिकतर जनता मेरे पक्ष में है। इस हालत में तुम मुझसे युद्ध करके कभी जीत न सकोगे। मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरे पक्ष में मिल जाओ। कहना व्यर्थ होगा। परन्तु क्या यह आवश्यक है कि हम आपस में लड़ें ? तुम क्या करने वाले हो ?"

आपने मुझसे दिल खोलकर बात की है। मैं भी वैसा ही करूँगा। आपके प्रति मेरी भक्ति और श्रद्धा कहकर बताने की वस्तु नहीं है इसीलिए मैं अभी यह बात आपसे कहता हूँ। बादशाह सलामत के बाद यह साम्राज्य आपके ही हाथों में आने वाला है। बादशाह की और कोई इच्छा नहीं है। न होगी ही। यदि और कुछ चाहे भी तो वह सम्भव होने की आशा नहीं है। ऐसी स्थिति में, अभी आप जो सोच रहे हैं वह काम न केवल पापपूर्ण वरन् मूर्खतापूर्ण भी होगा। पितृ-द्रोह करने वाला पुत्र इस लोक और परलोक में भी सुखी नहीं हो सकता। यह बात छोड भी दें और मान लें कि आपकी बडी सेना ने आगरा के ऊपर अधिकार कर भी लिया, तो क्या जब बादशाह दक्षिण से लौटेंगे तब उनके सामने खड़े रहने की शक्ति आप में होगी? उनके पराक्रम और बुद्धि-वैभव की याद कीजिए। उनका जैसा प्रताप आज भारत में किसका है? ऐसे पिता से वैर करके क्या आप जीत पायेंगे? शाबास खां की मृत्यु की बात आपके मुँह से निकलते ही शेष सब-कुछ मैंने समझ लिया था। परन्तु मेरी विनयपूर्ण सलाह की ओर ध्यान दीजिए। अभी कोई साहस न कीजिए। फिर भी यदि आपका निश्चय यह सब न मानने का ही हो तो यह निश्चित समझ लीजिए कि पृथ्वीसिंह के शरीर में जब तक प्राण हैं तब तक वह आपको आगरा पर अधिकार करने न देगा।''

पीथल की बातें सलीम के मन में शिला-रेखा-सी बैठ गईं। उनका उत्तर देने के पहले ही बाहर के दालान में कुछ कोलाहल सुनाई दिया। क्या है, जानने के लिए तलवार निकालते हुए पीथल बाहर गये। इसी समय रोकने वाले सेवकों को हटाते हुए दानियाल शाह ने कमरे में प्रवेश किया।

''वाह! पीथल! आपकी राजभक्ति! आपकी दुर्ग-रक्षा!'' उसने अट्टहास के साथ कहा।

पीथल—''आप क्या कह रहे हैं मेरी राजभक्ति में आपने क्या कलंक देखा?''

"आपके पास बैठी इस मूँछों वाली स्त्री-रत्न को क्या मैं पहचानता नहीं ? बादशाह सलामत ने आपके ऊपर भरोसा रखा। इस राजधानी की रक्षा आपके हाथो में सौंप दी। किसके हाथों से रक्षा ? जो राजशक्ति का विरोध करते हैं उनके हाथों से। अब पालने के लिए मुर्गियाँ सियार के हाथ देने की बात हुई न ?"

पीथल ने सलीम शाह की ओर देखा। वे ऐसे शान्त बैठे हुए थे मानो कुछ सुना ही नहीं। इनके पारस्परिक वादविवाद का मजा लेने के लिए मानो चुप बैठे थे। पीथल ने उत्तर दिया—"शहर की रक्षा करने का भार ही मुझे सौंपा है। उसका उत्तरदायित्व केवल मेरा ही है। बादशाह सलामत ने मुझे यह आज्ञा नहीं दी कि शाहजादों के झगड़ों में मैं पड़ूँ। मेरे लिए आप दोनों एक-से हैं।"

दानियाल हँस दिया—"एक-से ! तुम्हारी बहन·······!"

बात पूरी भी न हो पाई और पीथल का हाथ कमरबन्द में लटकी हुई तलवार पर पहुँच गया। उन्होंने गरज कर कहा—"क्या कहा ?"

"ठहरो, पीथल ! इस कुत्ते के रक्त से अपनी तलवार अशुद्ध मत करो। इसका उत्तर मैं ही दूँगा," कहता हुआ सलीम संहार रुद्र के समान दानियाल के पास पहुँचा। सलीम का रुख देखकर दानियाल काँपने लगा। "बोल, क्या कहा ? फिर से बोल !" इस प्रकार गरजते हुए सलीम ने हाथ की चाबुक से दानियाल के मुख पर प्रहार किया। यह सब क्षण-भर में हो गया। पीथल स्तब्ध खड़ा था। सलीम को फिर से प्रहार करने के लिए चाबुक उठाते देखकर भीरु दानियाल घुटने टेककर उसके पैरों पर गिर गया और "मुझे मारिये नहीं ! कृपा कीजिए !" कहकर रोने लगा। क्रोधान्ध सलीम ने यह कहते हुए कि "दासी के लड़के ! तू मेरी बराबरी करेगा ?" एक लात भी उसे जमा दी। इतने में पीथल ने "नहीं ! नहीं !" कहते हुए सलीम को पकड़कर दूर किया। अन्यथा, शायद दानियाल शाह को दूसरा सूर्योदय देखने को न मिलता।

पाद-प्रहार से नीचे पड़े और कुत्ते के समान रोते हुए दानियाल को

देखकर सलीम हँस पड़ा और तिरस्कार के साथ बोला—"भारत-सम्राट् बनने के लिए तू ही योग्य है। हाय! तैमूर के वंश में तू पैदा हुआ! मैंने स्त्री की पोषाक ही पहनी है, परन्तु तू तो स्त्री ही पैदा हुआ है! शायद यह जानकर ही अब्बाजान ने तुझे अन्तःपुर की रक्षा का काम सौंपा है—हिजड़ों के योग्य काम!"

फिर पीथल की ओर मुड़कर उसने कहा—"पीथल! जब बादशाह को यह सब लिखो तो मेरी यह बात भी उनको लिख देना—भूलना मत। कि मैं सिफारिश करता हूँ, यदि मुगल-साम्राज्य को भारत में कायम रखना हो तो यह धीर-वीर दासी-पुत्र ही बादशाह बनाने के योग्य है।"

बहुत कठिनाई के साथ दोनों की ओर डरते-डरते देखता हुआ दानियाल शाह उठा। वह कमरे से निकलने ही वाला था कि सलीम ने कहा—"कहाँ जा रहा है? खड़ा रह यहाँ! तुझसे मुझे कुछ कहना है!"

चाबुक के प्रहार के कारण मुँह से रक्त बहाता हुआ दानियाल वहीं ठिठककर खड़ा हो गया।

"सुना पीथल! आज मैं इसे अपने साथ ले जा रहा हूँ," सलीम ने कहा। "जब तक यह मेरे अधीन रहेगा तब तक मुझे कोई डर न रहेगा। तुम राजधानी मेरे अधीन न करोगे तो कोई बात नहीं। तुमको और मुझे अड़चन में डालने वाले इस दुष्ट को मैं बन्धन में रखूँ तो तुमको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

दानियाल को यह बात अपनी मरण-विधि जैसी लगी। उसको कोई सन्देह नहीं था कि यदि सलीम के हाथ में पड़ गया तो दो दिन भी जीवित नहीं रह सकता। तैमूर वंश की परम्परा ही ऐसी थी कि अपने विपरीत खड़ा होने वाला या अपने मार्ग में बाधा डालने वाला कोई भी हो, उसे किसी प्रकार नष्ट कर दिया जाय। और उसके प्रति सलीम का द्वेष किसी से छिपा हुआ नहीं था। इस संकट से उद्धार का कोई मार्ग न देखकर उसने पीथल की ओर देखा। उसके चेहरे पर कोई भाव प्रकट नहीं था। तब वह दुःख-भरी दृष्टि से उसकी ओर ऐसे देखने लगा मानो याचना कर

रहा हो कि मुझे बचाओ।

परिस्थिति के इस परिवर्तन से पीथल को भी कुछ घबराहट हुई। दानियाल के प्रवेश से ही उन्होंने समझ लिया था कि सब बात बिगड़ गई है। जब सलीम शाह के साथ कलह शुरू हुआ तब तो इस शाहजादे की भीरुता और कापुरुषता देखकर वे आश्चर्य-स्तब्ध रह गए। सलीम के इस नये विचार से भी वे असमंजस में पड़े। वे जानते थे कि यदि सलीम दानियाल को ले गया तो अवश्यम्भावी भविष्य क्या है। शाबास खाँ की मृत्यु को विनोद के रूप में बतानेवाला सलीम अपने आजन्म वैरी दानियाल के साथ क्या करेगा इसमें कोई शंका की बात नहीं थी। अपने घर से यह राजकुमार गायब हुआ तो इस मामले में स्वयं वे भी अपराधी माने जायँगे। और इसको बादशाह कभी क्षमा नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त, राजधानी की रक्षा का भार उनके ही ऊपर था। इस समय इस प्रकार का अत्याचार होने देना भी अपराध होगा। इसलिए पीथल ने किसी भी प्रकार इस निश्चय को रोकना आवश्यक समझा।

उन्होंने कहा—"हुजूर! दानियाल शाह मेरे अतिथि हैं। इनकी कोई हानि हो तो वह क्षत्रिय-धर्म के विरुद्ध होगी, यह आप भी जानते हैं। इसलिए जब तक वे मेरे घर में हैं तब तक आप इस विचार को छोड़ दीजिए, यही प्रार्थना है।"

सलीम—क्या? "इसको छोड़ दूँ? हमारे अन्तःपुर और तुम्हारे वंश को कलंक लगाने वाले इसको बचाना चाहते हो?"

"ऐसा न फरमाएँ! हमारे धर्म के अनुसार अभ्यागत गुरु के समान पूज्य है और इस समय शाहजादा मेरे अतिथि है। इसलिए उन्होंने जो-कुछ कहा उसे क्षमा कर देना ही मेरा कर्तव्य है। और फिर, आपने तो उसको सजा भी दे दी है!"

सलीम क्रोध से लाल हो गया। उसने कहा—"पीथल! मुझसे भिड़ो मत! फल मालूम है न? इसलिए वृथा वाग्वाद न करो। इसको मेरे अधीन कर दो।"

पीथल ने उत्तर दिया—"कृपया मुझे बाध्य न कीजिए! आप मेरे प्राण ले सकते हैं, परन्तु मेरा अपमान न करें!"

"यदि मैं बल-प्रयोग करूँ तो?"

"सोच लीजिए! क्या यह सम्भव है? आप इस शहर में अकेले ही पधारे हैं। इनके साथ तो सेवक होंगे, जो बाहर राह देख रहे होंगे।"

विनय-भाव से कही हुई बात का सच्चा अर्थ सलीम ने समझ लिया। पिंजरे में फँसे हुए बाघ के समान वह गुर्राया। परन्तु शीघ्र ही क्रोध को दबाकर बोला—"पीथल! तुम्हारे कहने का अर्थ मैं समझ गया। मैं यहाँ निस्सहाय आया हूँ इसलिए यहाँ से जाना तुम्हारी अनुमति के बिना नहीं हो सकता। यदि मैं जिद करूँ तो दानियाल के बदले कैदी मैं ही बनूँगा। यही है न? अच्छा, तो आओ! बादशाह के सीमन्त पुत्र को कैदी बनाने का सम्मान तुम्हें ही मिले!"

पीथल ने उत्तर दिया—"आप मेरी बातों से ऐसा अर्थ निकाल रहे हैं जो मैंने कभी सोचा भी नहीं। इस राजधानी में आप कैसे कैदी बन सकते हैं? आपको बन्धन में रखने का अधिकार केवल बादशाह को ही है। आपके पूज्य पिता दानियाल शाह को राजधानी में कुछ अधिकार दे गए हैं। इसलिए उनका यहीं रहना आवश्यक है। आपके साथ भेजना सम्भव नहीं है।"

सलीम कुछ नहीं बोला। पीथल ने दानियाल शाह से दबाकर धीरे से कहा—"मैं जो कहता हूँ आपका हित चाहकर ही कहता हूँ। बादशाह अब भी आपसे अप्रसन्न हैं। यदि दानियाल शाह को कुछ हो जाय तो उनके क्रोध का सामना कौन कर सकेगा? और यह साहस करने से क्या लाभ? इस शाहजादे की शक्ति और धैर्य को आपने देख लिया। इन्हें बादशाह अपना उत्तराधिकारी बनायेंगे यह मानने की बात हो सकती है? फिर निष्प्रयोजन ही अपने पिता की क्रोधाग्नि को क्यों प्रज्वलित करते हैं? और आप मेरी ओर भी तो देखिए। अभी आपने कुछ किया तो बादशाह यही मानेंगे कि मैं भी इसमें शामिल हूँ। उनका क्रोध आपको गर्म करेगा,

परन्तु मुझे तो भस्म ही कर देगा। इतना ही नहीं, मैं विश्वासघाती भी बनूँगा। यह सब सोचकर आप ऐसा काम न कीजिए जिससे आपको लाभ के बदले हानि ही हो।"

सलीम ने उत्तर दिया—"मुझे मित्र और शत्रु दोनों से बाधा-ही-बाधा होती है। शहर को घेर लूँ तो मेरा मित्र मुझसे युद्ध करेगा। अपने शत्रु को बन्धन में लेना चाहूँ तो स्नेह की दुहाई देकर बाधा डालेंगे। ऐसा ही हो तो मित्र और शत्रु में अन्तर क्या रहा?

इसके उत्तर में पीथल ने कुछ नहीं कहा। उन्होंने दानियाल शाह से कहा—"आपसे मुझे गुप्त रूप से एक-दो बातें करनी हैं। सलीम शाह आपको ले जाने का आग्रह नहीं कर रहे हैं। इसलिए कृपा कर मेरे साथ ईस कमरे में पधारिए।"

कमरा खोलकर, दानियाल शाह को अन्दर भेजकर पीथल ने बाहर से दरवाजा बन्द कर लिया। सलीम को लगा कि दानियाल को उसके हाथ से बचाने के लिए यह किया गया है। उसकी आँखों से पीथल पर एक सर्वदाहक अवलोकन फट पडा। परन्तु उसने कुछ कहा नहीं। पीथल ने उसके पास जाकर कहा—"आपका यहाँ आना जब दानियाल शाह ने जाना तब नासिर खाँ आदि अनेक लोगों ने भी जान लिया होगा। इस-लिए इसी पोशाक में और पालकी में ही जायँगे तो वे आपको बन्धन में लेने का प्रयत्न करेंगे।"

सलीम का क्रोध उमड पड़ा। उसने तमककर कहा—"बादशाह के अलावा कौन मुझे बन्धन में ले सकता है? नासिर खाँ मेरे ऊपर हाथ उठायेगा?"

"आप अपने असली रूप में जायँ तो शायद कोई कुछ नहीं करेगा," पीथल ने उत्तर दिया, "परन्तु गाय मारने आये तब पंचाक्षर-जाप करने से क्या लाभ? यदि वे आक्रमण करने पर तुल ही जायँ तो आप सामना नहीं कर सकेंगे।"

"तो मुझे क्या करना चाहिए?"

"आप एक राजपूत युवक की पोशाक पहनकर, मेरी अंगरक्षक सेना के उपनायक के रूप में किले आदि को देखने के भाव से 'मादरी दरवाजे' तक जाइए। आपके अनुचर पहले ही वहाँ पहुँच जायेंगे।"

सलीम ने इसको स्वीकार किया। पीथल ने कहा—"मेरे वस्त्र आपको ठीक होंगे। जल्दी कपड़े बदलकर चलना चाहिए।"

फिर एक नौकर को बुलाकर उन्होंने आज्ञाएँ दीं। सलीम ने पूछा—"दानियाल को आप क्या करेंगे?"

"आप गोपुर-द्वार से निकल चुकेंगे तब मैं स्वयं उनको महल तक पहुँचा आऊँगा। इससे पहले यदि मैं उनको जाने दूँ तो कोई गड़बड़ी करने का प्रयत्न करेंगे, इसीलिए ऐसा किया है।"

सलीम जोर से हँस पड़ा—"अच्छा! तो उसे थोड़ी देर और वहाँ बैठने दो। मैं वस्त्र बदलने में जल्दी नहीं करता।"

पीथल घर के सामने की ओर चले गए और उन्होंने दानियाल शाह के साथ आये हुए कर्मचारियों को सुनाते हुए अपनी अंग-रक्षक सेना को इस प्रकार आज्ञा दी—"रात को बहुत गड़बड़ी और उपद्रव होने की आशंका है। इसलिए द्वारपाल को विशेष चेतावनी देना। कोई भी हो अन्दर प्रवेश करने मत देना। रात को दुर्ग के ऊपर सीधा आक्रमण भी हो सकता है। आसपास का सब स्थान अच्छी तरह से देखते रहना। तुम्हारे नायक को मैं सब अच्छी तरह बता दूँगा।"

इसके बाद वे कमरे में आये। तब एक राजपूत युवक के वेश में सलीम वहाँ खड़े थे।

"पीथल! मेरा नाम क्या है? तुम्हारी अंग रक्षक सेना का उपनायक हूँ तो कोई नाम भी चाहिए," सलीम ने कहा।

"नाम? राजकुमार दलपतिसिंह! इधर से आइए। अब सब के सामने से ही निकलिए। एक बात, अभी मेरे पीछे ही चलिए।"

सलीम इस प्रकार शहर के बाहर निकला। लगभग एक घंटे बाद अनुचरों ने आकर बताया कि शाहजादा मादरी दरवाजा पार कर चुके हैं।

बाली की पूँछ में बँधे रावण के समान शाहजादा दानियाल कमरे में बैठा हुआ क्रोध, निराशा और अपमान की पीडा से सबको गिन-गिन कर कोस रहा था। उसने मन में प्रतिज्ञा की कि कैसे भी हो, पीथल को तो एक पाठ पढाऊँगा ही। सलीम को तो उसने मन-ही-मन कई बार फाँसी दी। इस प्रकार जब वह अपने मनोराज्य में ही प्रतिकार कर रहा था उसी समय पीथल ने आकर दरवाजा खोल दिया।

"अब पधारिए! कोई डर नहीं," उन्होंने दानियाल शाह से कहा।

क्रोधाग्नि में जलता हुआ दानियाल बिना बोले ही बाहर निकल आया। यदि दृष्टिपात से मनुष्य जल सकता तो शायद पीथल उसी समय भस्म हो गए होते। उसकी आँखों में चमकती हुई विद्वेष, दुष्टता और प्रतिकार की इच्छा ने धीरे-धीरे पीथल के मन में भी अनिष्ट की शंका उत्पन्न कर दी। विष-लिप्त शर के समान उस दृष्टिपात का अर्थ था—"मेरा प्रतिकार अनन्त होगा।"

बिना कुछ कहे-सुने दानियाल शाह अपने महल की ओर चला गया।

उपद्रव के स्थान से निकलकर दलपतिसिंह आक्रमणकारियों के प्रमुख को अपने घर ले गया। और वहाँ से तुरन्त अपने स्वामी का सन्देश देने के लिए सेठ कल्याणमल के निवास-स्थान पर पहुँचा। उसका हृदय विविध भावनाओं का नृत्य-रंग बना हुआ था। जब से मालूम हुआ कि सूरजमोहिनी को दानियाल शाह अपने अन्तःपुर में ले जाना चाहता है तब से वह व्याकुल हो रहा था। वह म्लेच्छ मेरी प्रियतमा को चाहता है, यही उसकी दृष्टि में अक्षम्य अपराध बन गया था। फिर सेठजी को बुलाकर अपनी इच्छा पूरी कर देने को जो कहा उसको तो उसने एक महापातक ही माना। मुगलों का आश्रित बनने के लिए आगरा आया, इसका भी उसे अनुताप होने लगा। प्रतापसिंह के अतिरिक्त सभी राजपूत अकबर

के अधीन हो गए थे, इसलिए एक छोटे से राज्य का अधिपति रहकर मुगलों से विरोध करना व्यर्थ समझकर वह यहाँ आया था, परन्तु जब उसने राजधानी में आकर यहाँ का सब आचार-व्यवहार समीप से देखा तो उसे लगने लगा कि यहाँ आना गलत हुआ और यहाँ मैंने अपने हाथ से ही अपना पौरुष नष्ट कर लिया। उसका मन कोप और ताप से भरा हुआ था। लेकिन कर क्या सकता था? महापराक्रमी राजा पृथ्वीसिंह भी मुगलों के अधीन रहते हैं फिर उस जैसे छोटे से राज्य के राज्य-भ्रष्ट उत्तराधिकारी की बिसात ही क्या थी? कल्याणमल की धीरता ही उसके समाधान का एकमात्र आधार थी। दानियाल के सम्मुख बुलाकर भी कहने पर उनके अनुकूलता न दिखाने के साहस की उसने मन-ही मन प्रशंसा की। बादशाह के दूर होने से राजकुमार बल-प्रयोग करेगा इस खयाल से कन्या को पहले से ही दूर भेज देने के बुद्धि-सामर्थ्य को उसने असामान्य माना। शाहजादे की इच्छा का विरोध करने से सेठजी पर विपत्ति के पहाड़ ही टूट सकते थे। राजधानी पर अब दानियाल शाह का अधिकार होने से वह कोई छोटा-मोटा कारण बनाकर भी उनके घर को लुटवा सकता था। और स्वयं उन्हें कैदखाने में डाल सकता था। आज्ञा का उल्लंघन करने वाली की हत्या भी करा देना उस अविवेकी युवक के लिए असम्भव नहीं था। सेठजी पर बादशाह अवश्य अति कृपालु थे, परन्तु हजारों मील दूर बैठे हुए वे इस समय क्या कर सकते थे? यह सब सोचकर दलपतिसिंह के मन में कल्याणमल के प्रति आदर बढ़ता ही गया।

उसको सबसे अधिक दुःख सूरजमोहिनी की स्थिति सोचकर हो रहा था। वह अब किस मार्ग से जाती होगी? राजमार्ग उन दिनों बिलकुल सुरक्षित नहीं थे। फिर जब पथिक सुकुमार स्त्रियाँ हों तब तो उनकी कठिनाइयों का कहना ही क्या! यही सोचकर उनका मार्ग, निर्देश आदि किसी को बताने से मना किया है? रास्ते की असुविधाओं और विपत्तियों को सोच-सोचकर उसका हृदय व्याकुल हो रहा था। अति स्नेह विपत्ति-शंका का मूल होता ही है। कल्याणमल ने रक्षा का

सब आवश्यक प्रबन्ध किया होगा वह जानता था, फिर भी उसके मन मे दुःख हुआ कि उसकी रक्षा के लिए मुझे क्यो नही भेजा ? उसकी सारी विचार-गति सूरजमोहिनी का अनुगमन कर रही थी।

सेठजी के घर जब पहुँचा तब वे भोजनोपरान्त भागवत का पारायण कर रहे थे। दलपतिसिंह को देखते ही उन्होने अनुमान कर लिया कि किसी आवश्यक कार्यवश आया है। उन्होने कहा—"आओ! बैठो। क्या बात है ?"

दलपतिसिंह ने कहा—"अपना काम ही मैं पहले बताता हूँ। महाराजा पृथ्वीसिंह का सन्देश लेकर आया हूँ।"

"महाराज सकुशल तो है ? दो दिन मे मिल नहीं पाया।"

"सकुशल हैं। उन्होने आपसे विशेष रूप से कहने को मुझे भेजा है कि आपकी पौत्री कहाँ और किस मार्ग मे गई है इसका पता किसी को न लग पाये। इसकी विशेष सावधानी रखी जाय।"

सुनते ही सेठजी का मुख-भाव बदल गया। उनको मालूम था कि पीथल ने इस प्रकार का संदेश भेजा है तो इसका कोई विशेष कारण अवश्य होगा। विपत्ति कहाँ से आ सकती है, वे जानते थे। परन्तु वह किस रूप मे होगी, यह चिन्ता उनको विवश करने लगी। संदेश से स्पष्ट था कि सूरजमोहिनी के बाहर जाने का समाचार दानियाल के पास पहुँच गया है। इतने गुप्त रूप से किया गया काम कैसे प्रकट हो गया ? यदि वह प्रकट हो गया तो निर्दिष्ट स्थान और मार्ग भी मालूम हो गया होगा। यह सच है तो मार्ग में उसका अपहरण कर लेना दानियाल के लिए असम्भव न होगा। सेठजी का क्रोध उमड पडा। उस समय जो उनको देखता वह शंका मे पड जाता कि ये सचमुच कोई रत्न-व्यापारी हैं अथवा कोई अतुल प्रतापी राजकेसरी हैं। बढते हुए क्रोध को दबाकर उन्होंने पूछा—"यह संदेश क्यो दिया गया, आपको मालूम है ?"

दलपतिसिंह ने कहा—"थोडा-बहुत मालूम है। पूरा नहीं जानता। आज सन्ध्याकाल मे दुर्ग का प्रबन्ध देखकर लौटे तो दानियाल शाह का

आदेश मिला कि शीघ्र ही उनसे जाकर मिले। महाराजा उसी समय मिलने गये। वहाँ क्या बातचीत हुई मैं नहीं जानता। बाहर निकलते ही यह संदेश लेकर आपके पास भेजा।"

दानियाल शाह की अभिलाषा सेठजी को विदित थी ही, इसलिए उन्होंने अनुमान कर लिया कि इसी विषय में पीथल को बुलाया होगा। तो सूरज के जाने की बात पृथ्वीसिंह के ही मुख से उसे मालूम हुई होगी। नय-कोविद पीथल ने सत्यावस्था उस पर प्रकट नहीं की होगी। यह एक आश्वासन का कारण था। फिर भी सूरजमोहिनी की यात्रा की सूक्ष्म जानकारी साथ के कुछ लोगों और अन्य दो-तीन नौकरों को थी। इसलिए शीघ्रातिशीघ्र किसी को भेजकर उनका मार्ग और निर्दिष्ट स्थान बदल देने का निश्चय उन्होंने किया।

सेठजी—"अच्छा! महाराज से मेरी कृतज्ञता निवेदन करना। आवश्यक प्रबन्ध मैं अभी कर लूँगा। सब प्रकार से सावधान भी रहूँगा।"

दलपतिसिंह ने उत्तर दिया—"मैं जाकर उनको बता दूँगा। परन्तु एक बात पूछूँ? आपने अपनी पौत्री को जब इतनी दूर भेजा तब मुझे उनके साथ अनुचर बनाकर भेजने का विचार भी आपने नहीं किया? यह मुझ पर अविश्वास का द्योतक तो नहीं?"

"आपको इससे कोई दुःख नहीं होना चाहिए। मैंने पहले यही सोचा था। इसके बारे में जब मैंने पीथल से बात की तो उन्होंने सलाह दी कि तुम्हारी आवश्यकता यहाँ अधिक है और कुमारी की रक्षा के लिए बादशाह की सेना का एक दस्ता भेजना ही अधिक उचित होगा।"

"इसका अर्थ है कि बादशाह की जानकारी में, उनकी सैनिक टुकड़ी की रक्षा में ही कुमारी गई है?"

"हाँ! परन्तु यह उनको नहीं मालूम कि वह किस कारण से तीर्थ-यात्रा करने गई है। मेरे प्रति कृपा और पृथ्वीसिंह के कहने से उन्होंने यह सम्मान, जो राज-अतिथियों को ही दिया जाता है, उसके लिए प्रदान किया।"

"तो फिर डरने की कोई बात नहीं है न ?"

"इतना निश्चय तो नहीं कहा जा सकता। बादशाह बहुत दूर गये हैं। अन्याय करने का इच्छुक पास ही अधिकार-स्थान में है। इसलिए आवश्यक सावधानी रखनी ही चाहिए।"

"वापस आने में कितना समय लगेगा ? ऐसा मत सोचिएगा कि मैं शीघ्रता कर रहा हूँ। उसका विवाह यदि हो जाय तो कोई कठिनाई न रहेगी।"

सेठजी को हँसी आ गई। युवकों का मन सदा निजी सुख की ओर ही कूदता है। उन्होंने कहा—"आपको याद नहीं उस दिन मैंने क्या कहा था ? राजा के उत्तराधिकारी राजकुमारों को स्वजाति के बाहर विवाह नहीं करना चाहिए।"

"आप ऐसा न कहिए। आप अच्छी तरह जानते हैं कि मुझे राज्याधिकार नहीं है। यदि हो तो भी मैं उसे त्याग देने के लिए तैयार हूँ।"

"इस विषय में अभी सोचने की आवश्यकता नहीं है। एक और बाधा है। तुम जानते हो कि दानियाल शाह ने उस कन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। इसे तुमसे छिपाने की आवश्यकता नहीं है। मैंने उसको उत्तर दिया है कि बादशाह की आज्ञा के बिना मैं ऐसा नहीं कर सकता। इसलिए बादशाह से पूरी बात बताये बिना कुछ करना उचित नहीं है। एक बात कहूँ ? सूरजमोहिनी मेरी पौत्री नहीं है। वह मेरी रक्षा में है। मुझे और उसकी नानी को तुम्हारी बात स्वीकार है। इसलिए थोड़े दिन ठहरो। बादशाह को वापस आने दो। सब ठीक हो जायगा।"

"बादशाह कब तक पधारेंगे ? दक्षिण का युद्ध समाप्त होने तक वहीं रुकेंगे ?"

"कह नहीं सकता। उनके गुरु शेख मुबारक की कमजोरी बहुत बढ़ गई है। उम्र भी बहुत हुई। यह स्थिति बादशाह को बताने के लिए सन्देशवाहक गये हैं और सलीम शाह क्या करने वाले हैं, देखने की बात है। यदि वे कुछ गड़बड़ी कर बैठे तो बादशाह अधिक दिन तक वहाँ नहीं

रुकेंगे। सब-कुछ सोचने पर मुझे लग रहा है कि दो मास के अन्दर ही लौट आयेंगे।"

"एक बात आपको अब तक नहीं बताई। जब महाराजा दानियाल शाह के महल से वापस आ रहे थे तब रास्ते में चार-पाँच लोगों ने मिल कर उनकी हत्या करने का प्रयत्न किया। ईश्वर की कृपा से कोई अनहोनी बात नहीं हुई। हत्यारों में से एक मारा गया। नेता पकड में आ गया है।"

"क्या? पीथल की हत्या का प्रयत्न? पूरी बात बताओ। उनके ऊपर आक्रमण किया गया तो बड़े लोगों की प्रेरणा अवश्य होगी।"

"ऐसा कुछ नहीं मालूम होता। कोई गलतफ़हमी थी। हत्यारे उनके ऊपर 'स्त्री-चोर' चिल्लाते हुए झपटे थे।"

"अच्छा, विस्तार से कहो, क्या हुआ?"

"मैंने बताया न कि दानियाल शाह की आज्ञा के अनुसार शाम को हम लोग वहाँ गये थे? लौटते समय देरी हो गई। राजवीथी में जहाँ अँधेरा अधिक है उस स्थान पर पहुँचने पर चार सशस्त्र लोगों ने 'यह है वह कन्या-चोर! राक्षस!' कहते हुए महाराजा पर आक्रमण किया। वे तरह-तरह की कटु बातें कहते थे। उनकी बातों से यह मालूम होता था कि वे महाराजा को हिन्दू स्त्रियों को पकडकर मुसलमानों को देने वाला समझ रहे हैं। आक्रमणकारी हिन्दू थे और आयुध-विद्या के अच्छे अभ्यासी भी थे।"

"तुम्हारा विचार मुझे ठीक नहीं मालूम होता कि यह किसी गलत-फ़हमी का परिणाम है। इसमें अधिक गहरी चीजें हैं। इसके बारे में शीघ्र ही खोज करनी चाहिए। एक क्षण ठहरो, मैं अभी आता हूँ।"

सेठजी ने कमरे के बाहर जाकर एक नौकर को बुलाकर उससे कुछ कहा। अन्त में उन्होंने कहा—"अभी जाओ। कहना, रातोंरात ही आवश्यक खोज करने की मेरी आज्ञा है। जो-कुछ मालूम हो, कल दुपहर तक आकर मुझे बताना।" फिर उन्होंने और नौकरों को बुलाकर कुछ

और आज्ञाएँ दीं। इस प्रकार लगभग आधे घण्टे तक व्यस्त रहने के बाद वे दलपतिसिंह के पास लौटे। उन्होंने पूछा—"अच्छा, तो वह हत्यारों का नेता कहाँ है ? तुम्हारी रक्षा मे है न ?"

"वह मेरे नौकरों के अधीन है। चोट के कारण मूर्छा में पड़ा है। वापस जाने के बाद उससे सब बातें जानने का प्रयत्न करूँगा।"

"ठीक है। कल मैं भी आकर उससे मिलना चाहता हूँ। मेरे साथ और भी एक व्यक्ति आयेंगे। उनको और कोई न पहचाने, ऐसी व्यवस्था कर लेना।"

दलपतिसिंह ने आज्ञा शिरोधार्य की। सेठजी के मुख से यह जानकर कि वे किसी गम्भीर विचार में पड़े हैं, वह विनयपूर्वक विदा लेकर अपने घर वापस आया।

मूर्छित आक्रमणकारी ने गुलाब की सेवा से धीरे-धीरे आँखें खोलीं। "मैं कहाँ हूँ ? आप सब कौन हैं ?" आदि वह पूछने लगा। स्वामी की आज्ञा के बिना इन सब प्रश्नों का उत्तर देना गुलाब ने उचित नहीं समझा। इसलिए वह फिर आँखें बन्द करके लेट गया। इतने में पास के कमरे से एक गान-माधुरी ने उसे आकृष्ट किया। वह सहसा चिल्ला उठा—"हाय मेरी पद्मिनी ! मेरी पद्मिनी ! क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ?" दीन स्वर में अपने नाम की पुकार सुनकर पद्मिनी उस कमरे में पहुँची और घायल को देखकर वह "मेरे पिताजी !" कहकर उससे लिपट गई। उसे घायल पड़ा देखकर वह दुःख करके रोने लगी। "मैं किसके घर में हूँ ? तुम कैसे यहाँ आई ?" घायल ने पूछा और फिर सहसा उसका मुख भयानक क्रोध से लाल हो उठा। और वह बोला—"हाय यह भी देखना पड़ा ! मेरी बेटी का जिसने अपहरण किया उसके ही घर में मैं आकर पड़ा ? छिः ! दुष्टा कहीं की ! हट जा मेरी आँखों के सामने से ! तुझे मैं देखना नहीं चाहता !" वह गरज उठा।

"हाय ! पिताजी ! ऐसा न कहिए ! आप एक उत्तम राजकुमार के घर मे हैं ! उन्होंने मुझे धोखा नहीं दिया। ईश्वर की कृपा से मुझे कोई

दोष भी नहीं लगा," बालिका ने कहा।

"तो तुम यहाँ कैसे आई ?"

इसके उत्तर में उसने सब बातें विस्तारपूर्वक कह सुनाईं। कासिमबेग द्वारा अपहृत की जाकर हीराजान के घर में रखी जाने और फिर दलपतिसिंह के घर में पहुँचने तक की सारी कहानी सुनाने के बाद उसने कहा—"मुझे किशनराय के घर भेजने का भी उन्होंने प्रयत्न किया, परन्तु मेरे आग्रह के कारण आपको पाने तक यहाँ रहने की अनुमति दे दी है।"

वह जब बात कर रही थी उसी समय दलपतिसिंह घर आ गया। घायल के कमरे में गया तो वहाँ पद्मिनी को उससे बातें करते पाया। किशनराय से उसने गजराज की कहानी सुन रखी थी। इसलिए उसके प्रयत्न का उद्देश्य अब वह समझ गया। परन्तु किसकी प्रेरणा से अथवा किस कारण से उसने पीथल पर आक्रमण किया यह उसकी समझ मे नही आया। अपनी पत्नी का अपहरण करने वाले से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा उसने कर रखी थी। पुत्री को जिसने भ्रष्ट किया उसकी हत्या करने को वह तत्पर होगा। परन्तु राजा पृथ्वीसिंह के सद्गुण तो सभी जानते थे। इसलिए उनके ऊपर ऐसा आरोप कोई नहीं कर सकता, यह उसका विश्वास था। सब बातो से दलपतिसिंह का अनुमान था कि यह साहस या तो अनजान में किया गया या किन्हीं कुचक्रियों की प्रेरणा से हुआ। किसी भी हालत मे, सच बात जानना आवश्यक था। अतः वह घायल की खाट के पास गया और पद्मिनी घूँघट निकालती हुई वहाँ से चली गई।

दलपतिसिंह ने पूछा—"सब ठीक है ? पट्टी ठीक बँधी है ? अभी दर्द कैसा है ?"

गजराज ने उत्तर दिया—"घाव इतना बड़ा नहीं है। दर्द भी कम है परन्तु मुझे अत्यन्त दुःख है कि मै इतने कृपालु और उदार-हृदय व्यक्ति प्रति घोर अपराधी बना। आपकी दृष्टि में मैं एक हत्यारा बना।"

"महानुभाव! आप हिन्दू-कुल-सूर्य महाराज पृथ्वीसिंह राठौर की हत्या कर रहे थे। ईश्वर की कृपा से आपका प्रयत्न विफल हुआ।"

"हाय ! भगवान् ! क्या महानुभाव पीथल के ऊपर मैंने आक्रमण किया था ? उनके लिए तो मैं मरने को भी तैयार हूँ ।"

"तो, किसे समझकर आप इस साहस के लिए तैयार हुए थे ?"

"मैं जानता था कि दानियाल शाह के एक अनुचर राजपूत योद्धा ने ही मेरी लड़की को भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया था। जब मैं पता लगा ही रहा था तब एक मित्र मिला। उसने उसे पहचानकर मुझे बताया।"

यह सुनकर दलपतिसिंह थोड़े समय तक विचार में डूबा रहा। उसे लगा कि इसका प्रेरक अवश्य ही दानियाल या नासिर खाँ का कोई अनुचर होगा। उन दोनों को राजा के प्रति वैर-भाव है इसलिए भी दलपतिसिंह का ध्यान उधर गया। उसने पूछा—"अच्छा, आप बताइए, आपका वह मित्र कैसा है? देखकर पहचानने का कोई चिह्न मुख पर है?"

"रंग गोरा है। दीर्घकाय और हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला है। हम लोग संध्या के बाद मिले थे, इसलिए मुख आदि का वर्णन मैं नहीं कर सकता। परन्तु एक स्पष्ट चिह्न है—मुख पर एक घाव का।"

"दाहिनी ओर या बाईं ?"

"दाहिनी ओर।"

"सब समझ में आ गया। आपको प्रेरणा देने वाला कासिमबेग है और कोई नहीं। उसीने आपकी बेटी का भी अपहरण किया था।"

गजराज अवश अवस्था में था फिर भी क्रोध से लाल हो रहा था। दलपतिसिंह को लगा कि वह अभी वहाँ से उठकर किसी साहस के लिए दौड़ पड़ेगा। उन्होंने समझाया—"मित्र, अब शीघ्रता न कीजिए। आपकी मुसीबतों को मैं बहुत-कुछ जानता हूँ। उनके निवारण का सब उपाय हो जायगा। शीघ्रता करने से लाभ नहीं। शरीर को पूर्ण स्वस्थ होने दीजिए। जब सच बात मालूम होगी तब महाराजा पृथ्वीसिंह भी आपके सहायक बन जायँगे। अभी बेटी तो मिल गई। उसकी सेवा से आपका स्वास्थ्य जल्द ठीक हो जायगा।"

गजराज ने कहा—"आप मुझ पर जो कृपा कर रहे हैं उसके लिए मैं सदा आपका ऋणी रहूँगा। उन राक्षसों के हाथ से मेरी बेटी को आपने बचाया, यह पद्मिनी ने स्वयं मुझे बताया है। मैं इस कृपा को कभी नहीं भूल सकता। आज से गजराज के प्राण आपके अधीन हैं।"

दलपतिसिंह चिन्ता के भार से व्याकुल होकर अपने शयनागार को गया। इस प्रकार पीथल की हत्या करने का प्रयत्न स्वयं कासिमबेग का नहीं हो सकता। स्वार्थसिद्धि के लिए वह कुछ भी करने को तैयार हो सकता है, परन्तु पीथल जैसे व्यक्ति पर हाथ उठाने का दुःसाहस नहीं कर सकता। इसलिए यह काम नासिर खाँ या दानियाल शाह की प्रेरणा से ही हुआ है और यदि ऐसी बात हो तो इसे राज्य में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की पूर्व-सूचना मानना चाहिए। बादशाह के प्रतिनिधि होकर ये तीन यदि आपस में झगडने लगें तो क्या नहीं हो सकता? बादशाह दूर दक्षिण में हैं। सलीम शाह एक बडी सेना लिये विरोधी बनकर अजमेर में पड़े हुए हैं। राजधानी में अधिकारी पुरुषों के बीच ही मनोमालिन्य! यह सब एक साथ होने का संकट सोचकर दलपतिसिंह का हृदय भयभीत हो रहा था। जब सर्व-सैन्याधिपति पीथल को यह मालूम होगा कि नासिर खाँ की अंगरक्षक सेना के नायक ने ही उनकी हत्या की प्रेरणा दी थी तब वे क्या नहीं करेंगे?

सुबह ही कल्याणमल उस घर में आ पहुँचे। दलपतिसिंह नित्यकर्मों में व्यस्त था। उससे मिलने का आग्रह न करके सेठजी सीधे गजराज के कमरे में चले गए। गजराज की कोई बात उन्हें मालूम नही थी, इसलिए उन्होंने सभी बातें शुरू से पूछीं। पत्नी का अपहरण करने वाला अतिथि किस दिन आया था, यह भी उन्होंने जान लिया। सूबेदार के पास जो शिकायत की और उसका जो उत्तर मिला उस सबको सुनकर उनका मुख तमतमा उठा, परन्तु उन्होंने कुछ कहा नहीं। चारबाग मे बीमार पड़े होने और बेटी के ऊपर संकट आने की कहानी जब वह कहने लगा तो सेठजी ने कहा—"यह सब मैं जानता हूँ। वह बालिका अभी यहीं है न?

आप उसके पिता हैं यह अभी मालूम हुआ। आगे क्या करना चाहते हैं आप ?"

गजराज—"मेरी एक ही अभिलाषा है। जिन अधर्मों ने मेरे परिवार को कलंकित करके मुझे इस हालत में डाल दिया है, उनसे प्रतिकार लेना। मैं उसी के लिए बद्ध-कंकण हूँ। चाहे कुछ सहना पड़े, मैं वह करके रहूँगा।"

कल्याणमल—"आपकी अभिलाषा स्वाभाविक और उचित ही है। परन्तु उसके लिए सावधानी और विवेक से काम लेना है। नहीं तो, अभी जैसे और कठिनाई में पड जाओगे। इसलिए ज़रा ठहरो। तुम्हारे शत्रु अति प्रबल हैं। उनका विरोध करने में बुद्धि से काम न लिया जाय तो कोई लाभ न होगा।"

"आपकी सलाह क्या है ? मुझे क्या करना चाहिए ?"

"मैं सोचकर बताऊँगा। पहले बहुत-कुछ पता लगाना है। किसी भी हालत में मुझसे कहे बिना अब कुछ मत करना। यदि आपकी पत्नी जीवित हैं तो……"

"जीवित हैं तो ?" गजराज ने बात काटकर पूछा।

"ऐसी बातों में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। फिर भी यदि वे जीवित हैं तो आपके पास पहुँचा दूँगा। सम्राट् के सामने भी सारी बातें बताकर आपके प्रति न्याय कराने में महाराज पृथ्वीसिंह समर्थ हैं। परन्तु आप इस बीच में आ पड़ेंगे तो कठिन हो जायगा।"

"तो उन आक्रमणकारियों को कोई दण्ड देना ही नहीं ?"

"पहले आपकी पत्नी को बचाना है; बाद में आक्रमणकारियों को सज़ा देने की बात सोचेंगे। मेरी एक ही प्रार्थना है—एक सप्ताह तक आप कहीं न जायँ। कासिमबेग को यह भी पता नहीं लगना चाहिए कि आप कहाँ हैं। बाकी जो करना होगा, मैं बता दूँगा।"

"जैसी आपकी इच्छा," गजराज ने सोचते हुए उत्तर दिया। "परन्तु यदि एक सप्ताह तक मुझे कोई समाचार न मिला तो मैं चुप नहीं

रह सकूँगा। मैं जानता हूँ, प्रबल उमराओं के अन्तःपुरों से स्त्रियों को निकाल लाना सरल काम नहीं है। मैं उसके लिए प्रयत्न भी नहीं करूँगा। परन्तु मेरा अपमान जिस किसी ने भी किया है, उसकी हत्या करना मेरे वश की बात है। ईश्वर मुझे उसके लिए मौका देगा ही।"

कल्याणमल विदा लेकर लौट आये। गजराज अपनी पुत्री की शुश्रूषा में रहकर और अपने भाग्य-परिवर्तन को सोच-सोचकर स्वास्थ्य-लाभ करने लगा।

सलीम के चाबुक की मार खाकर महल में लौटे हुए दानियाल का क्रोध और दुःख अवर्णनीय था। मार खाने का दुःख इतना नहीं था जितना कि सलीम की गालियों से हुआ था। तिरस्कार सहन करने की शक्ति दानियाल में नहीं थी। चपल स्वभाव और दुर्बलों के सहज अभिमान का वह आगार था। पीथल के सामने सलीम ने इस प्रकार जो गालियाँ दीं उन्हें उसने अक्षम्य अपराध माना। उन अश्रव्य शब्दों से जो घाव हुआ उससे उसकी धमनियों में विष-व्याप्ति ही हुई। परन्तु सलीम का वह कुछ बिगाड नहीं सकता था। इसलिए उसका सारा द्वेष पीथल की ओर मुड़ गया। अपने अपमान का हेतु उसने पीथल को ही समझा और उस अपमान का वह राजपूत साक्षी भी बना था। किसी भी हालत में, उस उद्धत राजपूत को, जो उसकी सभी महत्त्वाकाक्षाओं की पूर्ति में बाधक बना, उसने अच्छा सबक सिखाने का निश्चय किया। उस रात को निद्रादेवी उस पर प्रसन्न नहीं हुई। उसे अपने आसपास के लोगों और अन्तःपुर की वनिताओं में भी प्रीति नहीं हुई। उसने सारी रात इन चिन्ताओं में ही व्यतीत कर दी कि किस प्रकार पीथल को पकड़ा जाय, किस प्रकार उन्हें सताया जाय, किस प्रकार उनका अपमान किया जाय और किस प्रकार अन्त में उनका वध कर डाला जाय।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही उसने आगे के काम की सलाह करने के लिए

नासिर खाँ को बुलवा भेजा। मुँह पर चोट लगने के कारण वह स्वयं अन्तःपुर में ही रहने को बाध्य था, और नासिर खाँ ने अत्यन्त दुःख के भाव से उसके कमरे में प्रवेश किया। उसने कहा—"हुजूर! एक बड़े दुःख का समाचार लेकर आया हूँ। हमारे ऊपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है।"

दानियाल ने पूछा—"क्या बात है?"

"शेख मुबारक कल रात को दिवंगत हो गए। आप जानते हैं, उनकी सहायता हमारे लिए कितने महत्त्व की थी। एक-दो सप्ताह से बीमार थे। परन्तु इतनी जल्दी मृत्यु हो जायगी यह किसी ने नहीं सोचा था। बादशाह सलामत को भी इस समाचार से असीम दुःख होगा। वे शेख साहब को अपने पिता के समान मानते हैं।"

"यदि शेख की मृत्यु हो गई तो हमारा सारा काम मिट्टी में मिल गया। खाँ साहब! वे बीमारी से ही मरे, या हमारे शत्रुओं में से किसी ने यमराज को मदद पहुँचाई?"

"ऐसा भी हो सकता है," नासिर खाँ ने सोचते हुए उत्तर दिया, "उनकी मृत्यु से शत्रु-पक्ष को लाभ-ही-लाभ है। पीथल को सैन्याधिप बनाने के शेख साहब प्रतिकूल थे। यह मैं भी जानता हूँ, पीथल भी जानता है।"

"ऐसा हो तो मुझे कोई शंका नहीं रह गई। उस दुष्ट राजपूत ने जहर देकर उनकी हत्या कराई होगी। निश्चय है। शीघ्र एक आदमी भेजकर बादशाह सलामत को यह समाचार देना चाहिए। इसका प्रमाण भी हमारे पास है। कल रात की बातें आपको नहीं मालूम हुई होंगी।"

"क्या?"

दानियाल ने सलीम के छद्म-वेश में पीथल के पास आने, गुप्तचरों से सुराग लगने पर अपने पीथल के घर जाने और वहाँ की सब घटनाओं का वर्णन नासिर खाँ को सुना दिया। अपने हाथ में आये सलीम को कैद कर लेने की आज्ञा पीथल ने स्वीकार नहीं की, सलीम ने चाबुक से उसे मारा तो पीथल चुपचाप खड़ा देखता रहा और मदद नहीं की—यह सब राजद्रोह का प्रत्यक्ष प्रमाण है, उसने कहा।

नासिर खॉ ने कहा—"ऐसा है तो सलीमशाह पीथल से मिलकर राजधानी पर अधिकार करने का प्रयत्न करेंगे ही। यदि वे रात को यहॉ आये हैं तो उनकी सेना भी शहर के आसपास ही होगी। यह राजद्रोही तुरन्त ही उसको राजधानी सौंप देगा। यह सब सविस्तार लिखकर बादशाह सलामत को भेज देना चाहिए।"

दानियाल ने अविलम्ब बादशाह को इसी आशय का एक लम्बा पत्र लिख भेजा। उसमे लिखा कि पीथल राजद्रोही है, उसने सलीम की प्रेरणा से शेख मुबारक को विष देकर हत्या करा डाली है, सलीम एक बडी सेना लेकर आगरा को घेरने आ रहे हैं ऐसा कहा जाता है, आदि-आदि। पत्र मे सभी प्रकार से पीथल को राजद्रोही साबित करने का प्रयत्न किया गया था। दानियाल और नासिर खॉ जानते थे कि यह पत्र पाते ही बादशाह आगरा वापस आयेंगे और उसी समय पीथल के भाग्य-सूर्य का अस्त भी हो जायगा। इसलिए शीघ्रातिशीघ्र वह पत्र बादशाह के पास पहुँचाने की व्यवस्था करके और यह सोचकर कि विजय कर-गत है, वे सन्तुष्ट हो गए।

सलीम की सेना नगर पर चढाई करने के लिए आ रही है, यह बात नगर-भर मे फैल चुकी थी। एक हद तक यह बात सच भी थी। सलीम के पास जो विशाल सेना थी उसका सर्वाधिकार शाबास खॉ की मृत्यु से उनके हाथ मे आ ही चुका था। राजा जगन्नाथ के अधीन जो पचीस हजार पैदल सेना पहले रवाना हुई थी वह आगरा के पास आ पहुँची थी। वह नये सैन्याधिप भगवानदास की अधीनता मे शेष सेना के आने की राह देखती हुई आगरा से सात मील पर डेरा डाले पडी थी। दो दिन के अन्दर उस सेना के भी आ जाने पर सलीम ने आगरा को घेरने का निश्चय किया था। उसने पीथल और दानियाल को दूत के द्वारा संदेश भेजा था कि मैं सेना-सहित राजधानी के पास आ गया हूँ, इसलिए आप सारे उपचारों के साथ आकर मेरा स्वागत करें और नगर की चाभी मेरे हाथ मे सौप दें। दानियाल ने इसका कोई उत्तर ही नहीं दिया। पीथल ने उसी दूत के द्वारा बादशाह के प्रतिपुरुष के नाते उत्तर भेज दिया, जिसका आशय यह

था—"बादशाह सलामत के दक्षिण से लौटने तक राजधानी का अधिकार मुझे प्राप्त है। वह अधिकार तब तक किसी दूसरे के हाथ नहीं सौंपा जा सकता जब तक कि स्वयं बादशाह सलामत का हस्ताक्षर और मुद्रा-युक्त आदेश-पत्र न प्राप्त हो। यदि कोई सम्राट् की आज्ञा के विपरीत आचरण करेगा तो उसे राजद्रोही मानकर दण्ड देने में मुझे कोई संकोच न होगा। मैं आगरा के पास इतनी बड़ी सेना के साथ आना ही बादशाह सलामत की आज्ञा का उल्लंघन समझता हूँ। इस समय इस प्रकार विद्रोह की पताका ऊँची न करके वापस जाना ही ठीक होगा। किसी भी हालत में, यदि आप कोई ऐसा काम करेंगे जो राजधानी की रक्षा में बाधक होगा तो उसे बादशाह सलामत के प्रति विद्रोह मानकर मुझे युद्ध करना होगा।"

पीथल के साथ जो बातचीत हुई थी उससे सलीम ने यह तो समझ लिया था कि उनसे कोई सहायता न मिलेगी, किन्तु इस प्रकार के कड़े उत्तर की आशा उसने नहीं की थी। उसने सोचा था कि सेना के साथ आगरा के पास पहुँचते ही रिश्तेदारी और मैत्री का खयाल करके पीथल अलग हो जायँगे। इसके बदले जब उनका इतना दृढ़ उत्तर मिला तो वह सोच में पड गया। आगरा का किला जीत लेना सरल काम नहीं है अन्दर की सेना साहसी, धीर और दक्ष हो तो बाहर से कितनी भी बडी सेना को उस पर अधिकार करने में कम-से-कम छः मास लग सकते हैं। आक्रमण का समाचार पाते ही बादशाह दक्षिण से अपनी सारी सेना लेकर आ जायँगे। इसलिए यदि राजधानी पर शीघ्र अधिकार न किया जा सका तो उसे युद्ध द्वारा जीतने की शक्ति अथवा समय हमारे पास न होगा।

सलीम यह सब जानता था, इसलिए पीथल के उत्तर से उसे बहुत निराशा हुई। इस राजपूत वीर की अचचल स्वामिभक्ति के कारण अपनी सब आशाओं पर पानी फिरते देखकर वह चंचल हो उठा। फिर भी अपने उद्योग को इतनी सरलता से छोड देना उसने अपनी स्थिति और सम्मान के योग्य नहीं समझा। उसने सोचा कि मेरे प्रयत्न का समाचार अब तक बादशाह के पास पहुँच चुका होगा और अपने पौरुष का भंग

प्रकट होना उसे स्वीकार नहीं था। वह महसूस करने लगा कि किसी प्रकार जीतने का प्रयत्न न किया जाय तो स्त्रियाँ भी मेरा परिहास करेंगी और वीराग्रणी पिता का मुझ पर सम्मान-भाव न रहेगा। यह सब सोच कर शक्ति से नहीं तो बुद्धि से ही सही, उसने काम निकाल लेने का निश्चय किया।

तैमूर वंश का अतुल पौरुष सलीम में कूट-कूटकर भरा था। कितने भी दोष उसमें क्यों न रहे हों, किन्तु भीरुता, चचलता, अनवधानता आदि राजाओं के लिए अयोग्य दोष उसमें नहीं थे। उसने सेना-नायकों और सलाहकारों को बुलाकर उनसे परामर्श करना आवश्यक समझा। राजा जगन्नाथसिंह, दीवान भगवानदास, मीर उस्मान आदि मित्रों को उसने अपने डेरे में बुलाया और उनकी सलाह माँगी।

अनेक युद्ध-भूमियों पर यश पाये हुए मीर उस्मान ने कहा—"इसमें सोचने की क्या बात है? हमारे अधीन जो सेना है वह आगरा दुर्ग को जीत सकती है। शहर के लगभग तीन-चौथाई लोग हमारे पक्ष में हैं। वे हमें मदद करेंगे ही। हम किले को चारों ओर से घेर सकते हैं। किला तोड़कर अन्दर प्रवेश करने में विलम्ब होगा, परन्तु बाहर से घेरकर भूखों मारने में क्या कठिनाई हो सकती है? पीथलै के पास कुल पच्चीस हजार राजपूत सेना है। मुसलमान जनता उनके विरुद्ध है। इसलिए मेरी सलाह है कि तुरन्त आक्रमण किया जाय।"

सलीम ने सिर हिला दिया, परन्तु उसका मतलब किसी की समझ में नहीं आया। भगवानदास ने कहा—"मीर साहब, आपका कहना ठीक है। परन्तु उसमें एक बाधा है। अभी बादशाह के पास सन्देशवाहक गया होगा। सब जानते ही वे सैन्य सहित प्रस्थान कर देंगे। तब किले को घेरनेवाली हमारी सेना की क्या स्थिति होगी?"

मीर उस्मान—"ऐसा कुछ नहीं। बादशाह के साथ कोई बड़ी सेना दक्षिण से इधर नहीं आ सकती। सेना का एक बड़ा भाग वहीं युद्ध में लगा हुआ है। फिर, मेरा तो खयाल है कि बादशाह सलामत हमारे

साथ युद्ध करेंगे ही नहीं। यदि करेंगे तो उनको हरा देना कोई कठिन बात न होगी।"

भगवानदास हँस पड़े। "बहुत अच्छा, मीर साहब! बादशाह के साथ युद्ध करेंगे? उसके लिए इस सेना में कितने लोग तैयार होंगे? ईश्वर के समान अकबर बादशाह के सामने खड़े होने का साहस कौन कर सकता है? वे निरायुध सामने खड़े हो तो भी उनके पास जाकर उन्हे प्रणाम न करने वाले कितने लोग हमारे पास हैं?" उन्होंने सलीम से पूछा—"हुजूर! बताइए, बादशाह सलामत से युद्ध करके राज्य लेना आप चाहते हैं?"

सलीम ने उत्तर दिया—"अब्बाजान से युद्ध करने की इच्छा मेरी कभी नहीं थी, और न अब है। यदि ऐसा करूँ भी तो उसका परिणाम संदिग्ध नहीं। इतनी डींग मारने वाला उस्मान भी तो उनके सामने भीगी बिल्ली बन जायगा। तो, भगवानदास, आपकी क्या राय है?"

भगवानदास—"हुजूर! मेरी सलाह है कि आगरा जीतने की इच्छा छोड दें। यदि प्रयत्न करें भी तो सफलता नहीं मिलेगी। हमें किसी ऐसे किले में अपनी छावनी बनानी चाहिए जहाँ सरलता से बादशाह सलामत हमे जीत न सकें। फिर उसके आसपास का राज्य अपने अधिकार में लेकर आराम से वहाँ रहें। ऐसा करेंगे तो पुत्र से लडने के लिए भी बादशाह सोच-विचार कर ही तैयार होंगे। थोड़े दिनों में सब शान्त भी हो जायगा।"

सलीम थोडी देर सोचता रहा। इस सलाह से वह सहमत था। उसकी इच्छा पिता से युद्ध करने अथवा उन्हें पदच्युत करने की कभी नहीं थी। वह केवल यह बता देना चाहता था कि दानियाल को उत्तराधिकार देना सरल नहीं है। वह उन सचिवो को भी हटवाना चाहता था जो उसके विरोधी थे। अपने पौरुष और शक्ति का परिचय भी पिता को दे देना उसे आवश्यक मालूम होता था। इस सब के लिए भगवानदास की सलाह उसे ठीक जंची। उसने पूछा—"यदि ऐसा ही किया जाय तो कौनसा दुर्ग और प्रान्त अधिकृत करने योग्य होगा?"

भगवानदास ने उत्तर दिया—"लाहौर या इलाहाबाद। इनमें से एक को ले लें तो अपने राज्य के रूप में वहाँ का शासन किया जा सकता है। लाहौर साम्राज्य का दूसरा शहर है। परन्तु उसे लेने पर काबुल और आगरा दोनों ओर से हमारे ऊपर आक्रमण हो सकता है। इलाहाबाद सुरक्षित स्थान है। वहाँ से गंगातट का सारा प्रदेश हमारे अधीन हो सकता है। दूसरे, बंगाल के सूबेदार राजा मानसिंह हमारा विरोध नहीं करेंगे। तीसरे, वहाँ का किला मज़बूत है और सरलता से जीता नहीं जा सकता।"

सलीम—"ठीक! ठीक! भगवानदास, हमें अपना स्थान वहीं सुदृढ़ करना है। वहाँ का किलेदार हमारा मित्र भी है। वह अवश्य ही हमारी सहायता करेगा। अब्बाजान ने मेरी सिफारिश पर ही उसको वहाँ नियुक्त किया था। क्यों, राजा जगन्नाथ, आपने कुछ नहीं कहा?"

"मुझे एक बात सूझती है," राजा जगन्नाथ ने कहा, "यदि हो सके तो आगरा पर ही अधिकार करना चाहिए। बिना एक प्रयत्न किये चले जाना ठीक नहीं है। लड़कर जीतना सम्भव नहीं है। परन्तु क्या उपाय से सफलता नहीं मिल सकती? शहर के अन्दर ही कुछ विद्रोह पैदा नहीं कर सकेंगे? और पीथल को अपने वश में करने के लिए भी कुछ किया जाय।"

"कैसे?" सलीम ने पूछा।

"पीथल के पास अपना कोई राज्य नहीं है। उनका सम्मान केवल इसी कारण है कि वे राजा रायसिंह के छोटे भाई हैं। यदि हुजूर उनको यह लालच दिखायें कि अपने किसी विरोधी राजा के सिंहासन पर उन्हें बिठा दिया जायगा तो क्या वे स्वीकार नहीं करेंगे? कितना भी कोई महान हो, हृदय में महत्त्वाकांक्षाएँ तो होती ही हैं। उसका पता लगाकर काम किया जाय तो सभी को वश में किया जा सकता है। आपकी आज्ञा हो तो मैं एक प्रयत्न करके देखूँ। बादशाह को यहाँ पहुँचने में कम-से-कम पन्द्रह दिन तो लगेंगे ही। इस बीच अपना प्रयत्न करके देखें। यदि

असाध्य हुआ तो इलाहाबाद चले चलेंगे।"

"पीथल आपकी बातों मे आयेगा नही। हाँ, प्रयत्न करके देख सकते है। और इलाहाबाद जाकर आवश्यक प्रबन्ध करने में समय भी लगेगा। अच्छा, पीथल के साथ विचार-विमर्श करने का दायित्व आप ही सँभालिए। भगवानदास गुप्त रूप से आज ही इलाहाबाद के लिए रवाना हो जायँ। सेना का अधिकार उस्मान सँभालें।"

निश्चय के अनुसार सब व्यवस्था हो गई। दीवान भगवानदास कुछ अनुचरों और कोष के साथ इलाहाबाद के लिए रवाना हो गए। उस्मान ने सेना को लेकर आगरा को चारों ओर से घेर लिया। राजा जगन्नाथ शहर में गये, परन्तु इसका पता और लोगों को नहीं चला।

सलीम की सेना के राजधानी के पास आने का समाचार पाते ही पीथल नगर की रक्षा-व्यवस्था में जुट गए। सलीम के समर्थक मौलवी और उमरा लोग अन्दर से उपद्रव करा सकते थे। उन्हें रोकने के उद्देश्य से उन्होंने पहले एक घोषणा की कि बादशाह के अधिकार को नष्ट करने के उद्देश्य से एक शत्रु सेना नगर के आसपास आई है। उसकी सहायता के लिए कुछ भी करने वाले नागरिकों को जाति, धर्म आदि का खयाल किये बिना तुरन्त फाँसी की सजा दे दी जायगी।" यह घोषणा ढिंढोरा पिटवाकर सारे शहर में फैला दी गई। दूसरी ओर शहर मे स्थान-स्थान पर ऐसे पर्चे लगवा दिये गए कि जो लोग बादशाह के विरुद्ध अफवाहें उड़ाने अथवा अन्य किसी प्रकार से गड़बड़ी मचाने का प्रयत्न करेंगे उन्हें बाजार के बीच बाँध कर चाबुकों से मारा जायगा। बड़ी-बड़ी सड़कों और उन सब स्थानों पर जहाँ जनता एकत्र हो सकती थी, सैनिकों का पहरा लगा दिया गया।

सलीम की सहायता करने का यदि किसी ने विचार भी किया था तो वह इन कार्यवाहियों के कारण चुप ही रह गया। किसी ने कल्पना भी न की थी कि पीथल बादशाह के सीमन्त पुत्र के विरुद्ध भी ऐसी कड़ी कार्यवाही करेंगे। शहर के अन्दरूनी उपद्रवों को रोकने की ही उन्होंने कार्यवाही नहीं की, वरन् दुर्ग के मुख्य-मुख्य स्थानों में तुरन्त तोपें भी चढवा

दी, कमजोर जगहों को दृढ कराया, रक्षक सेना को विशेष प्रोत्साहन दिया और अन्य आवश्यक कार्यों में भी तत्परता तथा सावधानी दिखाई। बादशाह के प्रति शुभ भावनाओं के कारण जनता पीथल की हितैषी ही बनी रही।

इन सब कामों में पीथल के दाहिने हाथ बने दलपति सिंह। अंग-रक्षक के स्थान से उठकर अब वे उप-सेनापति के स्थान पर पहुँच गये थे। बाल्यकाल में ही मिली युद्ध-शिक्षा इस समय उनके काम आई। नगरवासी प्रभुजनों को युद्ध का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं था, इसलिए इतनी छोटी उम्र के दलपति सिंह ने जो इतना बड़ा काम सँभाला उससे किसी को ईर्ष्या नहीं हुई।

इस प्रकार नगर के बाहर सलीम की सेना और अन्दर पीथल की सेना—दोनों युद्ध-सन्नद्ध रहने पर भी क्रोध के साथ एक-दूसरे को देखती रहीं, परन्तु गोली किसी ने नहीं चलाई। पीथल ने मान लिया था कि बादशाह की आज्ञा केवल रक्षा करने की है, इसलिए उन्होंने सलीम को हराकर भगा देना आवश्यक नहीं समझा। आगरा को जीतकर हाथ में ले लेने की शक्ति न होने के कारण सलीम ने भी आक्रमण करना आवश्यक नहीं समझा।

पीथल को उपाय द्वारा वश में करने के उद्देश्य से नगर में आये हुए जगन्नाथ नगर में आते ही सलीम के पक्षपाती एक-दो अमीरों से मिलने के लिये गए। उनसे जब उन्हें पीथल के व्यवहार और उनकी रक्षा-व्यवस्थाओं का पता चला तो उनका मन कुछ निराश हो गया। इतनी सावधानी से रक्षा का प्रबन्ध करने वाले राज-प्रतिनिधि को स्वकर्तव्य और स्वामिभक्ति से विचलित करना सम्भव नहीं है, उलटे ऐसा प्रयत्न अपने ही लिए विपत्तिकारी हो सकता है, ऐसी शंका उनके मन में होने लगी। उनको लगने लगा कि कुछ भी कहें, कुछ भी करें और कितना भी डरायें, पीथल का सलीम के पक्ष में मिल जाना सम्भव नहीं है। सफलता दुष्प्राप्य समझकर भी एक बार उनसे मिलकर सीधे बातचीत करने का उन्होंने निश्चय किया। पुराने मित्र होने के कारण एकान्त में उनसे मिलने में कोई कठि-

नाई न होगी ऐसा मानकर उन्होंने गुप्त रूप से एक अनुचर को उनके पास भेजा और प्रार्थना की कि मिलने के लिए कोई समय निश्चित कर दें। अनुचर पीथल का उत्तर लेकर लौटा तो राजा जगन्नाथ की आँखें खुल गईं। उन्होंने उत्तर दिया था—"अपने मित्र और बन्धु राजा जगन्नाथ से मिलने के लिए मैं सदा तत्पर हूँ। परन्तु नगर को घेरने वाली सेना की एक टुकड़ी के नायक तथा राजद्रोही होने के कारण उनसे मिलना अथवा किसी प्रकार का मैत्री सम्बन्ध रखना मैं पसन्द नहीं करता। यदि उनसे मिलने के लिए बाध्य किया गया तो उनका किस प्रकार स्वागत किया जाय, उसी समय निश्चित करूँगा।"

राजा जगन्नाथ ने समझ लिया कि सलीम के प्रतिनिधि का राजा पीथल के सामने जाना भी सम्भव नहीं है और यदि दूसरों के बीच में मिलना हुआ तो वे राजद्रोही के अपराध में बन्दी बना लेने में भी संकोच नहीं करेंगे। उनके मस्तिष्क ने मानो काम करना ही बन्द कर दिया। बहुत सोचने के बाद उन्होंने बूँदी के राजा से सहायता माँगी। बूँदी के राजा भोजसिंह उस समय के बड़े उमराओं मे एक थे। परन्तु वे राज्य सम्बन्धी किसी काम में हस्तक्षेप नहीं करते थे। बादशाह ने उपाय और युक्तियों से उनके राज्य को अधिकृत कर लिया था, परन्तु वे उनके धैर्य और राजनिष्ठा से प्रसन्न होकर उन्हे सबसे अधिक सम्मान का स्थान प्रदान करते थे। कभी-कभी वे राजधानी में आकर रहा करते थे और बादशाह उनके साथ असीम स्नेह तथा विश्वास का व्यवहार करते थे। राज्य के किसी काम में हस्तक्षेप न करने के कारण ही राजधानी के सभी सामन्तों और प्रमुजनों का उन पर विश्वास और स्नेह था। सभी हिन्दू राजा बड़े भाई के समान उनका सम्मान करते थे।

इस प्रकार राजधानी के झगड़ों और कलहों से परे रहने वाले राजा भोजसिंह के द्वारा कुछ काम बन जायगा, यह सोचकर राजा जगन्नाथ उनके यमुना-तट के महल में गये। उन्होंने महाराजा से निवेदन किया कि सलीम-शाह का सन्देश लेकर आया हूँ और साम्राज्य में कलह तथा अन्तःछिद्र का

अवसर टालने तथा शान्ति से काम लेने की इच्छा से राजा पीथल से मिलना चाहता हूँ। राजा भोज ने यह उत्सुकता भी प्रकट नहीं की कि बात-चीत क्या करने वाले हैं। कुछ देर सोचने के बाद उन्होंने कहा, "सलीम-शाह का व्यवहार उनकी स्थिति और पद के योग्य नहीं मालूम होता है। वे भारत के बादशाह के उत्तराधिकारी हैं। यदि वे स्वयं अपने पिता से लड़कर राज्य में अशान्ति बढ़ाएँगे तो अपने भी पुत्रों से क्या अधिक आशा कर सकेंगे?"

जगन्नाथ ने कहा, "यही मेरा भी विचार है। शाहजादा की भी इच्छा झगड़ा करने की नहीं है। पीथल की आज्ञा के कारण उनको राजधानी में प्रवेश करने से रोका गया, इसलिए उन्हें बुरा लगा।"

"इसमें मुझे क्या करने को कह रहे हो?"

"गुप्त रूप से पीथल से मिलने का एक अवसर चाहता हूँ। मैंने प्रार्थना की तो उन्होंने इनकार कर दिया। उनके घर में जाकर मिलना शायद अनुचित होगा। इसलिए आप कृपा करके उनको अपने पास बुलाइये, यही मेरी प्रार्थना है।"

"वे आजकल बहुत व्यस्त रहते हैं। यहाँ बुलाने से शायद उनको असुविधा होगी।"

"आप आमंत्रित करें तो कितनी भी असुविधा हो, आयेंगे ही। कार्य ऐसा महत्त्वपूर्ण है इसलिए बाध्य कर रहा हूँ।"

राजा भोज ने आखिर बात मान ली और पीथल के पास संदेश भेज दिया। वह सेना के बीच में व्यस्त थे, फिर भी दो अनुचरों को साथ लेकर बूँदी राजमहल में आ गए। राजा भोज ने विनम्र होकर चरण-स्पर्श के लिए झुके पीथल को उठाकर और गले से लगाकर कहा, "भैया! तुमको कष्ट दिया इसका मुझे खेद है। आशा है बहुत कष्ट तो नहीं हुआ होगा।"

पीथल ने उत्तर दिया, "किसी भी समय आज्ञा देने का अधिकार आपका है। इतनी शीघ्रता से बुलाया तो कोई आवश्यक कार्य होगा?"

"अपने काम से मैंने नहीं बुलाया। जगन्नाथ सिंह तुमसे कुछ आव-

श्यक बातें करना चाहते हैं। क्या बात है, मैंने पूछा नही। परन्तु यह तो मैं चाहता हूँ कि हो सके तो सलीम और बादशाह के बीच युद्ध न हो। इसलिए मेरी इच्छा है कि तुम इनसे मिल सको तो अच्छा हो।"

"आपकी आज्ञा मानने को मैं तैयार हूँ, परन्तु इससे कोई लाभ नही।"

"कुछ भी हो, जगन्नाथ सिंह हम दोनों के मित्र हैं। उनसे एक बार मिल तो लो। मेरे बैठकखाने मे बैठे हैं। चलो चलें।"

सलीम की बातचीत से उसकी विचार-गति थोडी-बहुत पीथल ने समझ ली थी। इसलिए उन्होंने अनुमान कर लिया कि किसी प्रकार मुझे उनके पक्ष मे मिलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसी के लिए कोई बात लेकर आये होंगे। पीथल ने सब बातों का अनुमान करके उनका उत्तर भी अपने मन में तैयार कर लिया। जगन्नाथ सिंह के पास जब पहुँचे तब उनके चेहरे पर असामान्य गम्भीरता छाई हुई थी। उनका मुख देखने के बाद सन्देश की आवश्यकता ही नही रही। आपस में भेंट करके बैठे तो पीथल ने ही बात शुरू की—"सलीमशाह सकुशल तो हैं? विशेष कोई बात?"

जगन्नाथ—"राजकुमार सकुशल है। आपसे विशेष कुशल उन्होंने पुछवाई है।"

"उनसे मिले अभी चार-पाँच ही दिन हुए है। इस बीच क्या विशेष बात हो सकती है?"

"आप तो जानते ही हैं कि सलीमशाह को आपके प्रति कितना स्नेह और मान है। इसलिए यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अभी आपने जो व्यवस्था कर रखी है उससे उनको कितना दुःख हुआ है, यह आपको बताने की उन्होंने मुझे आज्ञा दी है।"

"मेरे हृदय में भी शाहजादा के लिए कितनी भक्ति और स्नेह है यह बताने की आवश्यकता नही। इसलिए बादशाह की आज्ञा का पालन करने वाले मुझ पर उनको कोप नहीं करना चाहिए।"

"कोप नहीं है। नगर में प्रवेश करने से रोका, इसलिए दुःख है।"

"उनको राजधानी मे प्रवेश करने मे मैंने कभी नहीं रोका। जब चाहें तब वे आगरा मे आकर अपने महल में आराम से रह सकते हैं। साथ ही सेना को अजमेर वापस भेजना होगा। यह बादशाह की आज्ञा है।"

"तो आपके सामने स्नेह और बन्धुत्व का कोई मूल्य नहीं है?"

"सब बहुमूल्य है। परन्तु सबसे मूल्यवान वस्तु है स्वामिभक्ति। इतना ही नहीं, शाहजादा का हित और उत्कर्ष भी मेरे ध्यान में है। समग्र प्रतापी अकबर शाह का विरोध वे कब तक करते रह सकते हैं? इसलिए उनसे जाकर निवेदन कीजिए कि दुरुपदेशको के प्रभाव में न आकर पितृभक्ति को ध्यान मे रखकर, पिता के आज्ञापालक पुत्र बनकर रहना ही हितकर है—यही मेरी प्रार्थना है।"

"आपका कहना ठीक है। बादशाह से युद्ध करना वे चाहते ही नहीं। आगरा जीत लेने की इच्छा भी उन्हें नहीं है। उन्होने जो कहा सो मैंने आपसे कह दिया। आपकी बात मे उनसे निवेदन कर दूँगा। मेरा विश्वास है कि वे मानेंगे भी।"

पीथल जाने के लिए उठ खड़े हुए। अपने विचार ठीक तरह से कह सकने की भी शक्ति खोकर जगन्नाथसिंह किसी प्रकार वहाँ से निकलने का मार्ग देखने लगा। इस सम्भाषण से एक बात उसकी समझ मे आ गई। सलीम शाह का आगरा पर आक्रमण करना व्यर्थ होगा। किसी भी हालत मे पीथल राजधानी की रक्षा करने पर तुले हुए है। इस स्थिति मे उनको लगा कि भगवानदास की ही राय उत्तम है।

अपनी कूट-नीति के विफल होने का समाचार देते हुए उसने शाहजादा से निवेदन किया कि बादशाह के सेना लेकर उत्तर मे पहुँचने के पहले ही इलाहाबाद पहुँच जानाएकमात्र उत्तम उपाय है।

साहसिक होने पर भी राजनीति में कुशल सलीम ने यह सोच लिया कि पिता के वात्सल्य की परीक्षा अधिक करना ठीक न होगा। इसलिए जब आगरा जीतना असम्भव है तो हार कर जाने की अपेक्षा अच्छा यही है कि स्वयं हट जायें। अतएव उसने सेना को इलाहाबाद की ओर कूच करने

की आज्ञा दे दी।

जाते-जाते उसने यह घोषणा भी कर दी कि आगरा को जीतने का इरादा हमारा कभी न था। हमारे आदरणीय पिता की अनुपस्थिति में हमें नगर में प्रवेश करने से रोका गया, यह अन्याय था। परन्तु राज-प्रतिनिधि की आज्ञा होने के कारण उसका विरोध न करते हुए हम वापस जा रहे हैं। अब पिताजी के लौटने तक हमने इलाहबाद में रहने का निश्चय किया है।

बिना युद्ध किये ही जय प्राप्त होने से पीथल को आनन्द हुआ। अपने प्रिय मित्र सलीम से युद्ध करना उनको प्रिय नहीं था। इसका अवसर ही न देकर चले जाने वाले राजकुमार का उन्होंने मन से अभिनन्दन किया। राजधानी में सभी को इस घटना से आनन्द हुआ। परन्तु दानियाल शाह और नासिर खाँ को यह असह्य हो गया। उनको आशा थी कि यदि युद्ध हो जाता तो पीथल का विश्वासघात प्रकट हो जाता। इसका अवसर न आने देने वाले दुर्दैव को उन्होंने मन भर कोसा।

सलीम के अपनी सेना समेत इलाहाबाद चले जाने के बाद राजधानी में पाँच-छः दिन उत्सव जैसे बीते। इतने दिनों तक भयभीत और शान्त रहे हुए उमरा और प्रभुजन राज-प्रतिनिधि की इस विजय का अभिनन्दन करने के लिए जलसे करने लगे। पहले दिन दानियाल शाह के महल में एक बहुत बड़े भोज और बाद में संगीत तथा नृत्य का आयोजन हुआ। राजधानी के सभी प्रभुजन इसमें सम्मिलित हुए। राजा पीथल और दलपतिसिंह ने भी शाहजादे के आमन्त्रण को अस्वीकार नहीं किया। इसके बाद अन्य प्रभुजनों के महलों में भी अपने-अपने स्थान और पद के अनुसार उत्सव मनाये गए। कई दिन बीत जाने पर कोषाधिपति नासिर खाँ ने इन सबसे आडम्बरपूर्ण समारोह का आयोजन किया।

बादशाह का श्वशुर होने के कारण वह मानता था कि मेरा स्थान सबसे ऊँचा है। कुछ प्रमुख व्यक्ति उसके इस दावे को स्वीकार भी कर लेते थे। इस रिश्तेदारी के अलावा, सम्पत्ति में भी वह प्रथम गणनीय था। उस सम्पत्समृद्धि के अनुकूल बड़प्पन का भाव भी उसमें था। उसका रम्य महल शिल्प-वैचित्र्य, साधन-सामग्रियों की कमनीयता और बहुमूल्यता में सर्वश्रेष्ठ था। उसकी अंगरक्षक सेना एक सामान्य राज्य की सेना से अधिक बड़ी थी। भृत्यों, अनुचरों तथा अन्य विशेषताओं के कारण राजधानी में उसका निवास-स्थान अधिक ध्यान आकर्षित करने वाला था।

अब कोषाधिपति और राजधानी के राज-प्रतिनिधियों में एक बन जाने के कारण दानियाल शाह के बाद उसका ही प्रताप सबसे अधिक हो गया था। इसलिए उसका आमन्त्रण स्वीकार करके सब लोग पहले ही उसके महल में उपस्थित हो गए थे। परन्तु वहाँ आये हुए सभी को इस बात से आश्चर्य हुआ कि पीथल ने उसका आमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। नासिर खाँ ने बहुत आग्रह से उन्हें आमन्त्रित किया था और बहुत उत्सुकता से उनकी राह देखी जा रही थी। परन्तु दानियाल शाह के आगमन के बाद आधा घण्टा हो गया फिर भी पीथल को कहीं न देखकर नासिर खाँ ने मान लिया कि उन्होंने जान-बूझकर उसका अपमान किया है।

इस उत्सव के दूसरे दिन दलपतिसिंह के पास एक दौत्य आया। वह नित्यकर्मादि से निवृत्त होकर अपने स्वामी के पास जा ही रहा था कि गुल-अनारा की विश्वस्त दूती वहाँ आ पहुँची। पहले भी एक बार वह इसी प्रकार आई थी, परन्तु उसे निराश होना पड़ा था; इसलिए उस वृद्धा को देखकर दलपतिसिंह को संकोच हुआ। परन्तु वृद्धा के व्यवहार में किसी प्रकार के मनोमालिन्य की झलक नहीं थी। उसने दलपतिसिंह का मुस्कराहट के साथ अभिवादन किया।

दलपतिसिंह ने पूछा—"इतने सुबह-सुबह कैसे आई ? आपकी माल-किन सकुशल तो हैं ?"

दूती—"जी हाँ ! आपके बारे में सदा ही पूछ-ताछ करती रहती हैं।"

"उनका कृतज्ञ हूँ। उनका गायन और नृत्य मुझे कितना अच्छा लगता है, मैं वर्णन नहीं कर सकता!"

"यह आपके मुख से ही सुन सकें तो मेरी स्वामिनी को बहुत आनन्द होगा, यही उनकी इच्छा है।"

"बहुत काम में हूँ, इसीलिए नहीं आ सका।"

"अभी वहाँ आने की प्रार्थना करने के लिए ही मुझे भेजा है। बहुत आवश्यक काम है। एक क्षण भी देरी न करने की उन्होंने चेतावनी दी है।"

यह सुनकर दलपतिसिंह कुछ चिन्ता मे पड़ गया। उसे शंका होने लगी कि कही गुल अनारा अपने घर मे बुलाने का यह उपाय तो नहीं रच रही है! राजधानी की मोहिनियो के बारे मे उसने अनेक कहानियाँ सुन रखी थीं। इसलिए उसे आशंका हुई कि इसमे कहीं कोई धोखा न हो। दासियो और वेश्याओं के द्वारा शत्रुओ को बुलाकर नष्ट करने की रीति भी असाधारण नही थी। ऐसा भी हो सकता है कि उस दिन उसके बुलाने पर न जाने से कुछ द्रोह करने के लिए बुलाती हो। उसने उत्तर दिया—"इतनी जल्दी क्या है? अभी मुझे अपने काम से जाना है। चाहे तो शाम को आ जाऊँगा।"

दूती ने आग्रह किया—"नहीं, नहीं! बहुत आवश्यक काम है। आप और कुछ शंकाएँ न करे। मेरी स्वामिनी अन्य साधारण वेश्याओं जैसी नहीं है। किसी भी प्रकार आपको अपने घर में बुलाने के उद्देश्य से कहतीं भी नही। आपका आना बहुत आवश्यक है, नहीं तो बहुत बडा संकट आ सकता है।"

"क्या संकट?"

"ऐसा न सोचें। गुल अनारा जैसे लोगों को बहुत सी गुप्त बातें जानने के अवसर मिलते हैं। वे बहुत से प्रभुजनों की प्रिय हैं। राज-गृहों में भी प्रवेश है। इसलिए कुछ मदद भी कर सकती हैं।"

दलपतिसिंह को भी लगा यह ठीक है। दूती के शब्दों में स्पष्ट स्नेह-

भाव से उसकी आपद्-शकाएँ भी मिटने लगीं। सुबह ही बुलाया, इसलिए यह भी समझ लिया कि यह प्रणय-सन्देश नहीं है। फिर भी पूर्ण विश्वास न होने से एक बहाना और बनाने लगा—"अच्छा, अभी महाराजा के पास जाने का समय बीत रहा है। आप जाइए, मैं दोपहर तक आ जाऊँगा।"

"नहीं, नहीं," दूती ने कहा, "महाराजा के पास जाने के पहले वहाँ आना अत्यावश्यक है। यदि आपको कोई शका है तो उन्होंने कहा है, कुमारी सूरजमोहिनी के बारे में एक बात कहने के लिए बुला रही हूँ।"

अपनी प्रेयसी का नाम सुनते ही दलपतिसिंह चौंक गया। वह जानता था कि उसको अपनाने के लिए दानियाल शाह सब प्रकार के उपायों का प्रयोग करेगा। इन दुष्टों से रक्षा के लिए सेठजी ने सब प्रकार के उपाय तो कर दिये हैं, फिर भी राजधानी गुप्तचरों से भरी हुई है और सभी बातों का पता लगाया जा सकता है। यदि यही बात है तो क्या-क्या विपत्ति आने वाली है? उसका हृदय दुःसह दुःख और चिन्ता से भर गया।

दलपतिसिंह का भावभेद और दुःख देखकर दूती ने कहा—"आप दुखी न हों। शीघ्रातिशीघ्र आप गुल अनारा से मिलिए। मेरी बुद्धिमती और गुणवती स्वामिनी सब का मार्ग निकाल लेंगी।" अब दलपतिसिंह ने देरी नहीं की।

सन्ध्या समय इन्द्रलोक के समान जाज्वल्यमान दिल-पसन्द वीथी इस समय अभिनय समाप्त होने के बाद के रंगमंच जैसी आकर्षणहीन दिखलाई पड़ती थी। अनेक मुख्य गृहों के द्वार खुले भी नहीं थे। सब ओर निर्जन और निर्जीव मालूम होता था। नींद-भरी, विकृत रूप वाली दासियों और अत्यधिक मद्य-पान से सड़कों पर पड़े हुए लोगों के सिवाय आसपास कोई दिखलाई नहीं पड़ता था। उसे आश्चर्य हुआ कि लोग जिसके सौन्दर्य-गुण गाते अघाते नहीं वह दिल-पसन्द वीथी यही है। कामी जनों के दिलों में भी घृणा पैदा कर देने वाले इस समय में गुल अनारा ने बुलाया है तो अवश्य कुछ आवश्यक कार्य ही होगा, यह सोचकर उसके मन को आश्वा-

सन मिला।

गुल अनारा का निवास-स्थान उस वीथी का मुख्य प्रासाद था। महा प्रभुजन और राजकुमार आदि भी इस प्रासाद मे आतिथ्य स्वीकार करते थे। इसलिए अन्तर्गृह और मुख्य-मुख्य कमरे राजोचित ढग से ही सजे हुए थे। द्वार के अन्दर आकर दलपतिसिंह उस भवन की सुन्दरता और अलंकार-चातुरी देखता विस्मित खडा हो गया। तब तक गुल अनारा के एक प्रबन्धक ने आकर उसका स्वागत किया और आदर के साथ मुख्य कमरे मे ले जाकर एक रत्नजटित मंच पर बैठाया। फिर उसने कहा—"गुल अनारा जान अभी सेवा मे उपस्थित होगी। तब तक थोडा शरबत ले आऊँ ?"

दलपतिसिंह ने उत्तर दिया—"नही, धन्यवाद! मैंने अभी भोजन किया है।"

इतने मे गुल अनारा ने भी कमरे मे प्रवेश किया। वह अमूल्य वस्त्राभरण आदि नही पहने थी, फिर भी चन्द्रास्त के पश्चात् चार-पॉच ताराओ से सुशोभित उषस्संध्या-सी मोहिनी मालूम होती थी। अनलकृत वेश उसके स्वाभाविक सौन्दर्य को बढा रहा था। उसे देखकर दलपतिसिंह सोचने लगा—

> **आमुक्त धौत सिचयांचल कम्बुकण्ठ-**
> **मानील कीर्ण कबरी भर संवृतांसं**
> **गात्रं निराभरण सुन्दर कर्णपाशं**
> **तस्यां न कस्य हृदयं तरली करोति ?**

अर्थात्—सुन्दर आभूषणों से मुक्त शख समान कण्ठ, फैली हुई नीलकबरी के भार से आवृत्त स्कंध-भाग, निराभरण होने से अधिक सुन्दर बने कर्ण-पाश और अंग किसका हृदय तरल नहीं करते हैं?

उसको शंका होने लगी कि क्या यह वही मोहनांगी है जिसको उसने दानियालशाह के महल में देखा था? उस दिन का वस्त्रालंकार, आडम्बर, और अवयवों की कृत्रिम सुन्दरता आदि नागरिकों के लिए

मोहक हो सकते है। उस दिन उसके लिए वह योग्य भी था। परन्तु आज उसके सामने वह एक मुग्धा कुलागना-जैसी अकृत्रिम सुन्दर, स्निग्ध-विनय-मधुर भाव, शुभ्र वस्त्र आदि से अलंकृत खडी थी। उस दिन नृत्य मे जब देखा तब उसके हाव-भाव, मन्द स्मित और नर्तन कामोत्तेजक थे। परन्तु आज उसके मुख पर विनय और आदर के सिवा कोई भाव नही था। वह गुल अनारा और यह गुल अनारा एक ही है क्या, यह शंका यदि दलपतिसिंह के मन मे उत्पन्न हुई तो आश्चर्य क्या था

विनय के साथ अंजलीबद्ध करते हुए उसने कहा—"आपने यहाँ तक आने की कृपा की, मैं अत्यन्त आभारी हूँ। इस समय मैंने बुलवाया तो कोई असुविधा तो नहीं हुई ?"

दलपतिसिंह ने उत्तर दिया—"मैंने कई बार आने का विचार किया, परन्तु व्यस्त रहा इसलिए नहीं आ सका।"

"आप की कृपा ! इस समय मैंने आपको जिस काम के लिए बुलाया है वह कोई सन्तोषकर नहीं है। उसमे मुझे दुःख है। यदि आने को तैयार न हो तो ही सच बात बताने को मैंने दासी को कहा था क्योंकि मैं नहीं चाहती थी आप बेकार दुखी हो। जब कार्य जान लिया तो सारी बाते जानने के लिए आप अधीर होंगे।"

दलपतिसिंह ने उद्वेग से पूछा—"उस पर कोई विपत्ति तो नहीं आई ?"

"ईश्वर ने बचा लिया। आप शान्त रहे।"

"अब धीरज से सुनूँगा। आप खडी क्यो है ? बैठिए।"

गुल अनारा नीचे बिछे रत्नजटित कालीन पर बैठ गई। बाद मैं उसने कहा—"नासिर खाँ साहब के घर में एक बडी दावत थी। दानियाल शाह के सामने नृत्य और सगीत चल रहा था। मै वहाँ गई थी। आपको मालूम है, ये लोग कुछ दिनों से मुझ पर बहुत कृपालु है। जब सब जगह कोलाहल चल रहा था, मुझे और एक-दो दासियो को अन्तर्गृह में, जहाँ शहजादा, नासिर खाँ और एक-दो मित्र बैठे बाते कर रहे

थे, बुलाया गया। हम जब वहाँ बैठे थे, वे लोग बहुत-सी बातें कर रहे थे। आप जानते है, दासियाँ इस प्रकार की बातो पर कान नहीं देती। और हीराजान गा भी रही थी। मैं दानियाल शाह के पास ही बैठी थी। बातचीत में आपका नाम सुनाई दिया।''

इसके बाद की बातें लज्जा से मुख नीचा करके गुल अनारा ने कहीं—''मैंने ध्यान दिया। पहले नासिर खाँ ने कहा कि सेठजी की पौत्री से आपने विवाह करने का निश्चय किया है। दानियाल शाह यह सुनकर बहुत क्रुद्ध हुए। इस पर नासिर खाँ ने कहा—''उस निश्चय से कोई हर्ज नहीं। उसके जाने का स्थान हमे मालूम है। कुछ विश्वस्त लोगो को भेजे तो उसका अपहरण कर लेना सरल बात है।'' तुरन्त ही प्रबन्ध करने के लिए उन लोगो ने इब्राहीम खाँ को बुलाया। उसको आज्ञा दी गई कि कुमारी धौलपुर मे गोहड़ राणा के आश्रय मे है। प्रभात के पहले दानियाल शाह के अंगरक्षकों मे से पचास आदमियो को लेकर जाओ और उसे ले आओ।''

दलपतिसिंह विह्वल हो गया। यदि प्रभात के पूर्व ही इब्राहीम खाँ रवाना हो चुका है तो सूरजमोहिनी का प्राणनाश अथवा उससे भी भयानक अपमान अवश्य होगा। अब देरी करना और भी संकटजनक समझकर वह चलने के लिए उद्यत हो गया। उसने कहा—''मुझे क्षमा कीजिए, अब एक क्षण भी मैं रुक नही सकता। वापस आने के बाद उचित रूप में कृतज्ञता प्रकट करूँगा।''

गुल अनारा ने हँसकर उत्तर दिया—''आपके क्षोभ से मुझे प्रसन्नता हो रही है। परन्तु इतनी शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं है। जो बन सका सो मैंने कर रखा है।''

दलपतिसिंह ने कहा—''मुझे वृथा आशा मत दिलाइए। उस कुमारी का मान और प्राण मुझे संसार मे सबसे प्रिय है।''

''इब्राहीम खाँ अब तक रवाना नहीं हो सका। वह मद्योन्मत्त होकर इसी भवन के एक कमरे में पड़ा है। उसकी चाबी मेरे हाथ में है।''

"यह कैसे ?" दलपतिसिंह के विस्मय की सीमा नहीं रही ।

"आपकी पत्नी बननेवाली सौभाग्यशालिनी का द्रोह ही इनका उद्देश्य है। जब मैंने यह जाना तो सोचने लगी कि किस प्रकार इस प्रयत्न को रोकूँ ? सभी जानते थे कि आप और महाराजा दावत में नहीं आये हैं। इसलिए आपको समाचार देने का भी उपाय नहीं था। आखिर इब्राहीम खाँ को मैंने अपने घर में आमन्त्रित किया। वह बहुत दिनों से मुझसे मिलने को उत्सुक था। आपको शायद लगे कि मैंने सीमा का उल्लंघन किया, परन्तु और कोई मार्ग था नहीं। उसको मद्य अति प्रिय है। इसलिए उसमें गाजा मिलाकर पिला दिया। उसी की मूर्छा से अब तक जागा नहीं और दानियाल सोचते होंगे कि वह चला गया।"

"आपकी कृपा ! अपनी कृतज्ञता मैं कैसे प्रकट करूँ ? मुझ अपरिचित को आपने जो यह सहायता की उसे आजीवन नहीं भूलूँगा और मेरे सभी लोग आपके ऋण-बद्ध हैं।"

"इतना सब कहने की क्या आवश्यकता ? अपने प्रियजन के लिए मनुष्य क्या नहीं करता ? आप मुझे याद करेंगे इससे बढ़कर और क्या कृतज्ञता मुझे चाहिए ? परन्तु एक बात है। इस इब्राहीम को मैं बहुत समय तक अपने घर में नहीं रख सकती। यदि वह मूर्छा से मेरे घर में जागेगा तो सब बातें प्रकट हो जायेंगी। फिर मेरे ऊपर दानियाल और नासिर के क्रोध की कोई सीमा नहीं रहेगी।"

"वह कब जाग सकता है ?"

"शाम के पहले नहीं।"

"तो मार्ग है। अच्छा अब जाऊँ ?"

"ठहरिए। मैं अभी पूरी बात नहीं कह चुकी हूँ। एक और बात है।"

"उतनी ही महत्त्वपूर्ण है ?"

"यह आप ही निश्चय कर सकेंगे। महाराजा पृथ्वीसिंह के ऊपर अनेक आरोप लगाकर दानियाल शाह ने बादशाह सलामत को एक पत्र

लिखा है। उसमे कहा गया है कि शेख मुबारक को उन्होंने विष देकर मारा है। सलीम के साथ मिलकर बादशाह के विरुद्ध बहुत-कुछ कर रहे है, आदि। सन्देशवाहक कल तक वहाँ पहुँच गये होगे। महाराज को नष्ट कर देने का सभी उपाय उन्होंने कर रखा है। इसका परिणाम क्या होगा, कह नही सकते।"

"दुष्ट! इनकी शत्रुता की कोई सीमा ही नहीं है! परन्तु यह सब राजा पीथल के साथ नहीं चलेगा। सत्य की ही विजय होगी।"

"सच है। परन्तु सावधान रहना भी आवश्यक है। आधा हम करें तो आधा ईश्वर करेगा।"

"जब उनको यह पता चलेगा तो अपनी रक्षा की व्यवस्था कर लेंगे। तो अब आज्ञा!"

"एक प्रार्थना है। मेरे घर आये और एक बूँद पानी भी पिए बगैर जा रहे हैं। इससे मुझे बहुत दुःख होगा। थोडा शरबत और कुछ फल तो लेकर मुझे कृतार्थ कीजिए।"

"गलती हो गई। क्षमा कीजिए। सब बातो के बीच में मैंने शील को भुला दिया।"

गुल अनारा का मुँह हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा। शीघ्रतापूर्वक बाहर जाकर उसने कुछ आज्ञा दी। क्षण-भर में ही तरह-तरह के फल और वर्ण-वर्ण के शरबत भरे पान-पात्र दलपतिसिंह के सामने आ गए। उसमे से उसने माणिक्य-रत्न जैसे अनार के दाने उठा लिए। गुल अनारा ने इसे अपने नाम के सम्मान में समझकर आनन्द के साथ कहा—"इस अनार पर इतनी तो कृपा हुई मेरा सौभाग्य है। यह दर्शन भविष्य में स्नेह-बन्धन का मूल बनेगा, ऐसी मैं आशा करती हूँ।"

दलपतिसिंह ने आदर के साथ उत्तर दिया—"एक बात के लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। अपने मन से आपके प्रति एक अक्षम्य अपराध कर गया हूँ। राजधानी की नर्तकियों के बारे मे मैंने कई कहानियाँ सुनी हैं। आपको भी मैंने उन्हीं में से एक समझ लिया था। सभी जगह, सभी लोगों के

बीच अच्छा और बुरा है, यह तत्त्व मैं भूल गया था। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मुझे भी अपना मित्र मानने की कृपा कीजिए।''

''आपने कोई गलती नहीं की। बिना परीक्षा किये किसी को मित्र स्वीकार करना आपके जैसे व्यक्ति के लिए अनुचित है। अब यह सब क्यो कहें? आप मुझसे घृणा नहीं करते, यही मेरे लिए बडी बात है।''

''क्या? घृणा? सभी स्थितियो मे और सभी समय मे हम एक-दूसरे के मित्र हैं, और रहेगे। शीघ्र फिर से आऊँगा। अभी जाने की अनुमति दीजिए।''

गुल अनारा ने फिर कोई बाधा नही डाली। उसके घर से बाहर निकलने के बाद दलपतिसिंह आगे की कार्रवाई के बारे मे सोचने लगा। पहले इच्छा हुई कि सूरजमोहिनी के बारे में सेठजी को समाचार दे और जो-कुछ हो सके, कराये। परन्तु उसने सोचा कि जब निजी काम और राष्ट्र का काम दोनो साथ हैं तो राष्ट्र के काम को प्राथम्य देना चाहिए। अतएव उसने पहले पीथल सम्बन्धी समाचार उनको दे देने का निश्चय किया। इब्राहीम खॉ को गुल अनारा के मकान से निकालने की भी पीथल को ही अधिक सुविधा है। इसलिए वह शीघ्रतापूर्वक अपने स्वामी के घर पहुँचा और आवश्यक राज-कार्य के लिए महाराजा से मिलने की आवश्यकता बताते हुए उनके पास एक अनुचर भेजा। शीघ्र ही वह पीथल के पास पहुँच गया। उस समय महाराजा बादशाह को पत्र लिख रहे थे जिसमे पिछले दिनों की सब कार्रवाइयो का विवरण था। दलपतिसिंह से उन्होंने पूछा—''क्यो दलपति? तुम्हारे मुख से मालूम होता है कि कुछ दुःख का समाचार ले आये हो। यदि ऐसा हो तो जल्द बताओ।''

दलपतिसिंह ने गुल अनारा से सुनी हुई बातें संक्षेप में बता दीं।

अपने नाश के लिए विरोधी दल जो षड्यन्त्र रच रहा है उसको सुनकर पृथ्वीसिंह निश्चल निर्विकार रहे। अक्षोभ्य होकर गंगा के हृदय-जैसे शान्त खड़े उस राजपूत की स्थिर बुद्धि की दलपतिसिंह ने मन-ही-मन सराहना की। उसने कहना जारी रखा—''यदि बादशाह इन बातों मे

फँसकर कुछ कर बैठें ? पहली बात, वे दक्षिण में हैं। दूसरे, आप पर आरोपित अपराध उन्हें बहुत दुःख देने वाले होंगे। तीसरे, आपका पक्ष लेकर बोलने का साहस किसमें होगा ? सचमुच, बादशाह का परिचय न होने पर भी, उनकी सभा आदि की बात सोचकर ही डर मालूम होता है।"

थोड़ी देर सोचने के बाद पीथल ने कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है। इन्होंने ऐसे ढंग से ऐसी बातें लिखी हैं कि सुनते ही बादशाह आग-बबूला हो उठेंगे। उनको जब क्रोध होता है तब क्या कहते हैं, क्या करते हैं, कोई नहीं कह सकता। मुबारक की मृत्यु से उन्हें और भी विशेष दुःख होगा। दुःख के आवेग में वे कुछ साहस कर बैठ सकते है। परन्तु उससे मुझे भय नहीं है। जलालुद्दीन अकबर कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। उनमें ऐसी शक्ति है कि वे मित्रों और वैरियों के अन्तरतम की गति-विधि को पहचान सकते हैं। उससे परिचित रहते हैं। उनकी न्याय निष्ठा और बुद्धि-शक्ति को सोचकर मैं चकित रह जाता हूँ। उनके कामों को तुलना साधारण मनुष्यों के कामों से नहीं की जानी चाहिए। वे कोई अन्याय नहीं करेंगे। इसलिए इस विषय में हमारा अनजान-जैसा ही रहना उचित है।"

"फिर भी, यह तो सोचा भी नहीं था कि ये लोग इतनी धृष्टता का व्यवहार करेंगे। आपकी हत्या का प्रयत्न किया, राजद्रोह का अपराध लगाया। अब यह अपवाद भी फैला दिया कि आपने शेख साहब को मार डाला है।"

"इसका कारण तुम्हारी समझ में शायद नहीं आयेगा। पहली बात, बादशाह शेख मुबारक के प्रति अपने पिता के समान स्नेह और आदर रखते हैं। इसलिए उनकी मृत्यु उन्हें बहुत क्षुब्ध करेगी। फिर, उनके पास मेरे जो सहायक हैं, सो हैं अबुल फजल। जब वे जानेंगे कि उनके पिता की मृत्यु का कारण मैं हूँ तब, तत्काल के लिए ही सही, वे मेरे विपरीत हो जायेंगे। अस्तु। जब तक बादशाह की कोई आज्ञा नहीं आती तब तक हमें कुछ नहीं करना है। यहाँ की सब स्थिति सोचता हूँ तो लगता है कि वे तुरन्त ही लौट आयेंगे। अच्छा यह सब तुमने जाना कैसे ?

दलपतिसिंह ने गुल अनारा की बातें बिना किसी संकोच के बता दीं।

पीथल—"हाँ, वह एक अच्छी स्त्री है। बहुत दिनों से मुझे उसका परिचय है। उसके सद्गुण सोचकर इस बात का दुःख होता है कि उसे यह कुल-धर्म स्वीकार करना पड़ा। तुम्हारे मन में और कुछ बाकी है। बताओ क्या है?"

दलपति ने एक प्रस्तावना बाँधने के बाद सूरजमोहिनी का समाचार भी दे दिया। यह भी बताया कि इब्राहीम खाँ गुल अनारा के घर में बेहोश पड़ा है और उसे शीघ्र वहाँ से हटाना अति आवश्यक है।

पीथल का भाव बदल गया। अब तक जिस मुख से कोई विकार प्रकट नहीं हुआ था वह अब क्रोध से लाल हो गया। आँखों में मानो खून उतर आया, नास फूल गई, भौंहें टेढ़ी हो गईं। जब दलपतिसिंह की ओर देखा तो वह धीर कुमार भी एक बार चौंक गया।

फिर वे बोले—"इतना बड़ा काम पहले क्यों नहीं बताया? बादशाह के विशिष्ट मित्र कल्याणमल की पौत्री मेरी पुत्री के समान है। उसे पीड़ित करने का अर्थ मेरे पौरुष को ही चुनौती देना है। यदि उन लोगों ने कोई ऐसा बेजा कार्य किया तो चाहे शाहजादा हो चाहे बादशाह का श्वसुर हो, फल भोगना ही पड़ेगा। तुम जाओ। मैं आवश्यक प्रबन्ध कर लूँगा।"

दलपतिसिंह जाने लगा तो पीथल ने कहा—"ठहरो! जल्दी से एक डोली तैयार करके आवश्यक अनुचरों के साथ गुल अनारा के घर भेज दो और ऐसा प्रबन्ध करो कि गुप्त रूप से इब्राहीम खाँ को यहाँ ले आया जाय। बाकी यहाँ कर लेंगे।"

दलपतिसिंह के जाने के बाद तुरन्त ही कल्याणमल को बुलाया गया। आधे घण्टे में सेठजी राजा पीथल के घर में पहुँच गए। उनकी बातचीत बहुत देर तक चलती रही। अपराह्न में वे अपने घर लौटे।

विधि-वैपरीत्य और मनुष्य की कुटिलता के कारण लगातार दुःख-ही-दुःख भोगने वाले गजराज के घाव चार-पाँच दिन से ठीक थे। बेटी की भक्तिपूर्ण सेवा और गुलाब के निरीक्षण में चले इलाज से उसका स्वास्थ्य बहुत सुधर गया। रक्त अधिक बह जाने से जो दुर्बलता आई थी वह आराम और नियमित तथा पुष्टिकर भोजन आदि से बिलकुल दूर हो गई। अपने निजी कामों के लिए अपने-आप घूमने-फिरने की शक्ति आ गई। पुष्पिनी से बातचीत करने से उसे यह ज्ञात हो गया था कि उसकी पुत्री की सब विपत्तियों का कारण कासिमबेग नाम का एक मुसलमान सैनिक है। यह भी उसको मालूम हो गया था कि कासिमबेग के इस काम में मदद करने वाली हीराजान नाम की वेश्या है। अब उसे इसकी ही चिन्ता होने लगी कि किस प्रकार इन दोनों से बदला लिया जाय। प्रतिदिन वह हीराजान के घर के सामने जाता और ऐसे ढंग से कि किसी को शंका न हो, वहाँ खड़ा रहता। सन्ध्या से लेकर लगभग दस बजे रात तक उस घर में जाने वाले सब लोगों को ध्यान से देखते रहना उसका एक नियम ही बन गया था।

सेठ कल्याणमल भी गजराज को भूले नहीं थे। उनके अनुचरों में से कोई एक प्रतिदिन दलपतिसिंह के घर आकर परिस्थितियों का पता ले जाया करता था। उसे बराबर सान्त्वना भी देता रहता था कि उसकी पत्नी का पता लगाया जा रहा है, वह कैसी भी सुरक्षित अशोकवाटिका में ही क्यों न हो, पता लगते ही उसे निकाल लाया जायगा। पिछले अध्याय में वर्णित घटनाएँ जिस दिन हुईं उसके दूसरे दिन प्रातःकाल में भी सेठजी का अनुचर वहाँ आया था। उसके साथ की बातचीत से इस बार गजराज को आनन्द हुआ।

अनुचर ने पूछा—"अपनी पत्नी के अपहर्ता को आप पहचान सकते हैं?"

"वाह! पहचानूँगा क्यों नहीं?" गजराज ने कहा, "किसी नरक में मिले तो भी पहचान लूँगा।"

"तो आज आठ-नौ बजे उसको आप देख सकेंगे ?"

"तो उसका जीवन भी उसी समय समाप्त हो जायगा।"

"यह मैं नहीं कह सकता कि कहाँ तक आपके लिए साध्य होगा।"

"वह दुष्ट कहाँ मिलेगा ? मैंने तो शहर-भर ढूँढ लिया और वह दिखलाई नहीं पड़ा।"

"स्थान मैं नहीं बताऊँगा। आपके सामने से निकलेगा। इतना ध्यान रखना कि रास्ते में कोई गड़बड़ी न हो जाय।"

इस बातचीत के बाद गजराज का पूरा दिन मानो स्वप्न में बीता। उसने अपनी तलवार और कटार तेज करके साथ में ले ली। किसी बात में उसे कोई उत्साह नहीं था और उसे इस प्रकार चिन्तामग्न देखकर पद्मिनी को डर लगा, परन्तु उसका इस प्रकार का रुख वह आजकल बहुधा देखती थी, इसलिए उसने अधिक चिन्ता न की। सुबह काम पर जाने के पहले जब दलपतिसिंह ने उससे कुशल-प्रश्न पूछा तो उसका उत्तर कुछ विलक्षण और रहस्यमय था। उसने बहुत दुःख के साथ कहा—"महाराज! मैंने आपके और महाराज पृथ्वीसिंह के विरुद्ध अनजान में जो अपराध किया उसे मुझे अपने रक्त से ही धोना होगा। आपकी कृपा से अब मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ। अब यहाँ रहना उचित नहीं है। इसलिए यदि आज के बाद आपको मेरा कोई समाचार न मिले तो इतना समझ लीजिएगा कि मैं आपकी उन्नति और श्रेय की प्रार्थना करता हुआ ही मरा हूँ। अपनी इस अनाथ पुत्री पद्मिनी को मैं आपके हाथों में सौंपता हूँ। मैं जानता हूँ आप उसकी रक्षा कर लेंगे।"

इसके उत्तर में कुछ कहने का अवसर ही दलपतिसिंह को नहीं मिला। इन बातों को सुनकर वह आश्चर्य में अवश्य पड़ा, परन्तु उसकी कहानी से वह उसका स्वभाव कुछ-कुछ जान गया था, इसलिए उसने कोई बाधा भी उपस्थित नहीं की।

उस दिन सायंकाल होते ही गजराज नित्य के समान अपने स्थान पर जाकर खड़ा हो गया। दिल-पसन्द वीथी अपनी प्रतिदिन की शोभा में

आमज्जित हो रही थी। उस दिन हीरा के घर मे असाधारण सजावट दिखाई देती थी। छज्जो, दालानो और आँगन मे वर्ण-वर्ण के रत्न-दीप जलाये गए थे। द्वार-स्थित सेवक और दासियाँ आदि भी सुन्दर वेश-भूषा मे थीं। अन्दर से सुनाई देनेवाला संगीत पथिको को सन्देश दे रहा था कि आज एक शुभ दिन है। वीथी की ओर चाँदनी पर आज कोई भी स्त्री दिखलाई नही पडती थी। इसका अर्थ था कि आज किसी को अन्दर आने की अनुमति नही है।

यह निश्चित था कि आज हीराजान को किसी राजकुमार अथवा महा प्रभु के स्वागत का सौभाग्य प्राप्त हो गया है। तीन-चार वर्ष से रसिक लोगो ने उसे छोड रखा था और शाहजादा ने भी तुच्छ मान लिया था। इस परिस्थिति मे हीरा व्यथित होकर दिन व्यतीत कर रही थी। वह दानियाल शाह की दृष्टि मे फिर से आकर उस मार्ग से अपने अभीष्ट को पूरा करने का जो प्रयत्न कासिमबेग द्वारा कर रही थी वह विफल हो गया था। सलीम शाह की पराजय के उपलक्ष्य मे नगर में जो उत्सव मनाया गया उसमे कोई अच्छा अवसर प्राप्त कराने का आश्वासन कासिम-बेग ने दिया था; वह भी पूर्णतया सफल नहीं हुआ। नासिर खाँ के घर में दानियालशाह और उसके परमप्रिय मित्रों के सामने गाने का अवसर तो उसे मिला, परन्तु उन सभो ने अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार वह प्रयत्न भी व्यर्थ गया। अब उसी मित्र की कृपा से एक और दुर्लभ अवसर उसे मिल रहा था—बादशाह सलामत का श्वसुर, रसिक लोक का मुकुटालंकार, साम्राज्य का कुबेर नासिर खाँ स्वयं आज उस भवन को अपनी चरण-रज से पवित्र करने वाला था।

निराशा-ताप से मुरझाये हुए हीरा के दुराग्रह-वृक्ष मे फिर से अंकुर फूटने लगे। नासिर खाँ की सहायता हो तो अन्य गणिकाओ से बढ़कर जीवन व्यतीत करने में क्या कठिनाई हो सकती है? वह तो कुबेर के समान सम्पन्न है—अधिकार मे अग्रगण्य प्रभु, सब से सम्मान प्राप्त, महा

प्रभावशाली ! उसे वश मे करने से सब-कुछ हो सकता है । अब इसमे कोई बाधा या कठिनाई हीरा को नहीं मालूम हुई । नासिर खाँ साठ वर्ष के हो चुके थे और वह जानती थी कि वृद्ध कामुक लोग सदा स्त्रीजित होते हैं । अतएव उसने मान लिया कि अब मेरा भाग्य-सूर्य फिर से उच्च हो रहा है ।

नासिर खाँ के आगमन के लिए निश्चित समय के दो घण्टे पूर्व ही हीराजान घर की सजावट और अतिथि-सत्कार के लिए किये गए विशेष प्रबन्ध का निरीक्षण करने लगी । आँगन मे लगाये गए रत्न-दीपों की शोभा पर्याप्त नहीं थी, इसलिए उसने नौकरों को डाँटा । दालान में बिछे कालीन को अपने हाथो से ठीक किया। निचले खण्ड के बैठकखाने की सजावट उसे ठीक नहीं लगी तो नौकरो को बुलवाकर उसे ठीक करवाया । चाँदी के पानदान तथा अन्य उपकरणों की दमक अच्छी नहीं थी इसलिए रुष्ट हुई । उपचारादि के लिए नियुक्त दासियों को विशेष निर्देश दिये । इस प्रकार सब कमरों मे जा-जाकर सब व्यवस्था ठीक कराने के बाद स्वयं वासक-सज्जिका बनने के लिए तैयार हुई ।

उस दिन उसने अपूर्व मनोयोग से अपना वेश-विधान किया । स्त्रियों की बुद्धि ने लोकारम्भ से ही स्वतःसिद्ध सौन्दर्य को बढाने के अगणित उपाय खोज रखे हैं । असभ्य लोगों के बीच भी ये उपाय उपलब्ध हैं । मिस्र में पाँच हजार वर्ष पूर्व की ऐसी वस्तुएँ मिली हैं जिनसे मालूम होता है कि वहाँ की स्त्रियाँ उस समय काजल आदि लगाती थी। जिस भारत में कामसूत्र भी ऋषि-प्रोक्त है, उसमें यह विद्या प्राचीन काल से ही प्रचुर प्रचार मे रही है । वाल्मीकि ने ही कहा है कि महर्षि-पत्नी के वरदान से सीतादेवी सदैव पति की दृष्टि में अलंकृत दिखाई देती थी ।

वेश्या-वृत्ति जिनकी कुल-परम्परा थी उनके बीच उन दिनो भी कृत्रिम सौन्दर्य के उपाय-उपकरण आदि पर्याप्त रूप में थे। मुख दमकाने के लिए विशेष सुगन्धित चूर्ण, आँखों की शोभा और विलास बढ़ाने के लिए अंजन, होठों की लालिमा बढ़ाने के लिए विशेष वस्तुएँ, अवयवों को छिपाकर

रखने पर भी उनका आकर्षण बढाने के उपाय, सुगन्ध लेप, प्रत्येक अंग का सौन्दर्य बढाने वाले आभूषण आदि का सुचारु रूप से उपयोग करने मे गणिकाएँ विशेष दक्ष थीं। हीराजान भी इन बातों मे कम प्रगल्भ नहीं थी। बहुत सावधानी के साथ अपने रूप को बनाकर, और समय की विशेषता आदि के अनुरूप वस्त्राभरण पहनकर वह अपने कमरे के बड़े दर्पण के सम्मुख खडी हुई और स्वयं अपने सौन्दर्य का अभिनन्दन करने लगी। वह तो—

"हेम-पटाम्बर कंचुक आदि से अपनी सुकुमारता का प्रकाश बढ़ाती हुई,

"सिन्दूर-तिलक लगाकर, दुर्लभ गन्ध-द्रव्य से शरीर का लेपन करके, कार्मण-चूर्ण से गण्ड-मण्डलो को चमकाती हुई, हीरा-मणि-मण्डित भूषाएँ धारण करके,

"सुन्दर नीलकबरी-भार मे मोहन पुष्प-माल्य लगाकर,

"सर्वथा, सर्वोर्वी सम्मोहनास्त्र बनकर,

"सभी हृदयों को उन्मत्त कर देने का औषध बनकर,

"मन्मथ की माहात्म्य-रूपी माकन्द-मंजरी के रक्त-मांसमय रूप की माध्वीक माधुरी बनकर—[1]

---

1. हेमपट्टाम्बर कूर्पासकादियाल
कोमलिम यकोली कूट्टि कूट्टि,
सिन्दूरपोट्टु तोट्टोरोरो दुर्लभ
गन्धवत् द्रव्यंङ्ङल पूशि पूशि
कार्मणाचूर्णत्ताल पूंकविल कण्णादि—
काम्मट्टु कण पकिट्टे कि येकी
ओमनकारोलि कून्तलिलोरोरो
तूमलर माल्यङ्ङल चूडिचूडी
सर्वथा सर्वोर्वी सम्मोहनास्त्रमाय—सर्व हृदुन्मादनौषधमाय
मान्मथमाहात्म्य माकन्द-मंजरी—मांसळ माध्विका माधुरियाय—

अपने-आप को दिखाई दी। इस प्रकार अपने सौन्दर्य का स्वयं ही अभिनन्दन करती हुई, अपनी ही सौन्दर्य-लहरी में मस्त होकर वह कामुक के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

जब आठ-नौ बजे का समय हुआ, कासिमबेग शीघ्रता के साथ वहाँ आया। दासियों ने उसे हीराजान के पास पहुँचा दिया। हीराजान को देखकर वह चिर-परिचित सैनिक भी उसके सौन्दर्य से चकित हो गया। उसे शंका होने लगी कि यह कोई अप्सरा तो नहीं है। कुछ कहने की शक्ति न होने से वह उसका आलिंगन करने के लिए तत्पर हुआ। परन्तु आज हीरा को यह स्वीकार नहीं था। उसने कहा—"ठहरिये मिर्जा साहब! स्वामी के लिए जो रखा है उसे सेवक को उच्छिष्ट नहीं करना चाहिए। कहिए, क्या समाचार है?"

कासिमबेग ने ठिठककर कहा—"मालिक अभी आ रहे हैं। साथ आना ठीक न समझकर सब प्रबन्ध देखने के लिए पहले आ गया।"

"इस उपकार के लिए मैं कृतज्ञता कैसे व्यक्त करूँ? इतना ही है कि इससे हम दोनों को ही सफलता मिलेगी।"

"मुझे एक ही बात कहनी है। उनसे बहुत अदब और प्रेम के साथ व्यवहार करना। वे बहुत शंकाशील हैं और फिर वृद्ध भी हैं। बाकी सब तो तुम्हारी सामर्थ्य पर निर्भर करता है।"

"आप निश्चिन्त रहिए। अब सब मेरी जिम्मेदारी। आज वे प्रसन्न हो जायँ तो आगे कोई कठिनाई न रहेगी।"

इसी बीच नीचे से एक दासी भागती हुई आई और उसने समाचार दिया कि नासिरखां गृह-द्वार पर आ गए हैं। अकेले ही अश्व से उतरे उस प्रभु के स्वागत के लिए नौकर-चाकर दौड़ पड़े। तब तक हीरा भी वहाँ पहुँच गई।

पहले कासिमबेग को आता देखकर गजराज ने अपनी पुत्री के अपहर्ता और पीथल के प्रति हाथ उठाने के प्रेरक उस दुष्ट पर ही आक्रमण करने का विचार किया, परन्तु वह जानता था कि उसकी सब यातनाओं का हेतु

कासिमबेग का प्रभु शीघ्र ही उस रास्ते से निकलने वाला है। अतएव वह समय की प्रतीक्षा करता हुआ वही चुपचाप खडा रहा। उसको अधिक समय राह देखनी नहीं पडी। कासिमबेग के आने के थोड़े समय बाद ही हीरा के द्वार पर आये अश्वारूढ को देखकर उसका शरीर कॉप उठा। अपना आतिथ्य स्वीकार करके अपनी पत्नी को अपहरण करने वाले उस दुष्ट को देखते ही गजराज ने पहचान लिया। परन्तु वह कौन है यह गजराज नही जानता था। कोई भी हो, अब उसे जीने न देने का निश्चय करके वह तलवार निकालकर आगे बढा। परन्तु इस बीच वह घर के अन्दर जा चुका था। इससे निराश न होकर वह आगे के कार्य के बारे में सोचने लगा। उसने सोचा कि उसी रात को जब वह हीरा के घर से निकलेगा तब अकेला ही होगा और उस समय आक्रमण करना सफल हो जायगा। अश्वारूढ से लडने के लिए स्वयं भी अश्वारूढ़ होना अधिक सुविधाजनक होगा और दो-एक घटे तो अभी वह उस घर से निकलेगा नही, यह सब सोचकर वह कहीं से एक घोडा मॉग लाने के इरादे से दलपतिसिंह के घर गया। गुलाब ने उसे अपना घोडा दे दिया और वह किसी बड़े प्रभु के सेवक के भाव से हीरा के मकान के पास जाकर एक कोने में खड़ा हो गया।

जब आधी रात होने को आई, नासिर खां ने हीरा की कोमल शय्या छोडकर स्वगृह जाने का विचार किया। फारसी मद ने उसे बोधहीन नहीं बनाया था, परन्तु वह मन्द-बुद्धि और शिर-दर्द का कारण तो बना ही था। युवावस्था की सुखानुभोग शक्ति अब न होने से उसे दुःख हुआ और वह निरुत्साह होकर बाहर निकला। द्वार तक आकर विदा करने वाली हीरा का फिर से एक बार आलिंगन करके, शीघ्र ही वापस आने के वादे के बाद वह घोड़े पर चढकर रवाना हो गया।

थोड़ी दूर खड़े गजराज ने भी उसका पीछा किया। दिल-पसन्द वीथी की जाज्वल्यमान दीपमालाओं के कारण वहीं उस पर आक्रमण करना सम्भव नहीं था। उस वीथी से निकलकर जब नासिर खां प्रमुख राजमार्ग

पर पहुँचा तो स्वच्छन्द गति से चलने लगा। विजन होने पर भी राजमार्ग को अपने कार्य के उपयुक्त न समझकर गजराज भी पीछे-पीछे चलता ही रहा। इतने समय में नासिर खां ने समझ लिया कि कोई उसका पीछा कर रहा है। इसलिए वह पीछे देखे बिना ही एक हाथ से तलवार पकड़कर उसे निकालने के लिए तैयार रहा। जब उसने राजमहल छोड़कर अपने महल के मार्ग पर चलना आरम्भ किया तब गजराज अश्व को आगे बढ़ाकर उसके पीछे पहुँच गया। अनेक युद्धों में ख्याति-प्राप्त किया हुआ वह सेनानी तलवार निकालकर अपने प्रतियोगी के सामने खड़ा हो गया। उसने पूछा—"तू कौन है? अपने प्राणों को प्रिय न समझकर मुझ पर आक्रमण करने वाला तू कौन है?"

"मैं कौन हूँ?" गजराज ने चुनौती के स्वर में कहा, "ठीक तरह से देख। इतनी जल्दी मुझे भूल गया?" कहते-कहते ही उसने तलवार चला दी।

नासिर खां की समझ में नहीं आया कि आक्रमणकारी कौन है। परन्तु खड्ग-प्रहार को उसने अनायास ही रोक लिया और फिर दोनों तुल्य शक्ति से युद्ध करने लगे। जैसे-जैसे वह द्वन्द्व-युद्ध बढ़ता गया, नासिर खां की बुद्धि भी उन्मत्तावस्था से मुक्त होती गई। प्रतियोगी असि-प्रयोग में प्रवीण है, यह बात शीघ्र ही समझ में आ गई। कितने भी प्रयत्न करके वह अपने प्रतियोगी को निरायुध नहीं कर सका। तब अपनी दुर्बलता पर उसे सचमुच दुःख हुआ। उसकी समझ में यह बात आने लगी कि वेश्या के घर से आया हुआ वृद्ध और दृढ निश्चय लेकर खड़ा हुआ मल्ल—दोनों यदि युद्ध करें तो अभ्यास और शिक्षा से काम नहीं चलता। अन्ततः उसने फ़ारस में सीखे हुए एक कौशल का प्रयोग करने का निश्चय किया। वह प्रयोग घोड़े को झुकाये बिना करना असम्भव था। अतएव उसने अपने जूतों की कीलों से घोड़े के मर्मस्थान पर प्रहार किया, जिससे घोड़े के अगले पैर झुक गए। उसी समय उसने गजराज के हृदय को लक्ष्य करके वह प्रयोग किया। इस अप्रतीक्षित प्रयोग से घबराकर गजराज ने बचने का प्रयत्न

किया तो उसकी तलवार छूटकर नीचे गिर गई। परन्तु नासिर खां को इससे कोई लाभ नहीं हुआ, उसकी भी तलवार की मूठ ही हाथ में रही, तलवार टूटकर नीचे जा पड़ी।

अब प्राणों की कोई परवाह न करके दोनों घोड़ों पर से कूद पड़े और भीम-दुश्शासन की भाँति मुष्टि-युद्ध आरम्भ हो गया। नासिर खां शरीर-दौर्बल्य के कारण शीघ्र ही हारने लगा। गजराज ने उसे गिराकर, छाती पर बैठकर, गला दबाते हुए पूछा—"क्यों? अब भी याद नहीं आई कि मैं कौन हूँ? मेरा अन्न खाकर मेरी ही पत्नी का अपहरण करने वाले कुत्ते, याद नहीं आती?"

आँखें और जीभ निकाले बोधहीन होते हुए नासिर खां को याद आई। उसको लगा यह मेरा उचित ही दण्ड है। गले से हाथ हटाते हुए गजराज ने पूछा—"बोल! मेरी प्राणेश्वरी कहाँ है? उसको तूने क्या किया?"

नासिर खां ने उत्तर दिया—"मैं तेरे हाथ में आ गया हूँ, परन्तु झूठ नहीं बोल रहा हूँ। तेरी पत्नी मेरे यहाँ से अपहृत हो गई है। मैं उसे पकड़-कर तो लाया था, मगर उसकी किसी तरह से मानहानि नहीं हुई है। जब मैं उसे लाया उस समय वह गर्भवती थी। घोड़े की सवारी से गर्भपात हो गया। उसके बाद वह रोगिणी रही। ठीक हुए थोड़े ही दिन हुए और उसे अपने अन्तःपुर के रुग्णालय से लाने तथा निकाह पढ़ाने के लिए कल का दिन निश्चित किया था। परन्तु गये कल ही वह ग़ायब हो गई। अब मैं नहीं जानता वह कहाँ है।"

गजराज ने कटार हाथ में लिये हुए ही पूछा—"यह सब सच है? अब तेरी जिन्दगी का एक क्षण ही बाकी है। ईश्वर को याद करके सच बोल।"

"छिः! मैं झूठ बोलूँगा?" नासिर खां ने कहा, "मेरी बात पर सन्देह करने का साहस इस साम्राज्य में किसे है? मौत तो सैनिक के लिए सदा तैयार रहती है। मैंने तेरा अपराध किया है, इसका मतलब यह नहीं कि मैं डरपोक हूँ।"

कहते-कहते उसने अपनी छाती पर बैठे हुए योद्धा को गिराने के उद्देश्य से अपने शरीर को ज़ोर से झटका दिया। इस कठिन अवस्था में भी इतनी शक्ति दिखाने वाले दुष्ट को अब जीवित न रखने का निश्चय करके गजराज ने अपनी कटार उसकी छाती मे भोंक दी। अकबर बादशाह के श्वसुर, साम्राज्य के प्रथम सामन्त, बादशाह सलामत के प्रति-पुरुष, उस प्रबल तुर्क ने इस प्रकार अपने भीषण पातकों का ऋण चुकाया।

अपनी प्रतिकार-प्रतिज्ञा को पूर्ण करके गजराज भी मरते हुए शत्रु को एक बार मुड़कर देखे बिना ही उस रंगभूमि से विलीन हो गया।

नासिर खाँ की मृत्यु से शहर भर में कोलाहल मच गया। साम्राज्य के प्रभुजनों मे बहुत बड़ी संख्या तुर्कों की थी और जब उन्होंने सुना कि उनका नेता एक तुच्छ पातकी के समान राजमार्ग पर मारा गया तो वे सब एक दम क्रोधान्ध हो उठे। उन लोगों के असंख्य अंग-रक्षक और अनुचर नगर में थे। उनके बीच यह बात फैली कि पीथल ने ही नासिर खाँ की हत्या करवाई है। इसके कारण बताये गए—पीथल की नासिर खाँ के प्रति शत्रुता और पीथल का बादशाह के विरुद्ध सलीम का साथ देने पर नासिर खाँ का उन्हें रोकना। दानियाल ने भी कहने मे संकोच नहीं किया कि यह सब सच है और उसे मालूम है। नगर के सभी तुर्क एकत्र होकर शाहजादा की आज्ञा लेकर पीथल के हाथ से सब अधिकार छीनने और उन्हे कैद करने पर तुल गए। राजधानी मे स्पष्ट रूप से दो दल बन गए। जहाँ देखो वहाँ शस्त्र सैनिक ही दिखाई देने लगे। सलीम के पक्ष वाले सभी प्रभुजन और हिन्दू राजा पीथल के पक्ष मे थे इसलिए तुर्क सैनिक बहुत-कुछ अत्याचार नहीं कर पाये। परन्तु विश्वास दोनो दलों का यही था कि नासिर खाँ की हत्या पीथल ने ही कराई है।

इस प्रकार सारी जनता के अपने विरुद्ध होने पर भी उस राजपूत

नायक को कोई चिन्ता नहीं हुई। वे जानते थे कि नगर-रक्षा करने वाली सेना उनके ऊपर हाथ नहीं उठायेगी। इसलिए शत्रुओं की शरारतें बढ़ जाने पर भी वे कोई अनुचित काम करने को तैयार नहीं हुए। अपने गुप्तचरों से तुर्क प्रभुओं के उद्देश्य जानने पर उन्होंने शहर की आन्तरिक रक्षा की आवश्यक व्यवस्था कर ली। सैनिक टुकड़ियों को शहर के सब मुख्य स्थानों पर नियुक्त कर दिया, बड़ी-बड़ी तोपों के मुख तुर्क प्रभुओं के महलों की ओर मुड़वा दिये और राजमार्गों पर तथा बादशाह के महल के चारों ओर आवश्यक सैनिक शक्ति सुव्यवस्थित तथा वितरित कर दी। यह सब देखने पर विरोधियों ने जान लिया कि राजधानी को स्वाधीन करने का अर्थ अपना ही नाश कर लेना होगा।

इतना ही बस नहीं था। पीथल ने ढिंढोरा पिटवाकर सारे शहर में घोषणा करा दी कि "बादशाह सलामत के सम्मान्य श्वसुर और प्रभुओं में प्रमुख नासिर खाँ के घातक का पता लगाने का प्रयत्न जोरों से किया जा रहा है। यह महा पातक किसी ने भी किया हो, उसे पकड़कर हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया जायगा। जो कोई उसे पकड़ने में सहायता करेगा या उसके बारे में जानकारी देगा उसे उचित पारितोषिक दिया जायगा। यह कार्य पूर्ण होने तक जनता को शान्त रहना चाहिए।"

सामान्य जनता में पीथल के सम्बन्ध में जो शंका हुई थी वह इस घोषणा से नष्ट हो गई। परन्तु नासिर खाँ के अनुचर, तुर्क सैनिकों और दानियाल शाह के समर्थकों को यह सब ठीक नहीं लगा। फिर भी सेना-शक्ति पीथल के हाथ में होने के कारण बादशाह के आने तक चुप रहने के अलावा उनके पास कोई उपाय नहीं था।

अकबर बादशाह नासिर खाँ को सम्मान की दृष्टि से देखते थे और उसकी राज-भक्ति पर पूर्ण विश्वास रखते थे। नासिर खाँ की पुत्री उनकी पटरानियों में एक थी। उस सुन्दर युवती को राजमहल में लाये और उसके साथ विवाह किये अभी चार-पाँच वर्ष ही हुए थे। लोगों की धारणा थी कि अकबर को उस बेगम से अत्यधिक प्रेम है और इसी कारण नासिर-

खॉ राजधानी मे इतने अधिकार रखता है। तुर्क लोग रक्त का बदला रक्त मे लेने वाले थे और उनके बीच यह प्रतिकार-भावना पीढी-दर-पीढ़ी चलती रहती थी। इसलिए अपने पिता के हत्यारे की हत्या करवाये बिना उस बेगम का शान्त होना सम्भव नहीं था और बादशाह भी अपनी प्राण-प्रिया को कुछ भी करके सन्तुष्ट करेंगे ही। यही सब जनता का विश्वास था।

राजा पीथल की कठोर आज्ञाओ और व्यवस्था के कारण राजधानी ऊपर से शान्त दिखलाई पडती थी। परन्तु वह शान्ति विस्फोटोन्मुख ज्वालामुखी की शान्ति थी। इसी कारण सामान्य जनता के बीच भय और शंकाओ की वृद्धि होती ही गई। पीथल भी जानते थे कि नासिर खॉ का यह असमय निधन उनके लिए आपत्तिकारक है। इसलिए अपने पक्षपातियों की सलाह मानकर वे अधिक समय अपने घर मे ही रहते थे। नगर-रक्षा की आवश्यक व्यवस्था करने और सब स्थानो का निरीक्षण करने जाते तो अपने साथ आवश्यक सेना ले जाते थे। प्राण-भय से उन्होंने यह सब नहीं किया। अपने कारण अनावश्यक संघर्ष अथवा युद्ध होना बादशाह और साम्राज्य के लिए भी अहितकर हो सकता है, इस विचार से उन्होंने सावधान रहना पसन्द किया था।

नासिर खॉ की हत्या के तीसरे दिन मध्याह्न मे जब पीथल अपने अनुचरो के साथ घर मे ही थे, बादशाह का मुद्रावाहक चोबदार उनके पास उपस्थित हुआ। वह सन्देश लेकर आया था कि बादशाह के पास से अत्यावश्यक आदेश लेकर खानखाना साहब नगर-द्वार पर आये है। द्वारपालक सैनिकों ने उनके साथ की सेना को अन्दर आने से रोक दिया है, इसलिए वे द्वार पर ही ठहरे हुए है। खानखाना का आना सुनकर पीथल ने समझ लिया कि बात गम्भीर है। खानखाना साहब बादशाह के विश्वस्त मित्रों मे से एक थे। वे साम्राज्य के प्रधान सेनापति और निजी तौर पर ३००० सेना के अधिकारी भी थे। उनको सन्देशवाहक बनाने का ही अर्थ है कार्य की गम्भीरता। इसलिए पीथल ने शीघ्रातिशीघ्र अपनी एक छोटी-सी अंगरक्षक सेना के साथ नगर-द्वार के लिए प्रस्थान किया।

विविध प्रकार के विचारों से उनका हृदय अस्थिर हो रहा था। परन्तु मुख निर्विकार और अक्षोभ्य हृद जैसा दिखलाई पडता था।

गोपुर-द्वार पर पहुँचते ही अश्व से उतरकर, अग-रक्षकों को वहीं खड़े रहने की आज्ञा देकर दलपतिसिंह के साथ वे खानखाना के पास पहुँचे। राजा का आगमन सुनकर खानखाना ने स्वयं तम्बू से निकलकर, आधे रास्ते मे आकर उनका स्वागत किया। परस्पर भेट और अभिवादन के पश्चात् पीथल ने प्रश्न किया—"महानुभाव बादशाह सलामत सकुशल तो हैं?"

"सकुशल हैं। वे परसो रवाना होकर एक सप्ताह के अन्दर यहाँ पहुँच जायँगे।"

"आपकी विशेष कुशल पूछने की तो आवश्यकता ही नही है। इतनी लम्बी यात्रा के बाद भी मालूम होता है अपने महल के उपवन से सैर करके आ रहे है। यात्रा मे कोई असुविधा तो नही हुई?"

"नहीं। आप भी सकुशल हैं न?"

"शारीरिक कुशल तो है। परन्तु यहाँ की स्थिति कुछ कठिन होती जा रही है। आप अब वापस आ गए हैं। बादशाह सलामत भी आ रहे हैं। अब सब ठीक हो जायगा। आप मेरे प्रिय मित्र हैं। आपसे मिलने से सदा ही प्रसन्नता होती है। फिर भी आज मिलने से जितना आनन्द हुआ उतना इसके पहले कभी नही हुआ था।"

"ऐसा क्यों?"

"आप बादशाह सलामत का सन्देश लेकर आये है। नगर-रक्षा का भार मुझ पर छोडकर जब से वे गये हैं तब से मुझे एक दिन की भी शान्ति नहीं मिली। इसके बारे में क्या कहूँ? अब बादशाह के प्रियतम सैन्याधीश ही यहाँ आ गए हैं तो मेरा भार तो कुछ कम हो ही जायगा।"

"आप सचमुच मेरे मन का भार बहुत कम कर रहे हैं। मुझे आप से जो कहना है वह अत्यन्त गुप्त है, इसलिए आप मेरे तम्बू में आने की कृपा करें।"

दोनों खानखाना के लिए लगाये गए नये तम्बू में चले गए। चारों ओर पहरा देने वाले सैनिकों और अनुचरों को दूर करके खानखाना ने कहना शुरू किया—"मेरे मित्र पीथल ! मेरी बातों से आपको दुःख होगा, यह मैं जानता हूँ। मेरी प्रार्थना इतनी ही है कि मुझे केवल बादशाह का आज्ञापालक समझकर मेरा अपराध क्षमा करें।"

पीथल ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"बादशाह की आज्ञा कुछ भी हो, मैं उसे गलत नहीं समझता हूँ। न ही उसके विपरीत कुछ करता हूँ, यह आप जानते हैं। फिर निस्संकोच उनकी आज्ञा का पालन कीजिए।"

"राजधानी का सर्वाधिकार ले लेने के लिए ही बादशाह ने मुझे यहाँ भेजा है। उनका फरमान यह है—पढ़िए।"

पीथल ने कागज हाथ में लेकर कहा—"इस बारे में मुझे कोई सन्देह नहीं है। आप की बात ही मेरे लिए मान्य है।"

"तो भी पढ़िये। बादशाह की मुद्रा से युक्त होने के कारण आपका पढ़कर देखना आवश्यक है।"

पीथल ने फरमान को सावधानी से पढ़ा। सक्षेप में, हुजूर माबदौलत जलालुद्दीन अकबर बादशाह का हुक्म था—"हमने आगरा से आते समय राज-कार्य चलाने का जो प्रबन्ध किया था वह सब इससे रद्द किया जाता है। राजधानी मे हमारे प्रतिनिधि के रूप मे सभी काम करने के लिए अमीर-उल-उमरा आसमनजाह खानखाना बहादुर को इस फरमान के द्वारा नियुक्त किया जाता है। शाहजादा, उमरा, प्रभुजन आदि सभी को खान-खाना के अधीन रहना चाहिए।"

फरमान पढने के बाद पीथल ने कहा—"मित्रवर ! अपना सारा अधिकार इसी क्षण मैं आपको सौंप रहा हूँ। यह और किसी को नही सौंपता, इसकी मुझे प्रसन्नता भी है।"

खानखाना ने कहा—"महाराज पृथ्वीसिंह राठौर ने इतने हर्ष के साथ अधिकार त्याग दिया इसमे मुझे कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु इससे मेरा दुःख कम नहीं हुआ है। बादशाह की इच्छा है कि तत्काल आप उनके

नगरकेच राजमहल में सुखवास करें।"

इन शब्दों का यथार्थ आशय भी पीथल ने समझ लिया। केवल अधिकार से हटाने की नहीं, उनको बन्धन मे रखने की भी आज्ञा बादशाह ने दी है। स्वाभिमान के अवतार उस पुरुषसिंह को इस अन्यायपूर्ण आज्ञा से असामान्य क्रोध हुआ। परन्तु उसका कोई लक्षण चेहरे पर न दिखाकर उन्होने कहा—"तो मैं कैदी बन गया हूँ—है न ?"

"महाराज! बादशाह का सुखवास स्थान नगरकेच राजमहल कारागार कब से बन गया? मेरी प्रार्थना इतनी ही है कि बादशाह के उत्तम मित्र की भाँति पूरी स्वतन्त्रता के साथ आप उस राजमहल मे निवास करें। राजधानी मे आपके इतने शत्रु हैं, इसलिए आपकी प्राण-रक्षा के उपाय के रूप में ही बादशाह ने यह व्यवस्था सोची है। उन्होने यह भी सुना है कि एक रात को कुछ आक्रमणकारियो ने आपकी हत्या का प्रयत्न भी किया था। इसलिए आपकी रक्षा के लिए उन्होंने यह उपाय किया है।"

पीथल ने अपने मित्र की नीति-निपुणता का अभिनन्दन किया—"वाह खानखाना साहब! साम्राज्य के प्रथम राजतन्त्रज्ञ आप यो ही नहीं कहलाते हैं। मुझे नगरकेच मे रहने को कहने का अर्थ हम दोनों ही जानते हैं। इसके बारे मे तर्क किसलिए? बादशाह सलामत एक सप्ताह के अन्दर आ रहे हैं, इसलिए यह कोई बडी बात भी नहीं है। मैं एक बात पूछूँ? मेरे शत्रुओं ने क्या-क्या आरोप मुझ पर लगाये हैं?"

खानखाना हँस दिए। "महाराज! आप अत्यन्त धीर और वीर पुरुष हैं। एक बड़े राजवंश की सन्तान है। व्याजनीति आप जानते नहीं। इन द्विजिह्वों की कपट-विद्या जानकर क्या करेंगे? जानने से क्या लाभ?"

"फिर भी, मेरे बारे में बादशाह के पास क्या-क्या गया यह जानना तो चाहिए! किसने कहा, यह मत कहना।"

"बहुत-कुछ लिखा था। मुख्य बात यह थी कि आप आगरा सलीम शाह के हाथों सौंपने जा रहे हैं।"

पीथल हँस पड़े—"शायद इसीलिए सलीमशाह एक तोप भी चलाए

बिना हटकर चले गए।

"हाँ, आप हँस सकते हैं। परन्तु बादशाह को अब तक यह बात नहीं मालूम कि सलीम चले गए हैं। मुझे भी मार्ग में इसका पता चला। बादशाह यह समाचार पाने के पहले ही रवाना हो चुके होंगे।"

"अच्छा, और?"

"शेख़ मुबारक को आपने जहर दे दिया। यदि आपने ऐसा किया तो मैं कहूँगा कि आपने साम्राज्य की रक्षा की। सचमुच वह दुष्ट शेख ही बादशाह को उलटी पट्टी पढाता था। उसकी दुर्बुद्धि के ही कारण बादशाह ने इस्लाम धर्म को भी त्याग दिया। उस नारकीय आत्मा को अपने कर्मों के फल-भोग के लिए रवाना करने में आपने सहायता की तो उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ।"

"और?"

"आप अन्तःपुर-सम्बन्धी कार्यों में भी हस्तक्षेप करते हैं। सब मिला-कर, दानियाल शाह और नासिर खाँ को आपसे बाधा-ही-बाधा है।"

"नासिर खाँ की मृत्यु के लिए मैं अपराधी नहीं बनाया गया?"

खानखाना ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या? नासिर खाँ मर गया? कैसे? कब?"

पीथल ने कहा—"ओहो! आपको नहीं मालूम? दो दिन पहले नासिर खाँ का शरीर राजमार्ग पर पडा मिला। एक कटार छाती में घुसी हुई थी। अब तक घातक का पता नहीं चला। उस रात को वह गणिका हीरा के घर गया था। आधी रात को लौटा। ऐसा जान पडता है, मार्ग में किसी शत्रु ने उसकी हत्या कर डाली। उसके बारे में भी मेरा ही नाम फैलाया गया है। तुर्क प्रभुजन और दानियाल शाह मेरा सर लेने पर तुले हुए हैं।"

इस समाचार से खानखाना को बहुत दुःख हुआ। नासिर खाँ उनका परम प्रिय मित्र था। बादशाह के साथ के सम्बन्ध के कारण वह खानखाना का सम्मान-पात्र भी था। उन्हें केवल इसी कारण दुःख नहीं था, उसकी

मृत्यु से राजकार्यों में गड़बड़ी होने का अन्देशा भी था और दानियाल शाह के सहायकों में दो व्यक्ति इतने पास-पास मारे गए, यह सब क्या संयोगवश ही हो गया ? उत्तराधिकार दानियाल शाह को देने का आग्रह सबसे अधिक इन दोनों का ही था। उसमें बुद्धि शेख मुबारक की थी, प्रभुओं के साथ सम्पर्क स्थापित करके आवश्यक सैन्य-शक्ति संगठित करना नासिर खाँ का काम था। बादशाह भी उसी पक्ष की ओर झुके हुए थे। सलीम ने जो विद्रोह का झंडा उठाया उसका कारण भी यही था। इसलिए यद्यपि शेख मुबारक अपनी मौत मरा और नासिर खाँ उसी समय घातक की कटार का लक्ष्य बना, यह सब सलीम के पक्ष को बल पहुँचाने वाला और बादशाह के पक्ष को दुर्बल करने वाला तो था ही।

खानखाना ने कहा—"महाराज ! यह तो बड़े दुःख का समाचार है। नासिर खाँ में कोई भी बुराइयाँ रही हों, वह एक शूर और विश्वासपात्र राजसेवक था। इस समय उसकी मृत्यु अनेक मुसीबतों का कारण बन सकती है।"

पीथल ने उत्तर दिया—"यही मेरा भी विचार है। क्या आप भी उन तुर्कों के समान मानते हैं कि उसे मैंने मरवाया है ? क्या आप समझते हैं कि मैं इतना मूर्ख हूँ ?"

"ऐसा मैंने सोचा भी नहीं। आपको लगता है कि मैं आपके बारे में इस प्रकार का सोच सकता हूँ ? परन्तु यह भी सुन लेंगे तो बादशाह क्या सोचेंगे इसका मुझे भय है। आप जानते हैं बाजार की गप्पें ही अन्तःपुर में प्रमाण बनती हैं। विवेकी अकबर को भी वे साहसी न बना दें।"

"एक बात और पूछूँ ? मुझ पर लगाये गए इन आरोपों पर बादशाह ने विश्वास कर लिया ?"

"आप ऐसा क्यों पूछते हैं ? आप बादशाह सलामत के परम प्रिय मित्र हैं। आपके बारे में इन बातों पर वे कैसे विश्वास कर सकते हैं ? और, यदि विश्वास किया होता तो क्या उनकी आज्ञाओं का रूप यही होता ?"

"तो फिर मुझे बन्धन में क्यो रखना चाहते हैं ?"

"बन्धन ? यह शब्द छोड दीजिए। मैंने कहा न ? आप ही की रक्षा के उद्देश्य से उन्होंने यह प्रबन्ध किया है। आप ही सोचिए न, जिन्हें वे अपना गुरु मानते थे और जिनकी इस रूप में वे आराधना करते थे, उनकी हत्या आपने की, ऐसा माना होता तो दण्ड क्या केवल बन्धन ही होता ?"

पीथल को भी लगा कि यह बात सच है। यदि बादशाह के मन मे शंका भी पैदा हो गई होती तो दण्ड उग्र होता। जब पीथल के भाव-विशेष से मालूम हो गया कि उन्हें मेरी बात पर विश्वास हो गया है तो खानखाना ने फिर कहा—"यथार्थ मे सलीम शाह के व्यवहार से बादशाह को असीम दुःख हुआ है। उन्हें कभी यह भय नहीं था कि आप राजधानी उनके सुपुर्द कर देंगे। परन्तु उनका खयाल यह है कि सलीम का उद्देश्य केवल राजधानी पर अधिकार करना नहीं, पास में बडी सेना होने और शाबास खॉ का खजाना हाथ मे आ जाने के कारण उसने सिंहासन ही ले लेने का आयोजन किया होगा। कई उमरा और मौलवी आदि सलीम को इसकी प्रेरणा देते रहते हैं। इसलिए प्रत्यक्ष दिखाई देता है उससे अधिक उपद्रव सलीम से हो जायगा, यही सोचकर बादशाह सलामत वापस आ रहे हैं, आपके ऊपर अविश्वास के कारण नहीं।"

"खैर, सो तो शीघ्र ही मालूम हो जायगा। अब मुझे क्या करना चाहिए आप ही बताइए।"

"मित्रवर ! आप उचित-अनुचित को जानने वाले हैं और राज्यकार्यों से परिचय भी रखते हैं।"

यह प्रस्तावना सुनकर पीथल ने अनुमान किया कि अभी और कुछ अनिष्ट बाकी है। उनके विचार खानखाना से छिपे हुए भी नहीं थे। खानखाना ने कहा—"बादशाह का और कोई आदेश नहीं है। आप मेरे प्राण-मित्र हैं। मैं आपको आदेश कैसे दे सकता हूँ ? इसलिए आप ही निश्चय कीजिए। यदि आप शहर में ही रहना पसन्द करते हैं तो मेरे अतिथि बनकर रह सकते हैं और यदि अपने ही घर में रहना चाहते हैं

तो भी कोई आपत्ति नहीं। मुझे भी अपना अतिथि बनाने में आपको कोई आपत्ति नहीं होगी, मैं जानता हूँ। यदि शहर में रहने की इच्छा नहीं है तो नगरकेच-राजमहल में सुख से निवास कर सकते हैं।"

इन शिष्टाचारमय शब्दों के अर्थ की व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। कहीं भी रहें, पीथल स्वतन्त्र नहीं होंगे, यह समझकर पीथल ने उत्तर दिया—"खाँ साहब, आपके प्रेमपूर्ण शब्दों का अर्थ मैं अच्छी तरह समझ गया। मेरे घर में आपको पूरी स्वतन्त्रता है, आप जानते हैं। आपको अपना अतिथि बनाना अपना सम्मान ही मानूँगा। परन्तु उसका समय यह नहीं है। इसलिए नगरकेच में ही मैं एकान्त-वास करूँगा। मेरे भृत्यों और अनुचरों के साथ जाने में आपको कोई आपत्ति तो न होगी?"

"बादशाह की आज्ञा है कि उसे आप अपना ही घर मान लें। जितने भी सेवकों को चाहें ले जा सकते हैं। परन्तु बादशाह के भवन में प्रभुजनों के अगरक्षक तो प्रवेश नहीं कर सकते न? वहाँ की रक्षक-सेना को आपकी आज्ञानुवर्तिनी बनने की आज्ञा दिये देता हूँ।"

"तो अब देरी नहीं करूँगा। आपकी अनुमति हो तो अपने घर के लिए एक सन्देश अपने एक व्यक्ति के द्वारा भेज दूँ। मेरे साथ आये हुए राजकुमार दलपतिसिंह को जरा बुला दें।"

दलपतिसिंह को बुला दिया गया। पीथल ने उससे कहा—"तुम शीघ्र ही नगर में वापस जाओ और मेरे निजी नौकरों को आज्ञा दो कि आवश्यक वस्त्रादि सामान लेकर शीघ्र ही नगरकेच महल में पहुँच जायँ। मेरी अगरक्षक सेना को मेरे वापस आने तक के लिए छुट्टी दे देना और दीवानजी से कहकर सब को एक-एक मास का वेतन विशेष रूप से पेशगी दिला देना।"

दलपतिसिंह स्तब्ध खड़ा रह गया। पीथल ने फिर कहा—"अब से ये ही आगरा में राज-प्रतिनिधि हैं। मैं थोड़े समय के लिए राजधानी में नहीं रहूँगा।"

दलपतिसिंह ने कहा—"मैं भी यदि आपकी सेवा मे आ सकूँ तो ?"

"नहीं, अभी सम्भव नही है।"

खानखाना ने कहा—"महाराज ! इस युवक को कुछ काल के लिए मेरे पास छोड़ देने में कोई आपत्ति है ?"

पीथल—"खाँ साहब ! यह युवक मेरे साथ काम करता है, फिर भी मेरा नौकर नही है। तुल्यस्थानिक राजपूत राजकुमार है। स्नेह के कारण मेरे साथ रह रहा है। इसको किसी के हाथ मे देने का अधिकार मुझे नही है।"

खानखाना ने दलपतिसिंह को एक परीक्षक की दृष्टि से देखा और फिर कहा—"राजकुमार ! महाराजा और मैं भाई-भाई हैं। उनके आने तक आप मेरे साथ रहना पसन्द करेंगे तो इससे अधिक आनन्द की बात मेरे लिए और क्या होगी ?"

दलपतिसिंह ने उत्तर दिया—"हुजूर ! आपकी आज्ञा मेरे लिए अनुग्रह ही है। परन्तु मुझे अपने कुछ काम करने हैं। इसलिए इस समय मैं क्षमा चाहता हूँ। पृथ्वीसिंह महाराजा के मित्रों को मैं अपना स्वामी ही समझता हूँ। इस समय आपका आज्ञापालक बनने के अवसर का लाभ मैं नही उठा सकता, यह मेरा दुर्भाग्य है।"

खानखाना—"शाबाश ! फिर भी जब समय मिले, मेरे पास आया करो !"

दलपतिसिंह ने राजा पीथल के चरण स्पर्श किये। इसके बाद खानखाना से भी अनुमति लेकर वह शहर की ओर चल दिया। उन दोनो मित्रों को एक-दूसरे से विदा लेना कठिन हो रहा था। कुछ समय चुप रहने के बाद पीथल ने कहा, "मैं जानता हूँ, आपके पास बहुत बड़ा काम है। मेरे सम्बन्ध का काम तो हो गया, परन्तु दानियाल शाह को समझाकर अधिकार ले लेने का काम आपको अनिष्टकारक ही रहेगा। अच्छा ! तो अब मुझे आज्ञा दीजिए। नगरकोट को मेरे साथ किसे भेज रहे हैं ?"

खानखाना ने गद्गद् होकर उत्तर दिया—"महानुभाव पीथल ! आपके स्वभाव की महानता का मैं कैसे अभिनन्दन करूँ ? आज तक हम मित्र थे। आज से आप मेरे बड़े भाई के समान आदर और प्रेम के अधिकारी बन गए हैं। इस बात पर दुःख नही करना। मुझे मालूम है कि बादशाह की ये आज्ञाएँ आपके आत्माभिमान को विक्षत करने वाली है। परन्तु यह सब थोड़े ही दिनो की बात है। बादशाह के दरबार मे आपके कई प्रबल मित्र मौजूद हैं, यह आप भूलिए नहीं।"

दोनों एक दूसरे से गले मिले और पीथल विदा हो गए।

सलीम की युद्ध की तत्परता का समाचार पाने पर अकबर शीघ्र ही आगरा लौट पड़े। जितने समय वे दक्षिण में रहे उतने में ही उन्होंने बहादुरशाह को हराकर असीरगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया था। उधर, अहमदनगर खानखाना के प्रताप के सामने झुक गया। इस प्रकार जब वे विजयो की खुशी मना रहे थे तभी मुबारकशाह की मृत्यु और सलीम के युद्ध-प्रयत्नो का समाचार उन्हें मिला था। उस समय अकबर की उम्र लगभग उनसठ वर्ष की थी। शरीर भी दुर्बल होने लगा था। उत्तराधिकार के बारे में जो विवाद हुआ उसे उन्होंने गौरवपूर्ण नहीं समझा। परन्तु उनको यह भी मालूम था कि शाहजादाओं के साथ सामन्त लोग भी उनकी मृत्यु की राह देखते हुए दो दलों में विभक्त हो चुके हैं।

वृद्धावस्था में अकबर ने दीन-इलाही धर्म की जो स्थापना की वही इस विभाजन का आधार बनी। प्रमुख मुसलमान प्रभुओं और मौलवी-मुल्लाओं के दिलों में बादशाह के इस धर्म-परिवर्तन और प्रचार ने घोर द्वेष पैदा कर दिया। बादशाह तो यह चाहते थे कि इस्लाम से भिन्न एक ऐसे धर्म का प्रचार कर दिया जाय जिसकी छाया में सब लोग आ सकें, परन्तु मुसलमानों ने उसे उनका धर्म-विरोध समझा। इस नये मत में अकबर

के प्रधान उपदेशक शेख़ मुबारक थे। उनकी और उनके पुत्र अबुलफजल की इच्छा थी कि अकबर के बाद दानियाल शाह ही बादशाह बनें। उन्हें भय था कि दीन-इलाही से विरोध रखने वाले सलीम के बादशाह बनने से अकबर का आदर्श विस्मृत हो जायगा। प्रभुजनों में अधिकतर लोग सलीम के समर्थक थे। परन्तु बादशाह सलीम के यथार्थ अधिकार की पूर्ण अवगणना करने के लिए अब तक तैयार नहीं हुए थे, इसीलिए कोई निश्चय नहीं हो रहा था।

सलीम ने बादशाह के एक बड़ी सेना के साथ दूर दक्षिण में होने का यह समय बल के आधार पर निश्चय करा लेने के लिए उपयुक्त समझा। उसकी महत्त्वाकांक्षा यह भी थी कि यदि राजधानी पर अधिकार हो जाय तो सिंहासन पर भी अधिकार करके स्वयं बादशाह बन बैठे। परन्तु पीथल की चातुरी और स्वामिभक्ति के कारण वह सम्भव नहीं हुआ। इससे लोगों ने मान लिया कि गृह-युद्ध समाप्त हो गया है। परन्तु बादशाह की दीर्घ-दृष्टि ने सलीम के उद्योग का मर्म भाँप लिया।

खानखाना को अपना प्रति-पुरुष बनाकर अकबर ने एक छोटी-सी सेना के साथ आगरा के लिए प्रयाण किया। पूर्ववत् स्थान-स्थान पर ठहरते हुए और सब स्थानों पर के समाचार लेते हुए आने के बदले वे सीधे ही आगरा की ओर बढ़ते गए। धारानगर के पास माण्डू में उनको समाचार मिला कि सलीम आगरा के ऊपर आक्रमण न करके इलाहाबाद की ओर चला गया है। वे जानते थे कि जो इलाहाबाद में रहेगा उसके अधीन सारा गंगा-तट का प्रदेश हो जायगा। इन विचारों और चिन्ताओं से व्याकुल होकर वे राजधानी में पहुँचे।

अपनी प्रजा का आदर-मान स्वीकार करने के बाद वे राजधानी में आये तो चार-पाँच दिन इन विचारों में ही बीत गए कि सलीम के विरुद्ध साम-दाम आदि चारों उपायों में से किस उपाय का अवलम्बन किया जाय। अन्त में उन्होंने बिगड़े हुए पुत्र को क्रोध का अधिक कारण न देने के उद्देश्य से उसे बंगाल का सूबेदार नियुक्त करते हुए आज्ञा-पत्र भेज दिया।

सलीम ने इसका उत्तर अपने को सम्राट् घोषित करके दिया। इससे भी अकबर के धैर्य की सीमा न होती हुई देखकर उसने अपने नाम से मुद्रित की हुई स्वर्ण-मुद्राएँ उनके पास भेंट के रूप में भेज दीं। बादशाह को यह उपदेश देने वाले बहुत थे कि सलीम ने खुल्लमखुल्ला विद्रोह का झण्डा उठाया है तो उसे दण्ड देना ही उचित है। परन्तु बादशाह कोई अविचार-पूर्ण कार्य करने के लिए तैयार नहीं हुए। उनके इस प्रकार शान्त रहने के अनेक कारण अन्तःपुर में ही मौजूद थे, जिनमें मुख्य था उनकी वृद्धा माता हमीदाबानू बेगम का आग्रह। अकबर कोई भी काम—भले ही वह कितना भी गम्भीर क्यों न हो—अपनी माता की आज्ञा के विपरीत नहीं करते थे। सलीम उनको बहुत प्यारा था और उन्होंने उसके विरुद्ध किसी हालत में सेना भेजने को मना कर दिया। इसलिए बादशाह अन्य उपाय खोजने के लिए बाध्य हो गए।

सलीम के झुकने का किसी प्रकार कोई लक्षण न देखकर अकबर ने अपने मित्र अबुलफ़ज़ल को बुलाया। दक्षिण का अधूरा काम पूर्ण करने के लिए जिस प्रभु को वे वहाँ छोड़कर आये थे उसका बुलाया जाना सुनकर लोगों को आश्चर्य हुआ। सभी जानते थे कि अबुलफज़ल प्रसिद्ध पण्डित, कुशाग्र बुद्धि और राजनीति-निपुण थे। साथ-साथ लोग यह भी जानते थे कि वे सलीम के विरोधी पक्ष में प्रमुख हैं। इन सब बातों से यह अफ़वाह फैलने लगी कि अब बादशाह के धैर्य का अन्त हो गया है और अबुल-फज़ल को सलीम के विरुद्ध युद्ध के लिए भेजा जायगा। परन्तु यह किसी को नहीं मालूम था कि अबुलफज़ल को बुलाने की आज्ञा जिस दिन निकली उसी दिन बादशाह की पटरानियों में अति आदरणीय सलीम बेगम ने भी गुप्त रूप से इलाहाबाद को प्रस्थान किया।

बादशाह को राजधानी में आये तीन मास व्यतीत हो गए किन्तु नगर-केन्द्र में एकान्तवास करने वाले महाराज पृथ्वीसिंह के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं हुआ। राजगुरु शेख मुबारक की मृत्यु के कारण सर्वत्र शोकाचरण ही चल रहा था। कहीं कोई उत्सव-समारोह नहीं होता था। प्रतिदिन का

दरबार भी जब आवश्यक हो तभी हुआ करता था। खानखाना आदि मित्रों से आवश्यकतानुसार भेंट-मुलाकात होती थी, परन्तु साधारण लोगों को मिलने की अनुमति नहीं थी। बहुत समय बादशाह अन्तःपुर में ही रहते थे। सामान्य जनता ने इसे सलीम के विद्रोह से हुआ दुःख माना। परन्तु बादशाह के चेहरे पर विशेष दुःख प्रकट नहीं होता था।

सलीम ने अपने पिता की धमकियों और नय-उपायों दोनों की परवाह नहीं की। उसने इलाहाबाद को अपनी राजधानी बनाकर बादशाह के अनुरूप आडम्बर और पदवियों के साथ पिता के विरुद्ध ही शासन करना आरम्भ कर दिया। अपने अधीन देशों में अकबर का नाम न चलाने और उसके बदले अपना स्वयंवृत नाम 'जहाँगीर' चलाने का आदेश भी उसने जारी कर दिया। आसपास के प्रदेशों से कर वसूल करने और वहाँ की रक्षा आदि की व्यवस्था करने के लिए उसने अपने कर्मचारी नियुक्त किये। सब किलेदारों को इस आशय का फरमान भेज दिया गया कि आगे से वही बादशाह है और उसकी आज्ञाएँ मानना चाहिए। पूर्वी प्रदेश और वहाँ के कर्मचारियों ने उसका साथ दिया।

इस सबसे भी बादशाह को अस्थिर होते न देखकर सलीम ने सेना को संगठित करना शुरू किया। ऐसे ही समय उसकी दादी का सन्देश लेकर सलीमा बेगम इलाहाबाद पहुँचीं। सलीम अपनी माँ के समान ही इनका भी आदर और प्यार करता था। उसने उनकी आज्ञा के अनुसार सब-कुछ करना स्वीकार किया। उनके मुख से यह सुनकर कि पिता को उसके ऊपर जरा भी क्रोध नहीं और यदि वह सामने जाकर क्षमा-याचना करेगा तो वत्सल और दयावान बादशाह उसे स्वीकार कर लेंगे तो सलीम को बहुत आनन्द हुआ। वास्तव में यह एक विचार ही कि मेरे अधिकार की अवगणना करके बादशाह दानियाल को उत्तराधिकार देने वाले हैं, सलीम की सब विद्रोही प्रवृत्तियों का कारण बना था। फिर वह सोचने लगा कि मेरे अविवेक से समग्र-प्रताप बादशाह को क्रोध तो हुआ ही होगा, इसलिए यदि क्षमा माँग भी लूँ तो भी कठिन दण्ड तो वे देंगे ही।

इसलिए यदि बचना हो तो उनके पास से दूर रहना ही अच्छा है। इसी विचार के परिणामस्वरूप उसने इलाहाबाद में स्थायी रूप से रहने का निश्चय किया था। अब उसने सुना कि पिता का क्रोध बहुत अधिक नहीं है तो उसे सान्त्वना मिली। फिर भी उसका दुरभिमान तो सिर उठाये ही था। पहले ही सब-कुछ मंजूर कर लेना ठीक न समझकर और अपना साथ देने वाले सैनिकों तथा अन्य लोगों की रक्षा के खयाल से भी उसने बेगम की सलाह से बादशाह को एक निवेदन भेजा। उसमें उसने लिखा कि "सर्व लोकाश्रय, ईश्वर के प्रति-पुरुष सार्वभौम बादशाह सलामत से निवेदन है कि अज्ञता और अविवेक के कारण पुत्र जो अविनय कर गया उस सब के लिए वह क्षमा चाहता है। आगे पिता की आज्ञा मानकर, साम्राज्य के नियमों का पालन करके ही रहने की प्रतिज्ञा करता है।" इस प्रकार अति नम्रता से प्रारम्भ किये हुए पत्र का स्वर धीरे-धीरे बदलता गया। उसके साथ अनेक उमरा लोग और राजा-महाराजा थे। उनको स्थान-मान और पद-दान किया गया था। उन सब को स्थायी रूप से स्वीकार कर लेने की प्रार्थना की। वह जानता था कि राजाधिकार में हस्तक्षेप करके जो-कुछ किया गया है उसे उसके कठोर अनुशासन-प्रिय पिता कभी स्वीकार नहीं कर सकते। यह प्रार्थना न्याय से परे भी थी। परन्तु सलीम ने यह सोचकर यह बढ़ी-चढ़ी प्रार्थना की थी कि यदि आकाश पर बाण चलाएँ तो वह वृक्ष-शिखर में तो लगेगा ही। वास्तव में उसकी इच्छा इतनी ही थी कि अपना साथ देने वालों को बादशाह दण्ड न दे। इस पर भी वह रुका नहीं; माँगते ही हैं तो सभी क्यों न माँग लें? अतएव, द्रव्य की कमी बताकर यह प्रार्थना भी की कि आगरा पहुँचकर पिता के चरण-स्पर्श करके अनुगृहीत होने के लिए मार्ग-व्यय आदि के हेतु कोई पचास लाख रुपये भी भेज दें। शाबास खाँ के पाँच करोड़ रुपये ले लिये जाने की बात बादशाह जानते थे और सलीम को आशंका थी कि वे उन रुपयों का हिसाब अवश्य माँगेंगे। इससे बचने के लिए ही रुपयों की यह प्रार्थना की गई थी। परन्तु यहाँ भी उसकी शरारत का अन्त नहीं हुआ। अन्त में उसने लिखा

कि दानियाल और मेरे बीच शत्रुता है इसलिए यदि उसके रहते हुए मैं आऊँगा तो कई प्रकार के झगडे और युद्ध भी हो जाने की आशंका होगी। इसलिए उस शाहजादे को दक्षिण में उसके मित्र अबुलफजल के पास भेज देना उत्तम होगा। इस सूचना को अति विनम्र शब्दों में, अनेक क्षमा-प्रार्थनाओं के बाद उसने लिखा।

पत्र पढने पर बादशाह के क्रोध की सीमा नहीं रही। स्वतः धैर्यवान होते हुए भी भारत-साम्राज्य में अनियन्त्रित अधिकार रखने वाले वे किसी की चुनौती सहन नहीं कर सकते थे। उन्हें लगा कि उस पत्र का प्रत्येक शब्द उनके पौरुष को चुनौती दे रहा है। साथियो को सम्मान देने और यात्रा-व्यय के लिए रुपये माँगने की बात अन्यायपूर्ण होने पर भी असह्य नहीं थी। परन्तु दानियाल को दूर भेज देने की बात एक प्रार्थना नही आज्ञा जैसी उन्हे प्रतीत हुई। उसके पहले की सब बातें दो तुल्य राजाओं के बीच सन्धि जैसी हो सकती थीं, परन्तु अन्तिम बात पराजित प्रतियोगी पर विजयी राजा के शासन जैसी उन्हें लगी। सलीम और उसके साथियों को एकदम भस्म कर देने योग्य दावानल उनके हृदय में प्रज्वलित हो उठा। उन्होंने तत्काल आगरा की सारी सेना को युद्ध-सन्नद्ध करने की आज्ञा दे दी। धृष्ट-पुत्र को एक पाठ पढाने की ही उन्होंने शपथ ले ली।

परन्तु महाराजाधिराजाओं की उग्र प्रतिज्ञाएँ भी मातृस्नेह के सामने पिघल जाती हैं। अपना निश्चय अन्तःपुर मे बताने की इच्छा से वे वहाँ पहुँचे। उनके अवलोकन और मुख-भाव आदि से अन्तःपुर की परिचारिकाएँ और वहाँ के रक्षक हिजड़े भाग खड़े हुए।

अकबर का अन्तःपुर एक छोटा-सा शहर ही था। उनकी पत्नियों के रूप में विभिन्न देशों से लाई गई पाँच हजार से अधिक स्त्रियों के रहने के लिए बनी प्रासादावली, उपवन, विनोद-स्थल आदि राजोचित वैभव और शिल्प-चातुर्य के प्रदर्शक थे। पटरानियों के रत्नजटित महल एक ओर थे। शेष रानियों के निवास के लिए मंगल-महल और जुम्मा-महल नाम के दो विशाल भवन थे। बादशाह मंगल और बुध को इन महलों में

जाया करते थे, इसलिए इनके ये नाम पड़े थे। इनके अतिरिक्त, आर्मीनिया, चीन, जार्जिया, और यूरोपीय देशों से लाई गई स्त्रियों के रहने के स्थान को बॅगला महल कहा जाता था।

इस समय अकबर अपनी मुख्य रानी जोधाबाई से मिलने के लिए अन्तःपुर मे आये थे। अम्बर की राजपुत्री यही क्षत्रिय रानी सलीम की माता थीं। अकबर के अन्तःपुर मे भी ये अपने धर्म का निर्बाध पालन करती थीं। अनेक रानियो के होते हुए भी अकबर इनको ही अपनी वंश-प्रतिष्ठा का आधार मानते थे। इस समय इनके पुत्र का यह विष-लिप्त अस्त्र जैसा पत्र पढकर सुनाने और उसे दण्ड देने की सम्मति लेने के लिए ही वे उनके पास आये थे।

भारत-साम्राज्ञी जोधाबाई उस समय दासियों से अनुसेवित होकर एक राज-स्त्री के साथ शतरज खेल रही थी। दासियाँ और अन्य स्त्रियाँ अति मूल्यवान रत्नाभरण पहने थी, परन्तु जोधाबाई के गले मे एक मुक्ता-माल और हाथो मे कंकणो के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। पीछे एक अप्सरा-जैसी स्त्री चमर डुला रही थी। अन्य दासियाँ पास बैठकर पान बना रही थीं। चारो ओर की स्त्रियो के आदर-भाव और उनके मुख पर दमकती हुई सात्विकता से ही पता चल जाता था कि ये ही भारत-साम्राज्ञी है।

जोधाबाई की अवस्था अब पचास के लगभग थी, फिर भी युवावस्था के लोकोत्तर सौन्दर्य मे कोई कमी नही हुई थी। अपने वंश और जाति को छोड़कर मुसलमान बादशाह के अन्तःपुर में वास करना पडा ईसका दुःख बादशाह के प्रेम और आदर के कारण लगभग भूल ही चुकी थी। अनेक प्रकार के व्रत और उपवास आदि में समय बिताने वाली उस राज-महिषी से यौवन के साथ ही राजस गुण भी हट चुका था।

दासियो ने जब आकर कहा कि बादशाह सलामत इधर पधार रहे हैं तब जोधाबाई अपने स्थान से उठीं। आसपास की स्त्रियाँ दूर हो गई। शतरंज खेलने वाली राज-पत्नी ने अनपेक्षित रूप में बादशाह के दर्शन

होने की लालसा से कहा—"देवी, मुझे अभी यहाँ से जाना तो चाहिए, परन्तु मेरी एक याचना है—दूर ही खड़े होकर सही, बादशाह के दर्शन करने की अनुमति दीजिए! हम सब को आपके दाक्षिण्य के सिवा आश्रय ही क्या है?"

जोधाबाई ने स्नेह के साथ उस युवती के दोनों हाथ पकड़कर कहा—"बहन! तुमसे जाने को किसने कहा? मेरे साथ ही उनके दर्शन करो।"

सम्राट् को चाँदनी पर आते देखकर जोधाबाई विनम्रता से दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करती हुई उनके पास गई। अब तक कार्य-गम्भीरता के कारण जो मुख रौद्र भाव प्रकट कर रहा था, वही अब पटरानी के विशाल नयनों से निकली प्रेम-किरणों से विकसित होकर मन्द हास करने लगा। जो कहने आये वह उस साध्वी-रत्न से कैसे कहें, यह सोच-कर नय-चतुर बादशाह जलालुद्दीन अकबर भी उलझन में पड़ गए। उपचारादि के बाद दोनों बैठे। थोड़ी दूर अपने प्राणेश्वर के मुख पर ही आँखें गड़ाये खड़ी उस राज-पत्नी को जोधाबाई भूली नहीं।

उन्होंने बादशाह से धीरे से पूछा—"आप उस बालिका को इतनी जल्दी भूल गए?" अकबर ने उस ओर देखा। उस युवती का शरीर रोमांचित हो उठा। मानो वह उस समय किसी स्वर्गीय सुख का अनुभव कर रही थी। परन्तु खेद! जिसकी पाँच हजार पत्नियाँ थीं उस बादशाह को उसका स्मरण कैसे रहता!

उसने कहा—"यह कौन है? कोई नई दासी है?"

जोधाबाई ने उत्तर दिया—"वाह! ठीक है! राजाओं का प्रेम भी बड़ी विचित्र वस्तु है! कश्मीर से लाई गई राज-पत्नियों में से एक है। नाम जोहरा। यह भी भूल गए?"

"सच कहूँ, मुझे याद नहीं है," कहते हुए बादशाह ने उसकी ओर ध्यान से देखा और फिर कहा, "पहले कभी देखा है, ऐसा भी नहीं लगता।"

"अब हमारी भी कहानी ऐसी ही हो जायगी! यह बड़ी अच्छी

लडकी है । मुझे बहुत प्यार है इससे ।"

"तो इधर बुलाओ। देवी की सखियो का मै अपमान नही कर सकता ।"

जोधाबाई ने जोहरा को संकेत किया और उसने लज्जा के साथ आकर बादशाह का पैर छूकर अभिवादन किया । अकबर ने प्रसन्न भाव से मुस्कराते हुए कहा—"तुम शेष लोगो से अधिक भाग्यशालिनी हो । देवी ने स्वयं ही तुम्हे अपनी रक्षा में ले लिया है । राजाओं के प्रेम पर भरोसा नहीं किया जा सकता, परन्तु देवी की प्रसन्नता हो तो फिर तुम्हें कोई डर नही ।" इसके बाद जाने की आज्ञा देने के समान अपने कण्ठ से एक रत्न-माला निकालकर उसे दे दी ।

जोहरा जब चली गई तब जोधाबाई ने हँसते हुए कहा—"मेरी सखी कहकर उसको एक माला दी तो मुझे भी कोई पारितोषिक दीजिए । ऐसा तो कभी विचार भी नहीं आयेगा ।"

अकबर जोर से हँस पड़े । "देवी को मैं पारितोपिक दूँ ? यह साम्राज्य ही तुम्हारा है । अच्छा, अभी मैं एक जरूरी बात करने आया हूँ । परन्तु समझ में नहीं आता तुमसे कहूँ कैसे ?"

"मुझसे कहने में क्या कठिनाई है ? ऐसी कौनसी बात है जो आप मुझसे नहीं कह सकते ?"

"सलीम की बात है । उसकी धृष्टता असह्य हो गई है । मेरा हर जगह विरोध करता है । उसे तो मैं सहता जाता हूँ, परन्तु अब तो वह बहुत ही आगे बढ गया है । देखो, उसने क्या लिखा है !"

"मैं क्यो पढ़ूँ ? वह आपका लडका है । चाहे रक्षा करें चाहे दण्ड दें । मै जानती हूँ आप अन्याय नही करेंगे ।"

"मैंने बहुत सहा । बहुत बार क्षमा किया । अब चुप रहने से काम नहीं चलेगा । इसलिए उससे सीधा युद्ध करके उसे दबाना ही चाहता हूँ ।"

जोधाबाई इसका उत्तर नहीं दे सकीं । भृत्यों के बीच में कुछ हलचल हुई । बादशाह के सामने बिना इजाजत के आने वाला कौन है, यह जानने

के लिए जब जोधाबाई ने आगे जाकर देखा तो वहाँ उपस्थित थीं बादशाह सलामत की सम्मान्य माता ! 'माँ जी !' कहकर वे चुपचाप खडी हो गईं। अकबर ने भी जल्दी से आकर सिर झुकाया।

जब हुमायूँ राज्य-भ्रष्ट हुआ था तब अकबर माता के गर्भ मे था। राज्य से भागने के बाद उस मरुभूमि के कष्टों का क्या वर्णन किया जाय ? उसी यात्रा के बीच, अमरकोट के युद्ध के समय अकबर का जन्म हुआ था। थोड़े ही दिनो मे फिर यात्रा करनी पडी। कितनी यातना सहने के बाद सामने खडी हुई गौरवशालिनी वृद्धा फिर साम्राज्ञी बन सकी थी ! परन्तु अकबर के शैशव में ही पिता की मृत्यु हो गई। उसे पाल-पोसकर उचित शिक्षा देने का कार्य माता पर ही रहा। अब वही अकबर भारत का सम्राट् था, काबुल से बंगाल तक और हिमालय से विन्ध्य पर्वत तक उसकी तूती बोलती थी, फिर भी माता की दृष्टि में वह वैसा ही नादान शिशु बना हुआ था। अमरकोट मे पैदा हुआ वह कोमल शिशु भारत का राजाधिराज हो गया है, यह उस वत्सल माता ने कभी महसूस किया ही नहीं। उनका खयाल था कि पुत्र के पारिवारिक कार्यों के संचालन का और उसे डॉटकर ठीक स्थान पर रखने का उनका अधिकार अभी अक्षुण्ण है।

अकबर के हृदय मे भी माँ के प्रति उतनी ही श्रद्धा और भक्ति थी। कौटुम्बिक कार्यों मे उनकी सलाह के बिना वे कुछ नही करते थे। सार्वभौम और देवेन्द्र के जैसे प्रताप वाला अकबर अपनी माँ के प्रति शान्त बन गया था। फिर भी माँ का वहाँ आना उसे पसन्द नहीं आया। उन्होंने पूछा—"अच्छा, अम्मीजान ! इधर कैसे आईं ?"

"जोधाबाई से चार-पाँच दिनों से नहीं मिली थी, सो उसे देखने आ गई। और सुना था, इलाहाबाद से लोग आये हैं। सो सलीम के समाचार भी जानना चाहती थी।"

अकबर और जोधाबाई दोनों के मुख मलिन हो गए। यह देखकर माँ ने फिर पूछा—"क्यो ? क्यों ? मेरे बच्चे को क्या हुआ ? बोलो ! जल्दी बोलो !"

अकबर ने कहा—"विशेष तो कुछ नहीं, उसने बडी धृष्टता से एक पत्र लिखा है।"

माँ तेज पड गईं। उन्होने कहा—"क्या ? धृष्टता ? दानियाल के लिए तो तुम मेरे बेटे को राजधानी मे आने नही देते ! उसको कहाँ-कहाँ भगाया ! पहले अजमेर, अब इलाहाबाद ! यह दासी का लडका दानियाल ! आने तो दो मेरे सामने ! तख्त पर चढाकर बिठाएँगे ! जब तक वह इस शहर मे है तब तक झगडा होता ही रहेगा। लडकियों जैसी पोशाक पहने क्यों इधर-उधर मटक-मटककर घूमता है ? यदि वह हुमायूँ बादशाह का पोता है तो दिखाये अपनी ताकत जंग मे !"

जोधाबाई बोलीं—"मेरे लिए सलीम और दानियाल एक से ही हैं। आपकी जो इच्छा हो सो कीजिए। एक को वन मे भेजकर दूसरे के लिए राज्य मैं नही चाहती।"

अपनी रानी की बात सुनकर अकबर मुस्कराया, परन्तु माता को यह बात बिलकुल अच्छी नही लगी। उन्होने जोर से कहा—"मैं जानती ही हूँ, इन हिन्दू स्त्रियों मे कोई साहस नहीं होता ! पति तो इनके देवता हैं न ? जो कहे सो सुनेंगी ! यह स्वभाव जब से स्त्रियों ने अपनाया तभी से तो इन हिन्दुओं का नाश शुरू हुआ।"

फिर वे अकबर की ओर मुडी और बोलीं—"जलालुद्दीन ! सुना ! अगर तुम सलीम से लडाई लडने जा रहे हो तो मैं भी इलाहाबाद जा रही हूँ।"

"सो किसलिए, अम्मीजान ?"

"तुम से लडने के लिए। अगर बाप बेटे से लडता है तो माँ भी बेटे से लड सकती है।"

अकबर ने उत्तर दिया—"आपका कहना मैंने कब टाला है ? यदि आप कहती है कि उसकी सारी बातें भूल जाओ और उसे माफ़ कर दो तो उसके लिए भी मैं तैयार हूँ।"

उन्होंने शान्ति से यह उत्तर तो दे दिया, परन्तु अपना निश्चय इस प्रकार बदलने से उन्हे बहुत खिन्नता हुई। उन्होने कहा—"अच्छा, अबुल-

फ़ज़ल को आने दो।"

माँ से विदा लेकर बादशाह रवाना हुए तो दरवाजे तक साथ आई हुई जोधाबाई से उन्होंने कहा—"सुना है, मेरे अब्बाजान के सामने मेरी अम्मा भीगी बिल्ली के समान रहती थीं। जब सलीम बादशाह बनेगा तब तुम भी इसी प्रकार अधिकार चलाओगी।"

जोधाबाई ने तत्काल इसका कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु राजमाता के पास जाकर अपने बेटे के लिए कृतज्ञता प्रकट की। रानी के ऊपर वात्सल्य के साथ हाथ फेरते हुए वृद्धा ने गद्गद होकर कहा—"जलालुद्दीन क्रोधी है, मगर बड़ा अच्छा लड़का है। माँ को बहुत प्यार करता है। उसके लिए तुम्हारी श्रद्धा देखकर मैं बहुत खुश होती हूँ। एक ही दोष है तुम में—शक्ति नहीं है।"

जोधाबाई ने कहा—"आप ठीक कहती हैं। लेकिन बादशाह सलामत ने कहा—स्वर्गीय बादशाह के सामने आप भी ऐसी ही थीं।"

"हाँ, बेटी! जब तेरा समय आयेगा तब तू भी ऐसा ही करेगी।"

इस सबकी साक्षी बनी खड़ी थी जोहरा। अब उसने आकर राजमाता और रानी के पैर छुए।

राजमाता ने कहा—"यह कौन है? राज-स्त्रियों के आराम से बातें करने की जगह यह कैसे आई?"

जोधाबाई ने उत्तर दिया—"यह भी राजपत्नियों में से एक है। मुझे बहुत प्यारी है। शायद विदा लेने आई है।"

जोहरा—"देवी प्रसन्न हों। मेरी एक प्रार्थना है। अपनी सेवा करने के लिए मुझे भी अपने पास रहने की आज्ञा दीजिए।"

जोधाबाई—"बहन यह तो नियम नहीं है। राज-स्त्रियों को पटरानियों के महल में आकर रहने के लिए विशेष अनुमति की आवश्यकता है।"

"वह अनुमति तो बादशाह सलामत ने स्वयं दे दी। आपकी रक्षा में रहने का अनुमोदन करके ही तो माला दी थी!"

माँ—"उसकी यह इच्छा है तो तुम क्यों रोकती हो जोधाबाई?"

जोधाबाई—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु बादशाह की आज्ञा ?"

माँ—"आज्ञा तो मिल गई। नहीं तो मैं आज्ञा देती हूँ। यह बड़ी अच्छी लड़की मालूम होती है। तुम इसे मेरे पास से ले लो।"

तीनों बैठकर कुछ देर बातें करती रहीं। फिर राजमाता अपने महल चली गईं। जोधाबाई जोहरा के साथ सम्राट् के दाक्षिण्य से प्रसन्न होती हुई अपने स्थान पर आ गईं।

--

जब महाराजा पृथ्वीसिंह ने बादशाह के अतिथि बनकर नगरकेन्द्र राज-महल में रहना आरम्भ किया तब से दलपतिसिंह किसी काम में लग कर अपने घर में ही रहा। उसका अनुमान था कि अकबर के वापस आते ही पीथल स्वतन्त्र हो जायँगे, परन्तु उन्हें आये तीन मास हो गए फिर भी वे बन्धन से नहीं निकले, इससे उसको आश्चर्य और दुःख हुआ। उसे यह विदित नहीं था कि बड़े-बड़े राज्य-कार्यों में लगे हुए लोगों की स्थिति ऐसी ही होती है। अब उसको लगने लगा कि राज-प्रीति जैसी अस्थिर वस्तु संसार में कोई नहीं है। फिर भी नीति-निष्ठा और महानु-भावता के लिए प्रख्यात अकबर अपने विश्वस्त और स्वामिभक्त सामन्त को न्याय के बिना इतने दिन से बन्धन में रखे हैं, इसका कारण वह समझने में असमर्थ रहा।

बहुत सावधानी से खोज-खबर लेने पर भी उसे राजधानी के किसी काम का पता नहीं लगता था। अपने सब मित्रों के पास गया—सेठजी से पूछा, बून्दी के भोजसिंह महाराजा से कई बार पूछा, परन्तु कुछ भी समझ में नहीं आया। उसने केवल इतना समझ लिया कि यह सब कोई गोपनीय राजनीति है। इस प्रकार जब वह व्याकुल हो रहा था तब उसे खानखाना की बात याद आई। एक दिन उनसे कुछ जान पाने की आशा से उनकी सभा में पहुँच गया। उसे देखते ही खानखाना ने उसे पहचान

लिया और पास बुलाकर कुशल प्रश्न किया। जब उसने कहा कि मैं अपने स्वामी के समाचार जानने की इच्छा से आया हूँ तो खानखाना ने हर्ष के साथ उत्तर दिया—"दो दिन पहले मैं पीथल के पास गया था। वे बिलकुल स्वस्थ हैं। तुमसे कह सकता हूँ—मै बादशाह का सन्देश लेकर ही गया था। उनको पीथल के प्रति कोई क्रोध या अविश्वास नही है।"

दलपतिसिह आश्चर्य मे पड़ गया। यदि बादशाह रुष्ट नहीं है तो उन्हे बन्धन मे क्यों डाल रखा है? बादशाह के मन्त्री उनमे मिलने जाते है, उनके सन्देश भी ले जाते हैं—यह सब क्या विचित्रता है? उसकी इस विचार-गति का अनुमान करते हुए खानखाना ने कहा—"साम्राज्य का संचालन करने वालो के उद्देश्य इतनी सरलता से समझ नही पाओगे कुमार! तुम भी एक राजा के उत्तराधिकारी हो। वह भार जब तुम्हारे ऊपर आएगा तब तुम्हारे व्यवहारो का अर्थ भी लोग समझ न सकेंगे। इसलिए शान्त रहो। सब ठीक हो जायगा। सेठ कल्याणमल ने तुम्हारे बारे में मुझसे बहुत-कुछ कहा है।"

दलपतिसिह ने आनन्द के साथ विदा ली। यह सुनकर कि सेठजी ने मेरे बारे में उनसे भी बात की, वह आश्चर्य करने लगा—यह रत्न- व्यापारी कहाँ-कहाँ किस-किस से सम्बन्ध रखता है! किसी भी हालत में, आज की बातचीत सेठजी को बताना आवश्यक समझकर वह सीधा उनके पास गया।

कल्याणमल भोजन आदि के बाद अपने किसी काम में व्यस्त थे। दलपतिसिह को देखकर हर्ष के साथ बोले—"दलपतिसिह, तुम बड़े मौके पर आये। मैं तुम्हें बुलाने के लिए अभी-अभी आदमी भेजने को सोच रहा था।"

दलपतिसिंह ने कहा—"मैं आज सुबह अपने स्वामी के बारे मे जानने के लिए खानखाना साहब के पास गया था।"

"उन्होंने क्या कहा?"

"उन्होंने कहा कि महाराज आराम से हैं और शीघ्र ही सब ठीक हो जायगा।"

"पीथल के बारे में तुम निश्चिन्त रहो। उनके सम्बन्ध में बादशाह ने कभी शंका की ही नहीं। वह सब तुम भूल जाओ। तुमसे मुझे एक अत्यावश्यक काम है। अभी कुछ कर तो नहीं रहे हो?"

"मैं बेकार बैठा-बैठा तंग आ गया। जब तक महाराज यहाँ नहीं हैं तब तक आपके अधीन हूँ।"

"तो मेरे साथ आओ। हमें एक जगह जाना है।"

वे दोनों घर से बाहर निकले और पैदल ही चल दिये। कई गलियों को पार करके नगर की सीमा पर एक गली में पहुँचे, जहाँ काँच की चूड़ियाँ बनती थीं। गली में दोनों ओर कच्ची झोंपड़ियाँ थीं। परन्तु आसेतु-हिमाचल भारत की स्त्रियों के सौभाग्य-चिह्न चूड़ियाँ इन्हीं झोंपड़ियों में बनती थीं। प्रत्येक झोंपड़ी के सामने विभिन्न वर्णों और मापों की चूड़ियाँ टँगी थीं, जो इन्द्र-धनुष का-सा प्रकाश फैला रही थीं। काँच को पिघलाकर, लम्बे धागे के समान बनाकर गोल बनाने की विद्या आगरा में जितनी चलती थी उतनी और कहीं नहीं। विविध देशों से लोग आकर यह कला सीखते थे।

निकृष्ट और गन्दी दीखने वाली झोंपड़ियों में यह काम चलता था। परन्तु यहाँ के निवासी धनी थे। प्रतिदिन लाखों रुपयों की चूड़ियाँ दूसरे देशों और नगरों को भेजने वाले व्यापारी भी यहीं निवास करते थे। स्त्रियों के लिए सदा उपयोगी इन वस्तुओं को ले जाकर बेचने वाले विविध देशों के व्यापारी भी यहाँ आया-जाया करते थे।

देखने में दारिद्र्य-देवता के निवास-स्थान के समान इस गली में प्रवेश किया तो दलपतिसिंह के मन में सहज शंकाएँ होने लगीं। उनके मन में प्रश्न उठा कि बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के मित्र सेठ कल्याणमल इस दारिद्र्य-निवास में पैदल चलकर क्यों आये हैं? इस महाप्रसिद्ध रत्न-व्यापारी को काँच की चूड़ियाँ बेचने वालों के बीच क्या काम हो सकता है? सेठजी इतनी शीघ्रता से चलते थे मानो प्राण ही संकट में हों। इस तमाम यात्रा में वे दोनों एक-दूसरे से कोई बात नहीं कर सके। दलपतिसिंह

को लगा कि किसी भारी चिन्ता में डूबकर सेठजी इस लोक से ही कहीं दूर चले गए हैं। परन्तु सेठजी की बुद्धि और विवेक पर उसे इतना विश्वास था कि वह बिना कोई प्रश्न किये, अपनी शंकाओं को पूरी तरह दबाकर उनके पीछे चलता रहा।

गली के पार्श्व में एक छोटा सा काली-मन्दिर था। उसके पास का मकान आसपास की झोंपडियों से अपेक्षाकृत सुसज्जित था। ऐसा मालूम होता था कि वह किसी धनी व्यापारी का भवन है। बना हुआ तो वह भी मिट्टी का ही था, परन्तु पत्थर की सीढ़ियों और खिडकियों आदि से प्रत्यक्ष था कि वहाँ का निवासी कोई प्रमुख व्यक्ति है। यथार्थ में वह उन चूडीवालों के चौधरी का निवास-स्थान था। अर्थ-नियमों के अनुसार चूडियों के थोक भाव निश्चित करना, व्यापार-नियमों का नियन्त्रण करना, उन लोगों के आपसी झगडों को सुलझाना, उनकी शिकायतें अधिकारियों के पास पहुँचाना—ये सब चौधरियों के कर्तव्य थे। उन दिनों प्रत्येक उद्योग के लिए इस प्रकार के चौधरी नियुक्त थे, इसलिए उद्योगों का नियन्त्रण आजकल के समान कठिन नहीं था।

चौधरी के द्वार पर पहुँचते ही सेठजी ने दलपतिसिंह से कहा—"हम अति गुप्त काम आरम्भ कर रहे हैं। मुझे तुम्हारे ऊपर जो भरोसा है उसके कारण ही तुम्हें यहाँ लाया हूँ। इसके अन्दर जो काम होता है उसकी जानकारी किसी को नहीं होनी चाहिए।"

दलपतिसिंह ने अपनी हामी भर दी।

सेठजी ने दरवाजे को तीन बार खटखटाया तो एक दीर्घकाय व्यक्ति ने आकर उसे खोल दिया। उन दोनों के अन्दर प्रवेश करते ही भृत्य ने उसे फिर बन्द कर दिया और एक लम्बा लोहे का मुसब्बर लगाकर ताला जड दिया। उन्होंने गोबर से लिपे हुए एक कमरे में प्रवेश किया तो एक नौकर ने आकर कहा कि चौधरी साहब अन्दर हैं। आज्ञा दे रखी है कि आपको आते ही अन्दर ले आया जाय।

"अकेले हैं या और कोई भी है?"

"अभी-अभी कोई सज्जन आये हैं। उनसे बातें कर रहे हैं।"

सेठजी और दलपतिसिंह उस नौकर के पीछे-पीछे चलकर घर के पीछे के एक बड़े कमरे में पहुँचे। वह सामान्य धनी लोगों जैसी साज-सज्जा से अलंकृत था। दलपतिसिंह का आश्चर्य बढ़ता गया। नीचे बिछा कालीन ऊपर लगा चन्दोवा और अन्य उपकरण एक नागरिक प्रभु के वासस्थान की प्रतीति देते थे। एक रेशम के गद्दे पर जरी के काम किये हुए तकिये से टिककर बैठे एक पुरुष लगभग चालीस वर्ष की आयु के एक अन्य पुरुष से बातें कर रहे थे। सेठजी को देखकर दोनों उठ खड़े हुए। दलपतिसिंह उनमें से एक को देखकर चकित हो गया। वह सोचने लगा कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ? आँखें मलकर फिर देखा, क्योंकि गृह-स्वामी के पास बैठकर बातें करने वाले बूँदी के राजा भोजसिंह थे। महाप्रभुओं के घर में भी विशेष अवसरों पर ही जाने वाला वह राजोत्तम एक चूड़ीवाले के घर में कैसे आया? यह सुप्रसिद्ध था कि राजधानी के सब षड्यन्त्रों और दलबन्दियों से ये कोसों दूर रहते हैं। राजधानी में रहते भी कम ही हैं। बादशाह के आग्रह के कारण वर्ष में तीन-चार बार आगरा में आया करते हैं। परन्तु सेवा और राज-प्रीति के लिए नगर में आकर रहने की आदत उनकी नहीं है। अकबर भोजसिंह का अत्यधिक सम्मान करते हैं। सेठजी से उसने सुना था कि जो बात भी ये बादशाह के पास ले जाते हैं उसे बादशाह बिना किसी सोच-विचार के स्वीकार कर लेते हैं।

इतने विशिष्ट और प्रतापी महाराज भोजसिंह स्वयं एक निम्न कोटि के समझे जाने वाले चूड़ी वाले के साथ बैठे बातें कर रहे हैं और रत्न-व्यापारियों में अग्रगण्य समझे जाने वाले सेठ कल्याणमल भी उससे मिलने के लिए सारा शहर पैदल पार करके यहाँ आये हैं, यह सब राजनीति के गूढ़ व्यापारों से अपरिचित दलपतिसिंह को विचित्र लगा। परन्तु भोजसिंह और कल्याणमल के लिए उसके हृदय में जो भक्ति और आदर था उसने उसे धैर्य प्रदान किया।

भोजसिंह और चौधरी ने आगतो का यथाविधि स्वागत किया। राजा भोज ने बात शुरू की। उन्होंने दलपतिसिंह से कहा—"दलपति, हमारी कुछ महत्वपूर्ण मन्त्रणा मे तुम्हें भी शामिल करने की आवश्यकता आ पड़ी है। हम दोनों के मित्र इन महानुभाव की सिफारिश से ही यह निश्चय किया है। इसलिए, कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमको तुम्हारे ऊपर पूरा भरोसा है।"

दलपतिसिंह ने उत्तर दिया—"अपने स्वामी के आगरा मे लौटने तक मेरी इच्छा आपका आज्ञानुवर्ती बने रहने की है। आप गुरुजनों ने भी यही निश्चय किया है इससे मैं अपने-आपको धन्य समझता हूँ।"

सेठजी—"पीथल भी इसमे सम्मिलित है, इसलिए ऐसा मान लो कि यह उनकी ही आज्ञा है।"

"मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

राजा भोज—"संक्षेप मे बात यह है—सलीम शाह बादशाह से झगड़कर इलाहाबाद मे रहते हैं और सैन्य संगठित कर रहे है, यह तुम जानते हो। यह हम सभी के लिए दुःख का विषय है। अकबर शाह के बाद यदि सलीम को उत्तराधिकार न मिले तो राज्य मे भयानक कलह और और नाश होने वाला है। इतना ही नहीं, वे रक्त-सम्बन्ध के कारण हम राजपूतों के अधिक निकट हैं। भारत-साम्राज्य की भलाई के विचार से ही अकबर बादशाह इसी प्रकार के सम्बन्ध मे बँधे हैं। इसलिए हिन्दू प्रजा की शक्ति की वृद्धि और साम्राज्य का हित इसी में है कि सलीम बादशाह बनें। बादशाह को सलीम के व्यवहार से असन्तोष है, परन्तु उनको उत्तराधिकार से वञ्चित करने का इरादा अब तक नहीं है। परन्तु दानियाल के पक्षपातियों के प्रमुख बादशाह के आप्त-मित्रों में हैं। और सलीम का यह विद्रोह भी बादशाह के धैर्य को नष्ट करने लगा है। इतना ही नहीं कि यह साहसी शाहजादा पिता की आज्ञाओ को मानता नहीं, बल्कि खुल्लमखुल्ला उनकी अवहेलना भी करने लगा है। दो दिन पहले पुत्र से युद्ध करने का ही बादशाह ने निर्णय कर लिया था, परन्तु राजमाता ने बाधा डाल दी

इसलिए रुक गए। माँ के इस हस्तक्षेप ने दृढ़-प्रतिज्ञ सम्राट् के कोप को और भी बढ़ा दिया है। इसलिए अबुलफ़जल के दक्षिण से इधर आते ही गड़बड़ी फैल जायगी।

"यह सब बात सलीम भी जानते हैं। अपना बल और पराक्रम आदि पिता को बता देना ही उनका उद्देश्य है, उनसे युद्ध करना नहीं। पिता उनको तुच्छ मानते हैं, उनके गुणों को देखते नहीं और उनके शत्रुओं के प्रति प्रेम दिखाते हैं, ये उनकी शिकायतें हैं। बादशाह भी यह सब एक हद तक जानते हैं। इसीलिए वे भी चुप हैं। परन्तु सलीम का खयाल है कि अबुलफजल के वापस आते ही सब बातें बदल जायँगी। वे शेख के पक्के शत्रु हैं और शेख भी सलीम को नहीं चाहते। लोगों ने उनको यह भी समझा रखा है कि उनके पिता की मृत्यु सलीम की प्रेरणा से विष द्वारा हुई है। इन सब कारणों से सलीम ने मार्ग में ही अबुलफजल की हत्या करा देने का आयोजन रचा है। आज सुबह ही हमें यह समाचार मिला है।"

दलपतिसिंह ने कहा—"क्या? महापण्डित और महानुभाव अबुल-फजल को घातकों से मरवा डालने की योजना?"

भोजसिंह—"ऐसा ही सलीम ने निश्चय कर रखा है। हमें यह सोचने की आवश्यकता नहीं है कि यह धर्म है अथवा अधर्म। अश्वत्थामा ने सोते हुए शत्रुओं को नहीं मारा था? निःशस्त्र हुए कर्ण को मारने की आज्ञा अर्जुन को स्वयं भगवान् ने नहीं दी थी? यह सब राजनीति है। परन्तु यहाँ बात और है। यदि सलीम के कारण अबुलफ़जल की मृत्यु हुई तो बादशाह सचमुच ही पुत्र के आजीवन शत्रु बन जायँगे। अकबर अबुल-फ़जल को सगा भाई ही मानते हैं। यदि सलीम उनकी हत्या करवा देंगे तो फिर कोई आशा ही नहीं रह जायगी।"

दलपतिसिंह—"तो यह बात सीधे बादशाह को ही बता दी जाय तो वे रक्षा का उपाय कर लेंगे न?"

भोजसिंह—"हमने यह सोचा था। परन्तु सलीम के इस प्रकार के निश्चय की बात यदि उन्हें बता दी जाय तो पता नहीं वे क्या-क्या

कर डालेंगे। इसलिए हमारा प्रयत्न सलीम के साहस को रोकने का ही होना चाहिए। इसी में तुम्हारी मदद की आवश्यकता है।"

दलपतिसिंह—"आज्ञा दीजिए। मैं तैयार हूँ।"

भोजसिंह ने सेठजी की ओर देखा और फिर कहा—"यह बात निश्चित रूप से नहीं मालूम कि आक्रमण किस स्थान पर किया जायगा, परन्तु जिस व्यक्ति ने इस कार्य की जिम्मेदारी ली है वह तुम्हारा परिचित है।"

सेठजी—"और कोई नहीं, तुम्हारे छोटे भाई के साले वीरसिंह।"

दलपतिसिंह—"क्या? ओरछा के राजा?"

सेठजी—"हाँ, वही! उनके साथ तुम्हारे भाई भी हो सकते है। परन्तु इस महा पातक के लिए तैयार हुए व्यक्ति वीरसिंह बुन्देला ही है। इसलिए, उज्जयिनी से निकलकर ग्वालियर में प्रवेश करने के पहले, बुन्देला राज्य के समीप ही किसी स्थान को चुना गया होगा। अबुलफजल कल संध्या को उज्जयिनी पहुँच रहे है। आराम के लिए और कुछ काम से भी दो दिन वहाँ रुकेंगे। वहाँ से सिप्रा आयेंगे और सिप्रा से ग्वालियर। सिप्रा से लेकर ग्वालियर तक का मार्ग बहुत विजन है और वह बुन्देला की राज्य-सीमा में भी है। इसलिए मेरा अनुमान है कि वीरसिंह उनके ऊपर वहीं पर आक्रमण करेंगे। अबुलफजल के साथ केवल तीन सौ घुडसवार सेना है। बुन्देला तीन हजार अश्वसेना और दो हजार पैदल सेना लेकर गुप्त रूप से अपनी राजधानी से रवाना हो चुका है।"

दलपतिसिंह—"इसमें मुझे क्या करना है?"

सेठजी—"यह सब अबुलफजल को बताना ही प्रथम कर्तव्य है। अभी रवाना होगे तो शाम तक धौलपुर पहुँच सकोगे। प्रभात में वहाँ से निकलोगे तो यदि अच्छा अश्व हो तो दुपहर तक ग्वालियर पहुँच सकते हो। बुन्देला के हाथ में न पडकर उज्जयिनी तक पहुँच जाओ तो सब ठीक हो सकता है।"

दलपतिसिंह—"मैं अभी रवाना हो सकता हूँ।"

राजा भोजसिंह—"अकेले ही जाना ठीक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। यहाँ सेना नहीं, बुद्धि और अवसरोचित काम करने की युक्ति की आवश्यकता है। ये दोनों तुममें हैं, इस विश्वास से ही इस काम के लिए तुमको चुना है। रास्ते का सब प्रबन्ध······"

अब तक चौधरी चुप थे। इस बात को उन्होंने पूरा किया—"रास्ते का सब प्रबन्ध हो चुका है। धौलपुर, ग्वालियर, नरवर और सिप्रा में बदलने के लिए उत्तम अरबी घोड़े आप को तैयार मिलेंगे। अन्य कोई भी सहायता माँगने पर आपको मिल जायगी।"

अब जो कहना है उस बात को कहने लिए अनुमति माँगने के जैसे उन्होने सेठजी और भोजराज की ओर देखा। नेत्रों के संकेत से अनुमति मिल गई तो उन्होंने कहा—"मार्ग मे इधर-उधर कुछ वैरागी लोग मिलेंगे। उनमे जो त्रिदंडधारी मिले उससे पूछना—कपूर है ? यदि वह उत्तर दे—'कश्मीरी है', तो यह चूडी उसे दिखाना। फिर वह आपको सब प्रकार की सहायता देगा। इस चूड़ी को अति सावधानी से सँभालना। देखने में काँच की लगती है, परन्तु टूटने वाली नही है।" कहते हुए चौधरी ने अपनी जेब से एक चूडी लेकर भोजसिंह के हाथ में दे दी। उन्होंने उसे दलपतिसिंह के हाथ में रख दिया।

"तो अब देरी न कीजिए। सेठजी को आपसे बहुत-कुछ बताना होगा।" यह अनुमति मिलते ही सेठ कल्याणमल और दलपतिसिंह वहाँ से रवाना हो गए। मार्ग में कोई बात नहीं हुई। घर पहुँचने पर सेठजी ने कहा—"आज अँधेरा होने के पहले ही धौलपुर पहुँच जाना है। इसलिए अब देरी न करो। सूरजमोहिनी और उसकी नानी वहाँ गौहड़ राणा के महल मे रहती हैं। उनके लिए मैं एक पत्र देता हूँ। वह मोहिनी के हाथ में देना।"

दलपतिसिंह का हृदय आनन्द से उछल पड़ा। अपनी प्राणेश्वरी से इतने दिन न मिल सकने का दुःख उसे असह्य हो रहा था। दानियाल ने उसका धौलपुर से अपहरण करने का जो प्रबन्ध किया था उसको तीन माह

व्यतीत हो चुके थे। इस बीच दलपति ने कई बार सेठजी से कुमारी के बारे में पूछा, परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। "सब ठीक होगा"—केवल इसी उत्तर से उसे सदा सन्तोष मानना पड़ता था। कभी-कभी सेठजी स्वयं उससे कहते कि "सूरजमोहिनी की नानी ने तुम्हारी कुशल पूछी है। आज पत्र आया है। आदि।" इस यात्रा में उससे मिलने का भी अवसर मिलेगा सोचकर उसे परम आनन्द हुआ। यथार्थ में पत्र ले जाना तो एक बहाना था, आपस में मिल लें यही सेठजी का सच्चा उद्देश्य था।

इस बात के बाद दलपतिसिंह अपने मनोरथों में ही मग्न हो गया। थोड़ी देर बाद सेठजी ने उसे उसके दिवास्वप्न से जगाकर कहा—"एक और बात है। रामगढ़ में कुछ परिवर्तनों के चिह्न दिखलाई पड़ने लगे हैं। तुम्हारा भाई प्रजा का आराध्य तो नहीं बना है, सुना है, बुन्देला दशानन के लिए प्रहस्त बनकर लोगों का पीड़क बन गया है। वहाँ की जनता ने उसके शासन के विरुद्ध उपद्रव मचाया है। शायद वीरसिंह के साथ इस हत्या के लिए निकल पड़ा होगा। जाते-जाते यह भी पता लगा लेना कि उसका इस कार्य में कितना हाथ है।"

सेठजी की बातों से उसकी सोई आशाएँ फिर जाग्रत हो गईं। रामगढ़ के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में आगरा आया था। मरण-शय्या से पिताजी ने जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार अपने पितृव्य अथवा उनके सन्तानों को खोज निकालने का भार अब तक पूरा नहीं कर सका है। आगरा की राजनीति में फँस जाने से उसका ध्यान बँट गया था। अब उसको लगा कि सेठजी इस समय मेरे कर्तव्य की याद दिला रहे हैं।

उसने कहा—"रामगढ़ का राजा बनने का मोह मुझे नहीं है। फिर भी राज्य में जो-कुछ होता है उसका उत्तरदायित्व मुझ पर भी है। पितृव्य या उनके सन्तानों के मिलने तक राज्य करने का भार पिता और ईश्वर ने मुझे सौंपा था। जनता से मिलकर मैं वंश-द्रोह तो नहीं कर सकता, बादशाह की आज्ञा जो हो उसका पालन मैं अवश्य करूँगा। अभी आपसे कहे अनु-

सार सब बातों का पता लगाने का प्रयत्न भी करूँगा।"

सेठजी का मुख प्रसन्न हो उठा। उन्होंने दलपतिसिंह की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"राजकुमार अपने वंश-महत्व और स्वभाव-महत्व के योग्य ही तुम्हारा उत्तर है। कुछ भी हो, वंश-द्रोही नहीं बनना है। रामगढ़ के राजा लोग ऐसे कभी थे भी नहीं। तुम्हारे स्वर्गीय पिता युवावस्था मे दुष्टों के हाथ मे पड़कर उनकी प्रेरणा से कुछ अनुचित कर गए थे, परन्तु अन्त्य काल मे पश्चात्ताप की अग्नि मे जलते रहे। उसका प्रमाण वह आज्ञा ही है जो मरण-शय्या से उन्होंने तुम्हें दी थी। तुम भी उस कार्य मे इतने जागरूक हो इसलिए अन्त में सब शुभ ही होगा। यह लिफाफा सूरजमोहिनी को देना। उससे कहना कि उसे शीघ्र ही बुलाने का प्रबन्ध मै कर रहा हूँ। अच्छा, तो अब चलो।"

दलपतिसिंह ने उसी दिन होने वाले प्रिया-मिलन की आशाओं मे विभोर होकर आनन्द के साथ प्रस्थान किया।

सन्ध्या हो रही थी। अस्तगामी सूर्य की अरुण किरणे वृक्ष-लतादिकों पर सिन्दूर की वर्षा कर रही थीं और भूमि को कुँकुमवासना बना रही थीं। धूप कम होती जा रही थी। दिवस का अवसान बड़ा रम्य था। इस समय प्राणिमात्र के लिए उत्सवप्रद चैत्र मास का आरम्भ ही हुआ था। चम्बल नदी के तट पर वृक्ष-लतादि प्रफुल्लित कुसुमावली से पुलकित हो रहे थे। मरुभूमि राजस्थान और जलदुर्भिक्ष से अपेक्षाकृत वृक्ष-दारिद्र्य अनुभव करने वाले ग्वालियर के बीच की यह भूमि चम्बल के ही अनुग्रह से इतनी शस्य-श्यामला बनी थी।

इस नदी के तट पर एक सुन्दर महल सुशोभित था। संगमर्मर से बने इस महल के उच्च शिखर बहुत दूर से दिखाई पड़ते थे। चारों ओर बने पत्थरों के प्रकोष्ठ से ही विदित होता था कि यह किसी राजा का महल

है। दुर्ग की चारों ओर की खाई, द्वार-प्रवेश के रक्षक सैनिक, स्थान-स्थान पर जमी हुई तोपें, आदि स्पष्ट बता रही थीं कि शत्रु के लिए यह दुर्ग अजेय नहीं तो दुर्जेय अवश्य है। अन्दर की ओर मोडकर ले जाने वाले पुल को पार करके द्वार पर जाया जाता था। मदमत्त हाथी भी जिसको हिला नही सकते ऐसा गोपुर-द्वार नुकीले कीलों से छाया हुआ था और वह इतना भारी था कि उसे खोलने और बन्द करने के लिए एक विशाल जन-समुदाय की आवश्यकता होती थी।

दुर्ग के अन्दर जो बड़े-बड़े भवन थे उनमे मुख्य था राजमहल। वह भारतीय शिल्पशास्त्र का श्रेष्ठ नमूना ही था। तीन खण्डो के उस महा प्रासाद के नीचे के खण्ड मे सिंहासन-वेदी, सभागृह और बैठक घर आदि थे। आस्थानमण्डप के चारो ओर की दीवारो पर भागवत कथा का चित्रण किया गया था। सुवर्ण रंग से रँगे छत पर रजत दीपावली, फर्श पर बिछे हुए रत्नजटित कालीन और मध्य मे स्थित रत्न-सिंहासन महाराजा की सम्पत्समृद्धि की घोषणा कर रहे थे। अन्य कक्ष भी इसी के समान अलंकृत थे।

दूसरे खण्ड में शयन-कक्ष थे, जिनके साथ एक बडी चॉदनी बनी हुई थी। वह राजमहल की स्त्रियों के उपयोग के लिए थी। तीसरे खण्ड मे भी निवास-कक्ष और शयनागार थे।

अश्वशाला, हस्तिशाला, परिचारकावास आदि अनेक प्रकार के भवन पीछे की ओर थे। इनके अतिरिक्त अतिथियों के लिए समस्त सुविधाओ के साथ निर्मित एक अतिथिशाला एक सुन्दर विशाल उपवन के बीच मे सुशोभित थी। यह उपवन नदी-तट तक फैला हुआ था। अकबर बाद-शाह के पितामह समग्र-प्रभाव बाबरशाह ने भारत में जिस उद्यान-निर्माण प्रणाली का प्रचार किया था उसने हिन्दू राजाओ को बहुत प्रेरणा दी थी। फ़ारस और समरकन्द आदि देशों से लाये हुए सुरभित पुष्पों के लता-गुल्म, विभिन्न वर्णों की पत्रावलियों से विलसित लताएँ, बीच में कमल, कुमुद आदि पुष्पो से मण्डित तडाग उस उद्यान की शोभा बढ़ा

रहे थे। उस विशाल उपवन के घने लता-कुञ्जों में दोपहर के समय भी उष्णता की बाधा नहीं होती थी।

यह महल गोहड़ा राणा के नाम से सुविख्यात जाट राजा का था और धौलपुर से लगभग चार कोस के अन्तर पर था। महल के मुख्य कक्ष में आजकल कोई निवास नहीं करता था। गोहड़ा राणा अपनी राजधानी में ही रहते थे; केवल ग्रीष्मकाल के तीन मास यहाँ आकर निवास करते थे।

अतिथि-मन्दिर के पास के उद्यान में इस वन-कान्ति का आस्वादन करती हुई दो स्त्रियाँ घूम रही थी। वे थी सूरजमोहिनी और उसकी नानी दुर्गादेवी। हम अन्यत्र जान चुके हैं कि जब ये हरिद्वार जा रही थीं उस समय दानियाल शाह के उपद्रव के कारण इन्हें राजधानी से दूर किसी अन्य स्थान में भेज दिया गया था। उन्हे किसी ऐसे व्यक्ति के ही पास भेजा जा सकता था जो उस शाहजादे के आक्रमण को रोक सके। अतएव सेठजी ने अपने मित्र गोहड राणा का स्थान चुना था।

सूरजमोहिनी को सब सुविधाएँ प्राप्त होने पर भी वह स्थान एक कारागृह के समान मालूम होता था। अपने बाबा के पास से दूर रहना उसे प्रतिदिन अधिकाधिक असह्य होता जा रहा था। उसके लिए एक वृद्ध ब्राह्मण पण्डित और कुछ सखियों को सेठजी ने भेज दिया था। उसे संस्कृत का साधारण ज्ञान था, अब वह पण्डित की सहायता से पुस्तकें पढ़कर उसे बढ़ाने लगी। फिर भी 'बाबा' के घर में स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने वाली इस कन्या को यह एकान्तवास सुखकर न हुआ। धौलपुर में आये उसे तीन मास हो गए थे। अधिक-से-अधिक एक मास ही रहने की मानसिक तैयारी से वह यहाँ आई थी। सेठजी ने कहा था कि बादशाह के आते ही उसे वापस बुला लेंगे। अब वह सोचने लगी कि बादशाह को आये तो तीन मास हो गए, अब तक बाबा हमें लेने क्यों नहीं आये ?

उस सायंकाल में भी वह इसी उधेड़-बुन में थी। उसने इधर-उधर घूमकर और उद्यान की शोभा देखकर अपनी व्यग्रता मिटाने का प्रयत्न

किया। परन्तु मन न बहला। आखिर उसने नानी से पूछा—"नानी ! बाबा हमको कब तक यहाँ छोड़ रखेंगे ? अब और रहना पड़ेगा तो मैं बीमार हो जाऊँगी।"

"जरूरत से ज्यादा वे हमको एक दिन भी यहाँ नहीं रखेंगे," नानी ने कहा, "तुम शान्त रहो। व्यर्थ अपने मन को मत बिगाड़ो।"

"बाबाजी ने कहा था न कि हमें एक माह से अधिक यहाँ नहीं रहना पड़ेगा ! कहा था कि बादशाह के लौटते ही बुला लेंगे। अब तो उन्हें लौटे भी बहुत दिन हो गए। बाबा आते ही नहीं। इतने दिन तक हमें दूर रखने की ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी है, नानी ? विपत्ति क्या है, आप नहीं जानतीं ?"

"उनके विचारों और उद्देश्यों को मैं कैसे जानूँ बेटी ?"

"तो भी क्या आपसे कहा कुछ भी नहीं ? मैं जानती हूँ, आपसे सलाह लिये बिना बाबा कुछ भी नहीं करते।"

"जानकर ही तुम क्या करोगी ?"

"तो भी, कहिए तो सही।"

इस प्रकार का सम्भाषण प्रतिदिन का नियम ही हो गया था। कितना भी वह आग्रह करती दुर्गादेवी अपने बनवास का हेतु सूरजमोहिनी को कभी-कभी कह देने को मन में आता भी परन्तु फिर आज-कल करके टाल देती थीं। आज उन्होंने यह सोचकर कि आखिर उसके जान लेने में हानि क्या है, सब बातें बता देने का निश्चय किया। इसलिए अभी जो उसने यह कहा कि "बताइए न, क्यों हमें इस प्रकार जंगल में डाल रखा है ? कोई महत्त्वपूर्ण कारण के बिना बाबा ऐसा नहीं कर सकते। मुझे बताइए, क्या बात है ?" तो, दुर्गादेवी ने सारी बात खोल दी। उन्होंने कहा—"मैं तुम्हें बेकार दुखी करना नहीं चाहती थी। इसीलिए अब तक छिपा रखा था। तुमने अनुमान कर ही लिया होगा कि तुम एक उच्च क्षत्रिय वंश की सन्तान हो। मेरी और सेठजी की इच्छा यही है कि तुम्हारा विवाह किसी अनुरूप क्षत्रिय कुमार से कर दिया जाय। अब तक इसमें

अनेक बाधाएँ थीं। पहले तो, लोग सेठजी को वैश्य मान रहे हैं, इसलिए क्षत्रिय के साथ विवाह की बात सोच ही नहीं सकते। अब ईश्वर की कृपा से तुम्हारे योग्य एक राजपूत तुम्हारे साथ विवाह करने का इच्छुक हो गया है। हम सब को भी वह स्वीकार है। और, हमने यह भी देख लिया कि तुम भी उसे चाहती हो।''

सूरजमोहिनी का मुख लज्जा से नत हो गया। परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। दुर्गादेवी कहती गईं—''ऐसे ही समय पर एक काली घटा आ गई। बादशाह के पुत्र दानियाल शाह बहुत दिन से कह रहे हैं कि तुम्हें उनके अन्तःपुर में भेज दिया जाय। एक बार सेठजी को बुलाकर आमने-सामने कहा भी। भारत के अनेक राजा-महाराजाओं की बहू-बेटियाँ जब अन्तःपुर में हैं तब इस आज्ञा को अपमान मानकर ठुकराया नहीं जा सकता था। इसलिए तत्काल रक्षा के लिए सेठजी ने उनसे कह दिया कि पहले बादशाह को अनुमति चाहिए। उन्हीं दिनों बादशाह सलामत दक्षिण को रवाना हो गए। दानियाल शाह को अन्तःपुर का पूर्ण अधिकार मिल गया। समय बुरा देखकर सेठजी ने हमें यहाँ भेज दिया।''

सूरजमोहिनी कोप-ताप के अधीन होकर कुछ बोल नहीं सकी। यवनों के अन्तःपुर मे प्रवेश करने के पहले उसने प्राण-त्याग ही अपना कर्तव्य समझा। उसकी आँखों से मानो चिंगारियाँ निकलने लगीं। कोमल स्वभाविनी वह कन्या क्षण-भर के लिए असुर-संहारकारिणी दुर्गा जैसी दिखलाई दी। फिर भी शान्त स्वर मे उसने उत्तर दिया—''म्लेच्छों के अन्तःपुर में तो किसी हालत में नहीं जाऊँगी। ऐसा समय आ ही गया तो विष खाकर प्राण-त्याग कर दूँगी। देवी दुर्गा की शपथ करती हूँ।''

यह सम्भाषण एकाएक यहीं रुक गया, क्योंकि इसी बीच नौकर ने आकर सूचना दी कि सेठजी का पत्र लेकर एक सैनिक आगरा से आया है। उसे बुला लाने की आज्ञा दी गई। तब लम्बी यात्रा से क्लान्त धूलि-धूसरित दलपतिसिंह उनके सामने आकर खड़ा हो गया। उसे देखकर दोनों को अत्यधिक हर्ष हुआ। तब तक जो कोपादि विकार प्रबल हो रहे

थे वे क्षण-भर में विलीन हो गए। कुमारी का मुख उत्फुल्ल कमल जैसा विकसित हो गया। वह तब तक की बातचीत भी मानो भूल गई। एक ही बात उसे याद रही कि दलपतिसिंह मेरे पास है।

वह राजपुत्र तो जब से यात्रा आरम्भ की तभी से अपनी हृदय-स्वामिनी का दर्शन पाने के सौभाग्य को सोच-सोचकर आनन्दित हो रहा था। मार्ग में वह कहीं रुका नहीं। हाँ, एक पथिक से गोहड राणा के महल का मार्ग पूछने के लिए क्षण-भर अवश्य ठहरा था। अपने ऊपर निर्भर कार्य की गुरुता और प्रियतमा-समागम का विचार उसे शीघ्र-से-शीघ्र यात्रा करने को प्रेरित करता रहा। इस आतुरता में उसने अपने पुत्र समान प्रिय अश्व को एक-दो बार मारा भी। राजा नल को देवताओं ने जो अश्व-हृदय मन्त्र दिया था उसे न जानने के भाग्य को आज उसने कितनी बार कोसा होगा! किसी प्रकार संध्या के पहले ही वह सूरजमोहिनी के निवास-स्थान पर पहुँच गया।

तीन माह बाद के इस समागम में भी अपनी प्रियतमा को एक बार सीधे देखने का साहस उस मर्यादा-बद्ध युवक को नहीं हुआ। वह निकट है इतने से ही सन्तोष मानकर उसने दुर्गादेवी की ओर देखकर मन्द हास किया। स्त्री-सहज लज्जा के कारण सूरजमोहिनी भी उसकी ओर देख नहीं सकी। उन तरुणों के मनोभावों को कौतुक के साथ समझती हुई दुर्गादेवी मुसकराने लगी। उन्होंने पूछा—"सेठजी कुशल तो हैं? आप भी अच्छे हैं।"

दलपतिसिंह ने उत्तर दिया—"सेठजी को आप दोनों से दूर होने का ही असुख है। अन्य सब प्रकार से वे सकुशल हैं। मैं भी आपके आशीर्वाद से अच्छा हूँ।"

"पृथ्वीसिंह महाराज भी सकुशल हैं।"

"उनको किसी अज्ञात कारण से कैद में रखा गया है। लगभग तीन माह हो गए।"

"क्या राजा पीथल कैद में?" सूरजमोहिनी अपने उद्गार व्यक्त किये बिना न रह सकी।

"राजधानी में बहुत परिवर्तन हो गया।"

दुर्गादेवी ने उसे उत्तर देते हुए कहा—"मोहिनी! राजकार्य से हमें क्या वास्ता?" फिर वे दलपतिसिंह की ओर मुड़कर बोलीं—"हाँ, तो राजकुमार, यदि राजा पीथल को बन्दी बनाया गया है तो राजधानी में बहुत सी असाधारण घटनाएँ हुई होंगी? शायद इसीलिए सेठजी ने हम लोगों को अब तक वापस नहीं बुलाया। उन्होंने हमारे लिए क्या सन्देश भेजा है?"

"उन्होंने कुमारी के लिए एक पत्र भेजा है और आपसे निवेदन करने को कहा है कि शीघ्र सब ठीक हो जायगा। दो-चार दिन में वे स्वयं आकर आप दोनों को आगरा ले जायँगे।"

सूरजमोहिनी ने आदर के साथ उस पत्र को ले लिया। पढ़ते-पढ़ते उसका मुख आनन्द से विकसित हो उठा और उसने कहा—"नानी, सुनिए, बाबा ने क्या लिखा है!" और वह पत्र पढ़कर सुनाने लगी—"मेरी परम प्रिय पौत्री सूरजमोहिनी को कल्याणमल का शुभ आशीर्वाद! आशा है, तुम और नानीजी दोनों सकुशल हो। मैं जानता हूँ, यहाँ लाने में देरी होने के कारण तुम्हें दुःख होगा। परन्तु अब देवी कृपा-कटाक्ष से अधिक देरी न होगी। परसों बादशाह की आज्ञा से मैं राजमहल में गया था। बादशाह सलामत ने बहुत कृपा के साथ तुम लोगों के बारे में पूछा। साम्राज्ञी जोधाबाई ने भी तुम्हारे बारे में पूछा और उपहार के रूप में कुछ वस्त्राभरण भी दिये। मेरा विश्वास है कि बादशाह सलामत की परम कृपा से सब शान्त हो जायगा।

"राजकुमार दलपतिसिंह एक आवश्यक कार्य से जा रहे हैं। उन्हें रात को वहाँ ठहराकर प्रातःकाल में ही रवाना कर देना। भगवत्कृपा से कोई कष्ट न होगा।"

सभी को पत्र से आनन्द हुआ। बादशाह से मिलने का अर्थ अनुमान कर लेना सूरजमोहिनी और दुर्गादेवी के लिए कठिन नहीं था। दुर्गादेवी ने जान लिया कि दानियाल शाह ने अपनी इच्छा बादशाह के सम्मुख प्रकट

की होगी और उसी सम्बन्ध मे उन्होने सेठजी को बुलाया होगा। और, सूरजमोहिनी ने अनुमान किया कि विवाह मे जो बाधाएँ थी वे सब हट गई होगी, परन्तु बात जो हुई सो इतनी ही थी—बादशाह की एक बेगम के द्वारा दानियाल शाह ने सूरजमोहिनी को प्राप्त करने के लिए बादशाह के पास निवेदन किया। बादशाह की अनुमति के बिना सेठजी इसके लिए तैयार नही है, इसलिए उसने उनकी अनुमति की याचना की। पहले तो अकबर ने स्वयं ही कुछ विरोध किया, परन्तु दानियाल का बहुत आग्रह देखकर सेठजी को बुलाया। दीवान दीनदयाल से पहले ही बुलाये जाने का निश्चय जानकर सेठजी ने रानी जोधाबाई से सब बातें बता दी। जब सेठजी बादशाह से मिलने के लिए गये तब महारानी भी पास ही परदे के पीछे मौजूद थी।

बादशाह ने कल्याणमल को किसी प्रकार बाध्य न करते हुए कहा कि यदि दानियाल की इच्छा पूर्ण कर देंगे तो उन्हे भी इससे आनन्द होगा। सेठजी ने निवेदन किया कि यह सम्मान मेरी स्थिति के लिए बहुत अधिक है और बालिका एक अन्य युवक पर अनुरक्त होने के कारण भी यह उचित न होगा। फिर भी बादशाह की आज्ञा सर्वमान्य है। जब सेठजी ने देखा कि बादशाह को इसका विशेष आग्रह नही है तो उन्होने बालिका के बारे में सच्ची बात उन्हे बता दी। सारी कहानी सुनने के बाद बादशाह ने कहा—"तब तो बहुत सोच-विचार करके यह कार्य करना है। इतने महान् व्यक्ति की पुत्री को इच्छा के विपरीत कोई काम करने को बाध्य नही किया जा सकता। तो अभी आपने जो वर उसके लिए निश्चित किया है वह उसके योग्य है?"

सेठजी ने बताया कि वह सर्वथा अनुरूप है। परन्तु उन्होने उसका नाम, वंश आदि उन्हें नहीं बताया; शीघ्र ही उसे दरबार में ले आने का वचन दिया।

दुर्गादेवी ने अधिक बात नही चलाई। केवल यह कहकर वे अन्दर चली गई कि "बाबा तो शीघ्र ही आने वाले है, तब सब-कुछ मालूम हो

जायगा। राजकुमार बहुत लम्बी यात्रा करके आये हैं। थके हुए हैं। मैं उनके लिए प्रबन्ध करूँ।"

सूरजमोहिनी और दलपतिसिंह बहुत दिन से एक-दूसरे पर अनुरक्त थे, फिर भी उन्हें एकान्त में बातें करने का अवसर अब तक नहीं मिला था। पहली बार सीढी चढ़ते समय जो बातें हुई थीं उनको ही दोनों अपने हृदयों में संचित किये हुए थे। इसलिए इस दुर्लभ अवसर का लाभ कैसे उठाया जाय उनकी समझ में नहीं आता था। आखिर सूरजमोहिनी ने मौन भंग किया—"यात्रा से बहुत थक गए होंगे। अन्दर चलकर आराम करें।"

दलपतिसिंह ने उत्तर दिया—"आप लोगों से मिलते ही मेरी सब थकावट मिट गई। कितने दिन बाद मिल पाया।……यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है?"

"प्रियजनों से दूर रहकर कुशल क्या हो सकती है?"

'प्रियजन' शब्द में अपने को भी सम्मिलित मानकर दलपतिसिंह मन-ही-मन हर्षित हुआ। सूरजमोहिनी ने कहना जारी रखा—"नगरों से दूर नदी-तट की यह रमणीयता और शान्ति मेरे लिए अत्यन्त आनन्दकारी हुई है। अपने प्यारे लोगों से इतनी दूर न होती तो इससे अधिक सुखदायक स्थान मेरे लिए और कोई न होता। आप तो सकुशल हैं?"

"मुझे क्या सुख है? अपने निकटतम लोग जब कष्ट में हैं तब मनुष्य को क्या सुख हो सकता है?"

"महाराजा जब बन्धन में हैं तब आपको ऐसा लगना स्वाभाविक ही है। बाबा कहा करते हैं कि आपके लिए तो वे पितृतुल्य ही हैं।"

"केवल उनके ही बारे में मैं चिन्तित नहीं था। मेरे हृदय में ज्योत्स्ना फैलाने वाली एक दीप-शिखा का दूर होना क्या दुःख का कारण नहीं था? आप रुष्ट न हों, महाराज पृथ्वीसिंह के बन्दी बनाये जाने के समान ही आप पर आये हुए संकट भी मेरे लिए दुःखदायी थे। ईश्वर की कृपा है

कि अब वे संकट टल गए।"

सूरजमोहिनी ने लज्जा से मुख नीचा कर लिया। जो बालिकाएँ शृंगार-चेष्टाओं से अपरिचित हैं वे भी अपने प्रियतम के सान्निध्य में स्वाभाविक भावों के वशीभूत हो ही जाती हैं। स्त्री-पुरुष का आकर्षण प्रकृति का नियम है। इसलिए इस प्रकार के विकार-विशेष पक्षियों और पशुओं में भी प्रत्यक्ष होते हैं। निर्मल-चित्त और भाव-मुग्ध वह बालिका अपने हृदय-वल्लभ की बातों से आनन्द-पुलकित हो गई। उसकी स्वाभाविक वाग्मिता मानो कहीं जाकर छिप गई। इस प्रकार स्वल्प समय के लिए स्वयं अबला बनी सूरजमोहिनी ने अपने-आपको नियन्त्रित करते हुए कहा—"आपको मेरे बारे मे दुःख था तो उससे कितनी अधिक थी आपके बारे में मेरी चिन्ता! स्त्रियों की चिन्ता विविध कार्यों में व्यस्त रहने वाले पुरुष कैसे समझ सकते हैं?"

"सेठजी के पत्र से मै अनुमान करता हूँ कि अब हमारा सकट का काल बीतने ही वाला है।"

सूरजमोहिनी पास ही एक गुलाब के पौधे मे तीन-चार विकसित पुष्पो को देखती चुपचाप खडी रही। उसकी दृष्टि अपने ऊपर न होने से खिन्न होकर दलपतिसिंह ने कहा—"इतने दिन दूर रहा। आज आँखें भरकर देख तो लूँ!"

सूरजमोहिनी ने साहस बटोरकर अपने कमलदल जैसे विशाल नेत्रो से उसकी ओर देखा। उसे सारा ससार ही नवीन मालूम होने लगा। जो उसको अब तक अविदित थी ऐसी एक दिव्य आनन्द की अनुभूति ने उसे विभोर कर दिया। यथार्थ मे उनका वह दृष्टि-सम्मिलन दो अन्तःकरणों का सम्पूर्ण सम्मोहनाश्लेषण ही था। उस दृष्टि-सम्बन्ध से उनके अन्तःकरणों का परिणय पूर्ण हो गया।

क्षण-भर बाद ही उस बालिका ने फिर सिर झुका लिया। परन्तु उसने एक नये बल और मनोविकास का अनुभव किया। पौधे से एक गुलाब का फूल तोडकर उसने कहा—"आप प्रातः ही किसी गौरवपूर्ण

कार्य के लिए जा रहे हैं। मेरी स्मृति के लिए इस तुच्छ उपहार को स्वीकार कीजिए। उस फूल को नाक में लगाकर, उसकी सुगन्ध लेकर, उसने दलपतिसिंह के हाथ में दे दिया। उस सुगन्धास्वादन में क्या-क्या प्रार्थना नहीं भरी थी! कदाचित् अपनी प्रणय-परिपूर्ण आत्मा को ही उसने उस पुष्प में आवाहित कर लिया होगा!

दलपतिसिंह ने उसे आदर के साथ स्वीकार करके अपने अधर-पुटों से लगाया और फिर रोमाञ्च के साथ उसका चुम्बन किया। बाद में अपने वस्त्र के अन्दर सँभालकर रखते हुए मन्द स्वर में कहा—"प्रियतमे! मेरे सारे कार्यों में यह पुष्प मुझे श्रेय प्रदान करेगा।"

वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि दुर्गादेवी सब व्यवस्था करके वापस आ गई। उन्होंने कहा—"कुमार अन्दर चलो; स्नान आदि की व्यवस्था हो गई है। मेरे और मोहिनी के लिए दुर्गा-दर्शन का भी समय हो रहा है।" समय की गति रुकती नहीं, दलपतिसिंह ने सोचा।

बादशाह अकबर ने दक्षिण से लौटने के बाद दीवाने आम में प्रमुख उमराओं आदि को दर्शन देने और बाद में दीवाने खास में अपने सचिवों के साथ राजकार्य की चर्चा करने का नियम स्थगित कर रखा था। सब को यही मालूम था कि अपने पितृतुल्य गुरु की मृत्यु के दुःख से उन्होंने ऐसा किया है।

जिस दिन दलपतिसिंह आगरा से रवाना हुए उसके आठवें दिन दरबार भरने वाला था। इसकी सूचना राजधानी में सबको दे दी गई थी। जनता ने अनुमान किया कि इस दरबार में अनेक मुख्य प्रश्नों पर विचार किया जायगा। तीन महीनों से अपने निकटतम मित्रों और सचिवों को छोड़कर बादशाह ने किसी से भेंट नहीं की थी। इसलिए उनके दर्शन मिलने के समाचार से सभी दरबारियों को प्रसन्नता हुई।

आगरा के राजमहल का यथार्थ वर्णन करना सम्भव नही है। उन दिनो मे ही नही, बाद मे भी निर्मित राजमहलों से उसकी तुलना करके देखी जाय तो उसे एक देव-नगरी ही कहना होगा। फ्रांसीसी राजाओ के 'लूवर' और अंग्रेज सम्राटों के 'विंडसर' से सुपरिचित यूरोपीय पर्यटक भी आगरा के राजमहल की सुन्दरता, शिल्प-वैचित्र्य और सम्पत्समृद्धि से आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सके। सभी प्रमुख भवन यमुना के अभिमुख बने थे। उनकी चारो ओर की दीवार की परिधि पाँच मील थी। प्रवेश द्वार चार थे। उत्तरी द्वार पर बड़ी-बड़ी तोपें लगी हुई थी। वह द्वार विशेष सवारी के लिए ही खुला करता था। पश्चिमी द्वार का नाम था कचहरी दरवाजा। उसके पास नगर-काजी कहलाने वाले न्यायाधीश का भवन था। उससे लगा हुआ नगर का मुख्य बाजार था। नगर-काजी के भवन के सम्मुख साम्राज्य के प्रधान मन्त्री की कचहरी थी। दरवाजे के अन्दर एक सड़क के अन्त मे दक्षिण द्वार था, जिससे राजमहल के आँगन का मार्ग था। इस सडक के दोनों पार्श्वों में राज-नर्तकियो के वास-गृह थे। चौथा द्वार यमुना-नदी के अभिमुख था। इस स्थान पर बादशाह नित्य अपनी प्रजा को दर्शन दिया करते थे।

दक्षिण द्वार पार करने पर एक विशाल आँगन मिलता था। कई हजार सैनिकों के आराम से खड़े होने योग्य इस आँगन के चारों ओर दालान था। इस दालान और आँगन में सदा सैनिक तैयार खड़े रहते थे। दक्षिण द्वार के सामने के दालान के आगे उससे छोटा एक और आँगन था। वहाँ प्रभुजन और उमरा लोग ही प्रवेश कर सकते थे। उस आँगन के पास बादशाह का दीवाने आम था। अति सुन्दर चित्रकारी और शिल्पकारी से अलंकृत उस विशाल कक्ष के बीच में बादशाह का सिंहासन-मंच था। भूमि से लगभग छः फुट ऊँचे उस मंच के बीच मे सुवर्ण-निर्मित भद्रासन और चारों कोनो पर खड़े सुवर्ण-स्तम्भों पर आधारित छत्र था।

उस कक्ष के शिल्प-वैचित्र्य का क्या वर्णन किया जाय! ऊपर स्वर्ण और रजत की विचित्र शिल्पकारी, चमकदार लाल पत्थरों के स्तम्भों पर

पक्षि-मृगादिकों के रत्न-जटित चित्र इधर-उधर टँगे दीप-वृक्षों की शोभा, नीचे बिछे फारसी रत्न-कालीन, दोनों पार्श्वों के उद्यानों की रमणीयता—इस सब से दीवाने आम एक अलौकिक भवन प्रतीत होता था।

इस कक्षा के पीछे ही वह दीवानेखास था, जिसमें केवल मन्त्री, महाराजा लोग और आप्तजन ही प्रवेश कर सकते थे। इस कक्षा का अलंकार और साज-सज्जा आदि तो दीवानेआम से भी कहीं बढ़कर था। दीवानेखास के पास ही 'गुसलखाना' नाम से परिचित एक छोटा-सा कक्ष था। यह नाम होने पर भी वह स्नान-गृह नहीं था। सदा ठंडक रखने की व्यवस्था उस कक्ष में की गई थी इसीलिए उसे 'गुसलखाना' कहा जाता था। गुप्त राज्य-कार्य की चर्चा और मन्त्रियों के साथ स्वैर-संलाप बादशाह इसी कक्ष में किया करते थे। बीच में सदा निर्मल जल-प्रवाह के लिए संगमर्मर का फव्वारा बनाकर उसे रत्न-शिल्पकला से अलंकृत किया गया था, जिससे वहाँ इन्द्र-धनुष की छवि प्रस्फुटित हुआ करती थी। कक्ष के मध्यभाग में प्रकार धारा-यन्त्रों (फव्वारों) से गिरने वाली जल धाराएँ समस्त परिसर को ग्रीष्मकाल में भी असाधारण शीतलता प्रदान करती थी।

गुसलखाने के आगे अन्तःपुर था, जिसमें बादशाह और अन्तःपुर-पालक हिजड़ों को ही प्रवेश प्राप्त था।

मध्याह्न से राजमहल के आंगन में पैदल सेना का आगमन आरम्भ हो गया। सैनिक बीच में रास्ता छोड़कर दो पंक्तियों में खड़े हो गए। रत्न-जटित साज से सुसज्जित नौ गजराज और उनमें से प्रत्येक के पीछे केवल स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित दस-दस हाथी धीरे-धीरे आकर दीवार के पास खड़े हो गए। बाद में ये नब्बे हाथी सिंहासनाभिमुख होकर, सिर नवाकर, गोपुर द्वार के बाहर जाकर पंक्ति बनाकर खड़े हुए। अलंकारों, आकार और विशेष राजस प्रौढ़ि से दर्शनीय नव गज-श्रेष्ठ अन्दर ही सेना पंक्ति के पीछे खड़े रहे। नव अलंकृत अश्व उनके सामने खड़े हुए।

इस सब व्यवस्था के लिए राजमहल की चौकी के दारोगा रजत और लोह दण्ड लिये अनुचरों के साथ इधर-उधर घूम रहे थे। इन दण्ड-

धारियों की पोशाकें महाप्रभुओं की पोशाकों को भी मात करने वाली थीं। बैगनी-से अंगरखे, कमर में सुवर्ण का पट्टा, सिर में जरी का काम की हुई पगड़ियाँ पहने ये लोग राजमहल में सर्वाधिकार चलाने वाले प्रहरी थे। स्वर्ण-दण्ड वाले लोग केवल शाहजादों और बादशाह की ही आज्ञा का पालन करने वाले थे, रजत-दण्ड वाले मन्त्री और तत्सम प्रभुओं के तथा लौह दण्ड वाले शेष प्रमुख प्रभुजनों तथा अधिकारियों के आज्ञानुवर्ती थे। राजमहल की सभी आचार-व्यवस्था को चलाने का भार इनके ऊपर था, इसलिए इनके अधिकार भी लगभग असीम थे।

लगभग दो बजे से प्रभुजनों का आगमन आरम्भ हो गया। वे अपनी-अपनी पदवी के अनुसार वेश-भूषा और अलंकार आदि धारण करके आये। दानियाल शाह अपने अनुचरों के साथ पहले ही आ गया था। उसके बाद राजा भोजसिंह पहुँचे। तुर्क प्रभुजन सभी वहाँ उपस्थित थे। बादशाह के धात्री-पुत्र अजीज काका, खानखाना, राजा किशनदास आदि एक-एक करके आये। बादशाहके आने का समय हुआ। दण्डधारियों के नेता ने दीवानेआम की ओर का द्वार खोल दिया। अन्दर आने के अधिकारी प्रभुजन अपने-अपने स्थान पर आकर खड़े हो गए। सिंहासन के दाहिन भाग में दानियाल शाह ने अपना स्थान ग्रहण किया। उसके पास खानखाना बैठे। लगभग सौ प्रभुजन उस दिन उपस्थित थे।

लगभग तीन बजे दण्डधारियों का प्रमुख वहाँ आया और उसने घोषणा की—"बादशाह सलामत, जहाँपनाह, किबलाइजहाँ, गरीबनवाज! हजार उमर!" साथ-साथ ही अकबर शाह ने सिंहासन-मंच पर पदार्पण किया। चामर डुलाने वाले दो कर्मचारी भी उनके साथ मंच पर आये। उनके प्रवेश करते ही सभी दरबारियों ने बिना उनकी ओर मुख उठाये नीचे देखकर तीन बार सिर झुकाया। वे सब ऐसे नीचे देखते खड़े रहे मानो बादशाह के दुर्धर्ष प्रभाव के कारण उनमें सिर ऊपर उठाने की शक्ति ही न हो। अकबर शाह अति मृदुल ढाका मलमल का अँगरखा और पायजामा पहने थे। गले में एक मुक्ताहार सुशोभित था। प्रतिदिन काम में

आने वाली पगडी से ही शिरोवेष्टन किये थे। उस पगडी में एक अत्युज्ज्वल रत्न दमक रहा था। उस सभा में अनाडम्बर सात्विक प्रभाव से वह विशेष शोभायमान था।

आसन ग्रहण करने के बाद उन्होंने साधारण रीति से बातचीत आरम्भ की—"कहो, खानखाना, दक्षिण के क्या समाचार हैं ?"

खानखाना ने कहा—"जहाँपनाह, आपने जो काम शुरू किया उसका अन्त कैसे शुभ न हो ?" खानदेश पूरा अधीन हो गया है। आपकी सार्वभौम प्रतापाग्नि में उनकी सारी सेना शलभ के समान नष्ट हो गई।"

"यह समाचार दूतों के मुँह से हमने जाना। आज से वह राज्य हमारे पुत्र दानियाल का रहेगा। उसका खानदेश नाम बदलकर हम 'दान-देश' रख रहे हैं।"

यह फरमान बादशाह के दानियाल-पक्षपात का प्रत्यक्ष परिचायक था। अतएव उसके पक्ष के लोग प्रसन्न हुए।

अकबर ने फिर पूछा—"इलाहाबाद से क्या समाचार आया है ?"

इसका उत्तर दानियाल ने दिया—"सुना है कि भाई साहब एक बडी सेना लेकर आगरा की ही ओर आ रहे हैं।"

अकबर—"ऐसा ? साधारण रूप से हार मानने वाले नहीं हैं हमारे वंश के लोग !"

इस प्रकार थोड़े समय साधारण बातचीत करने के बाद दीवानेआम समाप्त हुआ। अकबर ने खानखाना और दानियाल को संकेत से पास बुलाकर कहा कि आज कुछ विशेष चर्चा होनी है, इसलिए साधारण प्रभुजनों के दीवानेखास में आने की आवश्यकता नहीं है। कौन-कौन आये इसकी विशेष आज्ञा देकर उन्हीं लोगों से अनुगत होकर बादशाह ने दीवानेखास में प्रवेश किया। सिंहासनस्थ होने के बाद खानखाना से प्रश्न किया—"राजा पृथ्वीसिंह कहाँ हैं ?"

"आपके आदेश की राह देखते हुए बाहर खड़े हैं।"

"हाजिर करो।"

राजा पीथल ने योग्य वेश-विधान के साथ अन्दर आकर बादशाह को अभिवादन किया और अपने स्थान पर खड़े हो गए।

बादशाह ने कहना आरम्भ किया—"दानियाल! पृथ्वीसिंह के ऊपर अनेक अपराधों का आरोपण करके तुमने हमको लिखा था। उन सबके बारे में आवश्यक जाँच करके निर्णय करने का समय आ गया है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि जलालुद्दीन अकबर के शासन में निरपराध दण्डित हो। साथ-साथ यह भी उचित नहीं है कि अपराधी दण्डित न हो। यह राज-धर्म के विपरीत है। तुमने जो अपराध आरोपित किये थे उन्हें एक-एक करके बताओ। उनके बाद पृथ्वीसिंह का उत्तर सुनूँगा। इस मामले में मैं ही सब विचार करके निर्णय करने वाला हूँ। इसलिए तुमको जो कहना है, कहो।"

दानियाल ने कहा—"पूज्य पिताजी, आपकी आज्ञा के अनुसार मेरी जानकारी में जो बातें आई हैं उन्हें मैं निवेदन करता हूँ। पृथ्वीसिंह राजा से मेरा कोई द्वेष नहीं है। आपने अपनी अनुपस्थिति में राज्य-शासन का अधिकार मुझे, नासिरखाँ को और पृथ्वीसिंह को सौंप रखा था। इस समय पृथ्वीसिंह ने आश्रितरक्षक आपके साथ जो द्रोह किया उस सब का आपके सामने निवेदन करना मेरा कर्तव्य है। पहला आरोप यह है कि उन्होंने पूजनीय महानुभाव शेख मुहम्मद को विष देकर हत्या कराई।"

अकबर—"इसका प्रमाण?"

"मुझे प्रमाण कोई नहीं मिला, परन्तु नासिरखाँ को मिला था। यही जानकर उन्होंने नासिरखाँ की भी हत्या करा दी।"

"तो शेख साहब को विष दिये जाने का कोई विश्वसनीय प्रमाण तुम्हारे पास नहीं है।"

"सारी जनता यही मानती है।"

अकबर के मुख पर कोप का भाव था ही नहीं। उन्होंने मन्द हास के साथ कहा—"इसके बारे में पृथ्वीसिंह से पूछने की आवश्यकता ही नहीं है। शेख साहब की चिकित्सा करने वाले वैद्य-हकीमों और उनकी शुश्रूषा

में रहे लोगों से हमें आवश्यक प्रमाण मिल गया है कि हमारे गुरु की मृत्यु स्वाभाविक हुई है।"

दानियाल का धीरज खिसकता मालूम हुआ। उसने कहा—"जहाँ-पनाह! तो नासिरखाँ भी ऐसे ही मरे होंगे?"

"हमारे माननीय श्वसुर की हत्या पृथ्वीसिंह ने करवाई इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है?"

"पहला प्रमाण उनका पारस्परिक वैर। दूसरा, अधिकार-प्राप्ति के लिए उनकी पारस्परिक स्पर्धा। तीसरा, नगर के सब तुर्क लोगों का विश्वास यही है।"

"ठीक है बेटा! तुमने यह विश्वास कर लिया, इसमें मुझे कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु इसके बारे में भी मैंने आवश्यक जाँच कर ली है।" उन्होंने खानखाना से कहा—"सेठ कल्याणमल को हाजिर करो।"

सेठजी आये। बादशाह ने पूछा—"सेठजी, मुझे विदित हुआ है कि मेरे श्वसुर की मृत्यु के बारे में आपको कुछ बातें मालूम हैं। यहाँ बताइए।"

कल्याणमल ने सिर झुकाकर सलाम किया और कहा—"जहाँपनाह, इस सिंहासन के सामने खड़ा होकर जो बातें कहता हूँ उनके लिए क्षमा चाहता हूँ। नासिरखाँ साहब का घातक मेरे हाथ में आया है। आज्ञा हो तो अभी हाजिर करा सकता हूँ। उसने अपने निजी प्रतिकार के लिए, उनका स्थान और मान जाने बिना उनकी हत्या की है।"

"घातक को बाद में देखूँगा। आप जो जानते हैं सो बताइए।"

"रक्षा और दण्ड के लिए एक-से अधिकार रखने वाले बादशाह सलामत की आज्ञा अनिषेध्य है। परन्तु सेवक की विनय है कि संसार से गये हुए व्यक्ति का दोष मुझसे न कहलाया जाय।"

"मृत लोगों के दोष सुनने के लिए नहीं पूछ रहा हूँ। जीवित लोगों से धर्माचरण कराने के लिए पूछ रहा हूँ। जो जानते हैं, निस्संकोच बताइए।"

"मैं जो जानता हूँ वह यह है—पिछले वर्ष जब नासिरखाँ साहब लाहौर से आ रहे थे तब उन्होंने सरहिन्द के पास बानूर नामक स्थान में चोरों से भय खाकर एक क्षत्रिय-परिवार में शरण ली। दूसरे दिन वहाँ से निकलते समय अपने आतिथेय की पत्नी का अपहरण करके भाग आये। गजराज नाम के उस क्षत्रिय ने सरहिन्द के सूबेदार से यह शिकायत की। उन्होंने अपराधी को पहचानकर फरियाद करने वाले को ही कारागृह में डाल दिया जब उसकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली गई। इस प्रकार पत्नी और सम्पत्ति सब-कुछ खोने पर उस द्रोही से प्रतिकार लेने की प्रतिज्ञा करके गजराज राजधानी में आया। बहुत दिनों तक कोई पता नहीं चला, परन्तु एक दिन जब वह उसी खोज में दिल-पसन्द वीथी में खड़ा था, उसने अपनी पत्नी के चोर को हीराजान नाम की वेश्या के घर से निकलते हुए देखा। जब वह राजमार्ग से निकलकर अन्धेरे स्थान पर पहुँचा तब गजराज ने अपना प्रतिशोध ले लिया।"

अकबर का मुख क्रोध से भयानक हो उठा। उन्होंने कहा—"क्या, हमारे शासन में प्रभुजन और उमरा लोग साधुओं के साथ इस प्रकार व्यवहार करते है? नासिरखाँ ने जो-कुछ किया वह सलीम ने भी किया होता तो उसको हम भयंकर दण्ड देते। नासिरखाँ हमारे श्वसुर थे, एक वीर सेनानी थे, समर्थ कर्मचारी थे। परन्तु यदि आपने जो कहा वह सच है तो उनको जो दण्ड मिला उससे मुझे कोई दुःख नहीं है। कल्याणमल, इस सब का प्रमाण है?"

"आज्ञा हो तो नासिरखाँ साहब से अपहृत स्त्री और उसके पति को हाजिर करूँ।"

अकबर ने सोचकर कहा—"इसकी आवश्यकता नहीं। उस स्त्री के पति को उसकी सब सम्पत्ति वापस की जाय। हरजाने के तौर पर, उसे दस हजार रुपये भी दे दिये जायँ।"

"बादशाह अकबर लोकोत्तर पुरुष हैं, लोगों की यह मान्यता व्यर्थ नहीं है।" सलाम करके कल्याणमल चले गये।

अकबर बादशाह ने फिर दानियाल से पूछा—"दानियाल, तुम्हे और क्या कहना है ?"

दानियाल—"अब जो निवेदन करता हूँ वह मेरी आँखों देखी बात है। पृथ्वीसिंह भी उससे इन्कार नही कर सकते। इन्होने आपकी आज्ञा के विपरीत राजद्रोहियों से मिलकर षड्यन्त्र रचा। राजद्रोही को हाथ मे आने पर भी छोड दिया। आज जो कठिनाई हो रही है, उस सबका मूल इनकी दुष्प्रेरणा और द्रोह-बुद्धि ही है।"

"तुमने राजद्रोह किसको कहा ?"

"बादशाह सलामत के विरुद्ध जो-कुछ भी किया जाता है वह सब राजद्रोह है। भाई साहब सलीम आगरा के ऊपर आक्रमण करने के लिए सेना सहित आये थे। उस समय इन्होंने अपने घर में ही उनके साथ विचार-विमर्श किया या नहीं, इनसे ही पूछिए। उसका विरोध करने के लिए जब मै वहाँ गया तो दोनों ने मिलकर मेरे साथ क्या बरताव किया यह भी बताएँ।"

"पृथ्वीसिंह, यह सब सच है ?"

अब तक सब बातों के साक्षी-मात्र बने पीथल चुपचाप खड़े थे। अब उन्होंने निःसंकोच होकर कहा—"दयालु और आश्रित-रक्षक बादशाह सलामत ! सेवक की विनय सुनिए। शाहजादे ने जो-कुछ कहा सब सच है। नगर को घेरने के पहले सलीमशाह मेरे घर पर पधारे थे। उन्होने मुझसे आशा की थी कि आगरा शहर उनके अधिकार मे दे दिया जाय। मैंने उत्तर दिया कि बादशाह सलामत का मुद्रा-अंकित पत्र ले आइए तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। नहीं तो मेरे शरीर में जब तक प्राण हैं तब तक आगरा किसी के हाथ में सौंपा नहीं जा सकता। उन्होंने प्रश्न किया कि यदि मैं आक्रमण करूँ तो ? मैंने उत्तर दिया कि नगर की रक्षा की जायगी। इस समय दानियाल शाह ने वहाँ पधारकर मुझसे कहा कि मैं उनके भाई को बन्दी बनाऊँगा। जब मैंने कहा कि बादशाह सलामत से शाहजादा को बन्दी बनाने का अधिकार मुझे नहीं मिला है, केवल राजधानी

की रक्षा करना ही मेरा उत्तरदायित्व है तो शाहजादा दानियाल ने क्रोध में आकर मुझे नीच शब्दों में गालियाँ दीं। सलीम शाह ने यह सब सुनकर अपने हाथ के चाबुक से शाहजादे के मुख पर प्रहार किया। यह सब सच है। साथ-ही-साथ यह भी सच है कि इन शाहजादा साहब ने उस समय घुटने टेककर छोटे बच्चे के समान रोते हुए क्षमा-याचना भी की थी।"

"तो दानियाल मार खाकर चुप रहा?"

"निवेदन करने मे संकोच होता है। वेदना से पैर पकडकर रोने वाले दानियाल शाह को देखकर शाहजादा सलीम ने मुझसे कहा—'पीथल, पिताजी से यह निवेदन करना न भूलना कि भारत-सम्राट् बनने के लिए यह अति योग्य है।' "

स्वतःसिद्ध संयम से बादशाह ने हँसी रोक ली। जैसा सलीम ने सोचा था वैसा ही तीर ठीक लक्ष्य पर लगा। अकबर को पहले ही शका थी कि दानियाल कायर है। फिर भी तैमूर के वंशज में इतनी पौरुष-हीनता होगी यह उन्होंने स्वप्न मे भी नही सोचा था। सलीम में कोई भी दोष हो, धैर्य, सामर्थ्य और साहस में वह अग्रागमनीय था। बादशाह ने समझ लिया कि उस चतुर शाहजादे ने इस सन्देश से अपने पक्षपाती का उपहास किया है। उन्होंने कहा—"दानियाल! यह सब सच है?"

दानियाल ने लज्जा से मुख नीचा कर लिया।

क्षण-भर के लिए चुप रहकर अकबर ने कहा—"तुम राजधानी मे रहते-रहते सुकुमार हो गए हो। यह राजाओं के लिए योग्य नहीं है। मेरे पुत्रों का वासस्थान तो युद्धभूमि है। तुमको दक्षिण की सेना का एक उपनायक नियुक्त करता हूँ। शीघ्र ही प्रस्थान कर देना चाहिए।"

लोगों ने अनुमान किया कि यह आज्ञा एक प्रकार के निष्कासन की द्योतक है। सभासद इस कठोर आज्ञा पर विचार कर ही रहे थे तब बादशाह ने पीथल से कहा—"मेरे परम मित्र, यह सोचकर दुःखी न होना कि इन झूटे आरोपों पर विश्वास करके मैंने तुम्हें बन्द बनाकर रखा। इन बातों पर एक क्षण के लिए भी मैंने विश्वास न

किया। मैं जानता हूँ कि आप सुयश को प्राणों से अधिक मूल्यवान समझते हैं। इसीलिए इन सब आरोपों को स्पष्ट करके आपकी कीर्ति को बचाना मेरा कर्त्तव्य था। मैं उसी समय इन सबको अविश्वसनीय कहकर छोड़ सकता था, परन्तु प्रबल लोग जब प्रवाद फैलाने लगते हैं तो वह बहुत शीघ्र बद्धमूल हो जाता है। आपका यश तो आज तक निर्मल और अकलंकित रहा है। उस पर यह एक काला धब्बा हो जाता। उसी को बचाने के लिए मैंने यह सब किया। आपके स्थानोचित खिल्लत और अपने रत्न-भण्डार से अपने नित्य उपयोग का रत्नहार मैं आपको पारितोषिक-स्वरूप देता हूँ। उसको स्वीकार कीजिए।"

पीथल ने बादशाह को झुककर सलाम किया और कहा—"आश्रित-वत्सल स्वामिन्! आपकी न्यायतत्परता और धर्म-निष्ठा सर्वविदित है। आपकी इस उदारता के लिए मैं आपका और आपके सिंहासन का आजीवन ऋणी रहूँगा। मैंने आज तक आपकी आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा मानकर ही पाला है। उसमें यदि कोई त्रुटि आ गई हो तो आपकी क्षमाशीलता मेरी रक्षा कर लेगी।"

इसी समय एक चोबदार ने आकर निवेदन किया कि सलीम शाह के पास से एक सन्देशवाहक आया है। उस दूत से मिलने और सन्देश ले आने के लिए खानखाना को भेजा गया।

बादशाह ने समीप के लोगों से कहा—"हमारा साहसिक पुत्र अब क्या करने जा रहा है? मैं जानता हूँ उसमें राजोचित गुण कूट-कूटकर भरे हैं। भारत-साम्राज्य का यथायोग्य शासन करने के लिए आवश्यक नय-नैपुणी और धैर्य-पराक्रम उसमें है। परन्तु मुझे खेद इस बात का है कि वह अविवेकी और कठोर दण्ड देने वाला है।"

महाराजा भोजसिंह ने उत्तर दिया—"आपने जो कहा सो बिलकुल सही है। ये दोष यदि न होते तो सलीम शाह दूसरे अकबर ही बन जाते। परन्तु मेरा निवेदन है कि सलीम शाह की तुलना सामान्य जनता के साथ करनी चाहिए, दैविक शक्ति से अनुगृहीत एक अलौकिक सम्राट् के साथ

नहीं।"

बादशाह की निजी बातों में भी सहमति न प्रकट करने का स्वातन्त्र्य भोजसिंह को उनके विशेष सम्मान के ही कारण प्राप्त हुआ था। अकबर का उत्तर सुनने के लिए दूसरे लोग उत्कण्ठित हो गए।

अकबर ने कहा—"आपके कथन का अर्थ मैं समझ गया। मैंने भी यह सोचा था। यहाँ अभी हमारे विश्वस्त मित्र ही हैं। आप सब राजनीति से सुपरिचित भी हैं। मैं एक प्रश्न करता हूँ। राज्य-शासन के लिए कठोर दण्ड देने वाला, क्रोधी और साहसी राजा श्रेष्ठ है अथवा शान्त, नय-निपुण और नीति-निष्ठ राजा? अपनी युवावस्था में मैं मानता था कि राजाओं के लिए धैर्य, पराक्रम, साहस आदि आवश्यक गुण हैं। आज मैं उस बात को उतना नहीं मानता हूँ। हिन्दू राजधर्म में भी अर्जुन और भीमसेन से अधिक योग्य धर्मपुत्र को ही माना गया है। इस बारे में मुझे लगता है कि राजाओं को शान्त और सहनशील ही होना चाहिए।"

कुछ देर सभी चुप रहे। बाद में भोजसिंह ने कहा—"आपका कहना ठीक है। सुस्थापित राज्य में, चिर-प्रतिष्ठित राजवंश में, राजा दुर्बल होने पर भी शान्त, नय-कुशल और क्षमाशील हो तो काम चल सकता है, परन्तु···"

अकबर—"पूरा कीजिए। भारत में मुगल-साम्राज्य पक्का नहीं हुआ है, यही बात है न?"

भोजसिंह ने कहा—"आपकी गुण-महिमा, नय-निपुणता और बाहुबल से इस समय सुस्थापित है। परन्तु यह सब कहने की आवश्यकता नहीं कि सदा ऐसा रहने की आशा हम अभी नहीं कर सकते। पराजित राजाओं की शक्ति क्षीण नहीं हुई है और नये मित्रों की श्रद्धा और भक्ति स्थिर ही हुई है। इस स्थिति में कितने भी गुणवान हों, दुर्बल सम्राट्···"

अकबर—"ठीक! पीथल, आपकी सलाह क्या है?"

पीथल—"महानुभाव बूँदी महाराज की सलाह से अधिक मैं क्या कह सकता हूँ? मेरे खयाल से उनकी बात पूरी-पूरी सच है।"

इसी बीच खानखाना वापस दरबार में आ गए। बादशाह ने पूछा—"सलीम ने क्या निवेदन किया है?"

"सलीम शाह ने विनयावनत होकर लिखा है कि अपने पूज्य पिता के प्रति किये हुए अपराधों की गुरुता को उन्होंने समझ लिया। आगे आपकी आज्ञाओं को पूर्णतया पालन करने के लिए तैयार हैं। अब तक जो-कुछ हो गया उसके लिए क्षमा माँगी है। राजमाता महारानी के उपदेश के अनुसार पिता को प्रणाम करने के लिए आगरा आ रहे हैं।"

अकबर—"आज का दिन हमारे लिए सब प्रकार से शुभ है। सलीम को समय आने पर सुबुद्धि आ जायगी यह मैं जानता था। शीघ्र ही इस बात को राज्य-भर में ढिंढोरा पिटवाकर घोषित करा दो। सलीम के सब अपराध क्षमा कर दिये गए। दूत को भेजकर उसे शीघ्र ही आगरा आ जाने का सन्देश दो। यह बात अम्मीजान को बताने लिए भी आदमी भेज दिया जाय।"

सलीम की क्षमा-प्रार्थना से बादशाह को कितना आनन्द हुआ इसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। गम्भीर अकबर को इस प्रकार सन्तोष, वात्सल्य आदि भावों में बहते किसी ने कभी देखा नहीं था। सभासदों को लगा कि एक महासंकट टल गया।

आज्ञा के अनुसार राजधानी में यह समाचार घोषित कर दिया गया। बादशाह दरबार को समाप्त करके उठना ही चाहते थे कि चोबदारों के प्रमुख ने आकर निवेदन किया कि शेख अबुलफजल के पास से आदमी आया है। आज्ञा पाकर शीघ्र ही दलपतिसिंह को दरबार में उपस्थित किया गया। उसके भाव, वेश आदि को देखकर धीर-वीर बादशाह भी कुछ घबरा-से गए। धूल से भरे हुए वेश से ही स्पष्ट था कि यह अति दूर की यात्रा करके आ रहा है। शरीर पर स्थान-स्थान पर पट्टियाँ बँधी थीं, जिनसे मालूम होता था कि सीधे युद्ध-भूमि से आ रहा है।

अकबर ने पूछा—"मेरे मित्र शेख का क्या समाचार है?"

दलपति ने कहा—"क्षमा कीजिए, मैं एक अत्यन्त व्यथाकारी संवाद

लेकर आया हूँ। शेख साहब···!"

अकबर--"शीघ्र कहो। शेख को क्या हुआ?"

दलपतिसिंह—"मार्ग में घातकों ने हत्या कर दी।"

क्षण-भर के लिए अकबर स्तब्ध हो गया। सभासद भी यह सोचते हुए निःशब्द खड़े हो गए कि अब बादशाह क्या करेंगे। धीराग्रगण्य अकबर के मुँह से केवल एक उद्गार निकला—'या इलाही!' उमड़ते हुए दुःख को दबाकर उन्होंने पूछा—"बिगड़े हुए शेर का दाँत निकालने वाला यह साहसी कौन है? हमारे मंत्री और उत्तम मित्र अबुलफजल की हत्या करने वाला दुष्ट कौन है? जल्दी बोलो!"

दलपतिसिंह—"ओरछा के राजा वीरसिंह बुंदेला ने एक बड़ी सेना के साथ रास्ते में उन पर आक्रमण किया। चौदह चोटें लगने के बाद शेख साहब वीर गति को प्राप्त हुए।"

"क्या उन लोगों ने एकाएक आक्रमण कर दिया?"

"नहीं, वे लोग मार्ग में तैयार थे। यह समाचार इस सेवक ने स्वयं शेख साहब को दिया था। यह भी निवेदन किया था कि वे लोग रास्ता रोककर नरवर के पास खड़े हैं, इसलिए उज्जयिनी में कुछ दिन रुक जाना उचित होगा। परन्तु वे किसी भी हालत में बादशाह सलामत की आज्ञा का उल्लंघन न करने के निश्चय से रवाना हो गए। साथ के तीन सौ सैनिक भी काम आ गए। केवल मैं अभागा बच गया हूँ।"

"बुन्देला आक्रमण करने वाला है, यह तुमको कैसे मालूम हुआ?"

"मैंने सेठजी से सुना था। उनका सन्देश लेकर ही शेख साहब के पास गया था।"

इसके बाद महाराजा भोजसिंह ने कहा—"बादशाह सलामत कृपा करें। यह युवक पृथ्वीसिंह का अंगरक्षक है। मैंने सुना था कि बुन्देला किसी शत्रुता के कारण शेखसाहब पर आक्रमण करने वाला है। इस बात में कितना सत्य है, जानना सम्भव नहीं था। यह भी हो सकता था केवल अफवाह ही हो। किसी भी हालत में शेख साहब को बात बता देना उचित

समझकर कल्याणमल और मैंने मिलकर इस युवक को भेजा था।"

अकबर—"यह घोर कर्म स्वयं बुन्देला ने किया या किसी की प्रेरणा से किया गया है? यह जलालुद्दीन अकबर शपथ करके कहता है कि यह कृत्य किसी ने भी किया हो, उसे दण्ड दिये बिना मैं शान्त नहीं रहूँगा। पृथ्वीसिंह, बुन्देला को पकड़कर लाने का उत्तरदायित्व तुम पर है। मैं यह नहीं मानता कि उसने शेख को मारा है, सचमुच उसने हमारे राजतन्त्र पर ही घातक प्रहार किया है। अब देरी न करो, बुन्देलखण्ड को अब हमारी शक्ति का परिचय मिल जाय।"

असह्य क्रोध और दुःख के अधीन होकर बादशाह सिंहासन पर ही सिर नीचा करके बैठे रहे। बाद में उठकर चुपचाप अन्दर चले गए। उस दिन का दरबार समाप्त हो गया।

बादशाह दरबार से उठे तो अन्तःपुर में नहीं गये; पीथल को आवश्यक आज्ञाएँ देने और अन्य व्यवस्था करने के लिए 'गुसलखाना' में चले गए। इस महादुःख के अवसर पर भी वे अपने कर्तव्यों से विमुख नहीं हुए।

गुसलखाने में प्रवेश करते ही उन्होंने कल्याणमल को बुलवाया। जब उन्होंने आकर अभिवादन किया तो बादशाह ने पूछा—"मित्रवर, आज का दुःखद समाचार तो आपने जान ही लिया है। ऐसी अवस्था में भी आप मुझे छोड़कर जाना ही चाहते हैं?"

कल्याणमल ने उत्तर दिया—"जहाँपनाह! आपको जितने दिन मेरी आवश्यकता है उतने दिन मैं यहीं रहूँगा। आपकी कृपा से मुझे इह लोक से बाँधने वाले बन्धन एक-एक करके छूट रहे हैं। हमारे धर्मानुसार अब मेरे संन्यास लेने का समय है।"

"काश! कहीं मैं भी ऐसा कर सकता! आप भाग्यशाली हैं। स्वतन्त्र!

लोक में कोई बन्धन नहीं। फिर भी जिनसे प्रेम होता है उन्हें दुःख के समय छोड़कर जाना उचित है? अबुलफ़जल तो अब रहे नहीं। आपके अतिरिक्त अब मेरे मित्रों में कौन बाकी है?"

"आपकी आज्ञा के अनुसार मैं अपने निश्चय को हाल के लिए स्थगित करता हूँ। यह मेरा कर्तव्य भी है। सन्यास लेने के लिए जंगल में जाना आवश्यक नहीं है। परन्तु मुझे संसार के बन्धन में जकड़ने वाले अन्य कार्यों से आपको मुक्त करना ही होगा।"

"कौन से काम हैं? आपकी जो इच्छा है, सब अभी पूर्ण कराये देता हूँ। फिर इस लोक में आपका बन्धन केवल मेरे साथ रह जायगा। इतने बड़े साम्राज्य का अधीश्वर होने पर भी एकाकी मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द की क्या बात हो सकती है?"

"सर्वप्रथम उस कन्या का विवाह। उसके पिता·····"

"छत्रसिंह अन्त तक मुझसे युद्ध करते रहे। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि वे अति वीर योद्धा थे। उनकी पुत्री का विवाह आप किसके साथ करवाना चाहते हैं?"

"अपने छोटे भाई के पुत्र से। आज शेख साहब का समाचार लेकर वही दरबार में आया था।"

"मेरी अनुमति है। उस युवक को मैं एक हजार का मनसबदार नियुक्त करता हूँ। और क्या?"

"एक बात और निवेदन करनी है। रामगढ़ की बातें आपको मालूम है। सूबेदार की किसी कार्रवाई के कारण वहाँ मेरा छोटा भतीजा राज्य करता था। वह दुष्चरित्र और वीरसिंह बुन्देला का परम प्रिय मित्र था। शेख साहब के साथ के युद्ध में वह मारा गया है। मेरे पुत्र न होने से अब राज्य का उत्तराधिकारी दलपतिसिंह ही है। इसलिए वह देश आप उसको देने की कृपा कीजिए।"

"यही न्याय है। उस युवक को बुलाइए।"

जब दलपतिसिंह बादशाह के सामने आये तो बादशाह ने कहा—

"अबुलफजल को बचाने का तुमने जो प्रयत्न किया उसके लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। तुम्हारे शरीर के घाव ही तुम्हारे पराक्रम के साक्षी है। मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। क्या चाहते हो?"

"जहाँपनाह बादशाह सलामत की कृपा से अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।"

"तुमने जो कहा वह उचित है। फिर भी अपनी प्रसन्नता के परिचय के रूप मे मैं तुम्हे एक हजार का मनसबदार नियुक्त करता हूँ और रामगढ़ राज्य, जो तुम्हारा ही है, तुम्हे वापस देता हूँ।"

दलपतिसिंह भावनाओं के वेग से कुछ बोल न सका। उसने बादशाह को झुककर अभिवादन किया।

बादशाह ने कहा—"इनके चरणों में प्रणाम करो। तुम्हारे समस्त सौभाग्य के हेतु ये ही है। रामगढ तुमको देने का अधिकार इनको है। राजभोगो को दुःखजनक मानने वाले बहुत हैं, किन्तु उन्हे त्याग देने वाले विरले ही होते हैं। अपने महानुभाव पितृव्य रामगढ के सच्चे राजा अजितसिंह को प्रणाम करो।"

'अजितसिंह' नाम सुनते ही दलपतिसिंह को जो आश्चर्य हुआ उसका वर्णन कैसे किया जाय? कई कारणों से वह इस निष्कर्ष पर तो पहुँचा ही था कि कल्याणमल केवल एक रत्न-व्यापारी नहीं हैं। प्रमुख उमराओं और राजा-महाराजाओं से मित्रता, उनके प्रति उन सब का आदर-भाव, बादशाह का सम्मान आदि ऐसी बातें थीं जो एक वणिक्-मात्र के लिए सुलभ नहीं हो सकती थीं। उन दिनों भारत में स्थान-भ्रष्ट राजाओं की कमी नहीं थी। दलपतिसिंह को शंका थी कि ये भी उनमें से ही एक होंगे। परन्तु उनकी नम्रता और राजकार्यों के प्रति उदासीनता से वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सका। आखिर उसने मान लिया था कि धन-शक्ति, स्वभाव गुण और परोपकार-तत्परता से उन्हें यह उच्च-स्थान-मान मिला होगा। आश्चर्य-आनन्दित की भावना से अभिभूत होकर स्तब्ध खडा रहा। बादशाह के सामने और किसी से बातें न करने की मर्यादा जानने वाले दलपतिसिंह ने

जब बादशाह के मुख से सुना कि वे उसके आराध्य चाचाजी ही हैं तो वह अकबर की आज्ञा से पितृव्य को साष्टांग प्रणाम करने लगा। कल्याण-मल ने उसे रोक लिया और कहा—"बादशाह सलामत के सामने और किसी को प्रणाम नहीं किया जाता है।" उन्होंने उसे हृदय से लगाकर उसका आलिंगन किया।

बादशाह ने कहा—"अच्छा, अब आपको आपस में बहुत-कुछ बातें करनी होंगी।"

इसे आज्ञा समझकर दोनों बादशाह को अभिवादन करके बाहर निकल आये। मार्ग शीघ्रता के साथ तय करके घर पहुँचे। वहाँ चरणों में साष्टांग प्रणाम करने वाले भतीजे का गाढ़ आलिंगन करते हुए कल्याणमल ने कहा—"तुम्हारे मन मे अवश्य ही प्रश्न उठेगा कि मैंने यह सब तुमसे क्यों छिपाया। मेरा सच्चा हाल अब तक केवल चार ही लोग जानते थे—राजा भोजसिंह, पीथल, बादशाह और महारानी दुर्गादेवी। भोजसिंह पहले से ही मेरी सब बातों से परिचित थे। उन्होंने ही बादशाह को भी बताया। पीथल ने जब सीधे प्रश्न किया तो स्वीकार करना ही पड़ा। मैं देवी के सामने प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि मैं अपने को कभी रामगढ़ का राजा न मानूँगा, और न कहलाऊँगा ही। इसलिए वह बात मैंने कभी किसी से कही नहीं। तुम्हारे दिल में अपने लिए प्रेम, श्रद्धा और राज्य को मेरे हाथों में ही सौंपने का आग्रह देखकर मैंने महसूस किया कि यदि तुम्हे वस्तुस्थिति का ज्ञान हो जाय तो हम दोनों को शान्ति होगी।"

दलपतिसिंह ने गद्गद होकर कहा—"ऐसी आज्ञा न कीजिए, चाचाजी! पिताजी की अन्तिम आज्ञा आपको ही शासन सौंपने की थी। वही मेरी भी इच्छा है। आपकी सेवा में जीवन व्यतीत करने का वरदान ही मैं चाहता हूँ।"

"बादशाह का आग्रह यही है कि रामगढ़ का शासन मैं ही करूँ। आज तक उससे इनकार करता रहा। अब, जब संन्यास का समय आ गया तब राज्य-शासन कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? हमारा धर्म है, वृद्धावस्था

में राजा लोग संन्यास लें। वही मैं करना चाहता हूँ।"

"फिर भी अपनी सेवा करने की अनुमति मुझे दीजिए।"

"तुम वंश-धर्म को भूलते हो। राज्य-भाव के क्लेश सहना हम क्षत्रियों का धर्म है। पुत्र को राज्य-भार सौंपने के पहले राजा संन्यास नहीं ले सकता। मुझे इसके योग्य पुत्र मिल गया है। इसलिए मै संन्यास ले सकता हूँ। परन्तु तुम्हारा समय अभी नहीं आया है। बादशाह की आज्ञा भी तुम्हारे लिए अनुल्लंघनीय है।"

"साक्षात् राजा-जब विद्यमान हैं तब मैं बादशाह से राज्य कैसे ले सकता हूँ?"

"यही तो बादशाह ने कहा था। तुम राज्य मुझसे ले रहे हो। मैं अपना राज्याधिकार तुम्हें सौंप रहा हूँ। मेरा अपना कोई पुत्र न होने से उत्तराधिकारी भी तुम ही हो। अब सूरजमोहिनी और उसकी नानी को भी मैं तुम्हारे हाथो सौंपता हूँ। अपने सब ऋणों से मैं मुक्त हो गया हूँ। यही मेरी इच्छा थी। अब तुम्हें सूरज के बारे में बताना है। सीता-पुरी के राजा छत्रसिह के बारे में तुमने सुना है?"

"प्रतापसिंह के साथ मिलकर अकबर के विरुद्ध युद्ध करने वाले वीर?"

"हाँ, वही। वे मेरे परम मित्र थे। जब युद्ध मे पराजित होकर भागना पडा तब उन्होंने अपने परिवार को मेरी रक्षा मे सौंप दिया था। उनकी पटरानी की माताजी हैं महारानी दुर्गादेवी और उनकी पुत्री है सूरजमोहिनी। जब उनकी मृत्यु का समाचार मिला तो सती रानी ने भी विषपान करके यह लोक छोड़ दिया। बाल्यकाल से ही सूरज मेरे पास ही है। उनका राज्य तो अन्याधीन हो गया। बन्धुबान्धव दुर्बल और परोपजीवी बन गए। इन सब कारणों से सूरजमोहिनी मेरी अत्यन्त प्रिय कन्या है। रामगढ़ राज्य की तरह उसको भी तुम्हारे ही हाथों सौंप रहा हूँ।"

"यह सब आपका आशीर्वाद ही है।"

"महारानी दुर्गादेवी और सूरजमोहिनी को ले आने के लिए आदमी भेजा है। इस सबसे उनको भी बहुत हर्ष होगा। तुम्हारे भाई की मृत्यु के कारण अभी विवाह मे देरी है। तब तक वे मेरे साथ ही रहेगी। मुझे भी सन्यास के लिए तब तक ठहरना पड़ेगा। अभी मेरा दीक्षा लेना बादशाह को भी पसन्द नही है।"

अपने पितृव्य का निर्णय अटल देखकर दलपतिसिंह भी आगे कुछ नहीं कह सका।

सेठजी ने फिर कहा—"अब तुम शीघ्र जाकर राजा पृथ्वीसिंह को प्रणाम करो। इतने महानुभाव स्वामी की सेवा का अवसर तुम्हें मिला, यह ईश्वर का अनुग्रह ही है। वे दो-चार दिन में बुन्देला से युद्ध करने को जा रहे हैं। अब बादशाह ने तुम्हें एक हजार का मनसबदार नियुक्त कर दिया है। इसलिए पुरानी नौकरी समाप्त हो गई है। तुम उनसे मिलो और तुम्हारे लिए उन्होंने जो कुछ किया उसके लिए मेरी ओर से भी उन्हे धन्यवाद दो। भोजसिंह से भी मिलना मत भूलना। अब तुम्हारी समझ मे आ गया होगा कि उन्होंने तुम्हे मेरे पास क्यों भेजा था। थोडा आराम कर लो फिर सब करना।"

कल्याणमल की आज्ञा के अनुसार दलपतिसिंह अपने घर लौट गया। स्नान, भोजन आदि के बाद उस रात्रि को विश्राम किया। प्रभात में ही पीथल के महल मे पहुँचा। महाराजा अपनी युद्ध-यात्रा की व्यवस्था कर रहे थे। दलपतिसिंह को देखते ही उन्होंने उठकर उसे गले लगाया और फिर अपने अर्धासन पर बैठाया।

उन्होंने कहा—"आपके भाग्योदय से मैं आनन्दित हूँ। सेठजी ने कल रात को सब मुझे बताया।"

दलदपतिसिंह ने कहा—"पहले ही आकर सब बातें आपको नहीं बताईं इसलिए क्षमा चाहता हूँ। परन्तु आपको कल रात को 'सब मालूम' हो गया इसका आश्चर्य है।"

"अब एक बात तुमसे कहनी है—सेठजी ने यह मेरे लिए छोड रखी

है। जो मैं कहना चाहता हूँ वह सब तुम्हे जानना ही चाहिए। इस राजधानी में एक गुप्त संघ है। उसके नेता तुम्हारे चाचाजी हैं। उसका उद्देश्य हिन्दू धर्म का संरक्षण करना है। उसके संस्थापक और संचालक सभी वे ही हैं। हम सब लोग उसमे सम्मिलित हैं और उनके आज्ञानुवर्ती हैं। पहले-पहल मुसलमानो के हाथो में पडी हिन्दू स्त्रियों की रक्षा के लिए इसका सगठन किया गया था। परन्तु अब इसने हिन्दू क्षेत्रो को आक्रमण से बचाना, हिन्दू स्त्रियो की मान-रक्षा करना, हिन्दू धर्म के विपरीत कामो को रोकना आदि भी अपने उद्देश्यो मे सम्मिलित कर लिया है। इसकी शक्ति अब साम्राज्य के सब स्थानो मे व्याप्त है। राजधानी के सभी हिन्दू प्रमुजन इस संगठन के सदस्य हैं। अन्य राज्य-कार्यों में यह दल हस्तक्षेप नही करता, इसलिए विभिन्न पक्षो के लोग इसमे एक मत से काम करते हैं।"

"इसके नायक कौन-कौन हैं?"

"नेताओं को हम पाँच ही लोग जानते हैं। मुख्य नेता सेठजी, फिर भोजसिह, दीनदयाल, मै और उस दिन तुमने जिस चूडीवाले चौधरी को देखा था वह हैं। संघ की आज्ञाओ का प्रसार चूडीवालो के द्वारा होता है, इसलिए इस संगठन को और कोई नही जानता।"

"तो इस सबके प्रमुख चाचाजी ही हैं?"

"वे साधारण मनुष्य नही हैं, दिव्य पुरुष हैं। बडा स्थान-मान आदि स्वीकार करके दरबार की शोभा बढ़ाने को बादशाह ने कितनी बार उनसे कहा, परन्तु उन्होने एक न मानी। उनका ध्यान एक ही काम मे था। उसके लिए वे सदा तैयार रहते थे। उन्हीं के अनुग्रह से हमें यह सब श्रेय प्राप्त हुआ है।"

"मैं कितना भाग्यवान हूँ! परन्तु रामगढ़ को इतना महानुभाव राजा पाने का सौभाग्य नहीं है। अथवा, हिन्दू धर्म की ही रक्षा के लिए कटिबद्ध उस महापुरुष के लिए रामगढ़ का राज्य कितनी तुच्छ वस्तु है!"

"तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। परन्तु अब वे उस संघर्ष से भी अलग हो रहे हैं। अपने सभी कर्तव्य पुत्र को सौंपकर संन्यास लेना चाहते

हैं। यही तो धर्म है। इसलिए हमारे दल में अब आपको भी सम्मिलित होना पड़ेगा। उनके स्थान पर भोजसिंह राजा का कार्य सँभालेंगे।"

"उनकी और आपकी इच्छा मेरे लिए तो आज्ञा ही है।"

"तो हम सबको बहुत आनन्द हुआ। अस्तु। अब शीघ्र ही आप रामगढ़ जायँगे। वहाँ राज्य-संरक्षण करते हुए चिरकाल तक सकुशल रहो।"

"वह राज्य आपका ही है, जो मेरे स्वामी हैं। आप बुन्देलखण्ड जा रहे हैं। एक दिन के लिए रामगढ़ आकर हमें अनुगृहीत न करेंगे?"

"अपने मित्र से मिलने न आऊँ तो भी अपनी पुत्री के समान मोहिनी से मिलने भी न आऊँगा? अभी तो आप बहुत व्यस्त रहेंगे। अब देरी न करना। एक बात सदा याद रखना—पृथ्वीसिंह का स्नेह चंचल नहीं। मेरा आशीर्वाद भी तुम्हारे साथ है।"

परस्पर आलिंगन के पश्चात् जब दलपतिसिंह विदा हुआ तो उसकी आँखों में अश्रुबिन्दु झलक रहे थे। शीघ्र ही देश को जाने की आज्ञा मिलेगी, इसलिए वह नगर में जिस-किसी से मिलना था, सबके पास गया। भोजसिंह को प्रणाम करके विदा ली तो उन्होंने एक लोहे का कड़ा उसके हाथ में पहनाकर कहा—"इस कड़े का महत्त्व सदा याद रखना। इस पर श्रीचक्र की पूजा की गई है। इसको पहनने वाले तुम हिन्दू धर्म की रक्षा करने को बाध्य हो। इसको दिखाने पर भारत में तुम्हारी आज्ञा का पालन करने वाले बहुत लोग मिलेंगे। इससे मिलने वाली शक्ति का उपयोग किसी स्वार्थ या दुष्कार्य के लिए मत करना।"

दलपतिसिंह गुल अनारा को नहीं भूला। इस थोड़े से समय में उनके बीच निष्कलंक प्रेम-सम्बन्ध उत्पन्न हो गया था। दलपतिसिंह की राज्य-प्राप्ति और सम्मान वृद्धि से उसे भी बहुत आनन्द हुआ। उसे एक ही दुःख था कि अब वह फिर से राजधानी में नहीं आएगा।

वह प्रतिदिन कल्याणमल के घर जाता था। उनके सम्भाषण का विषय अधिकतर रामगढ ही होता था। उस देश की संस्कृति, जनता की उन्नति

के उपाय, समीपस्थ राजाओं के साथ व्यवहार की नीति आदि अनेक विषयों पर सेठजी ने उसे अनेकानेक उपदेश किये ।

जब-जब वहाँ जाता, मोहिनी से मिलने का प्रयत्न करता, किन्तु एक बार भी उससे मिल न सका। रामगढ़ जाने के दो दिन पूर्व जब वह उनके घर से लौट रहा था तब रानी दुर्गादेवी ने उसे अन्दर आने का आमन्त्रण दिया। रानी का मुख हर्ष से प्रफुल्लित था। उन्होंने कहा—"महाराज! दो दिन में आप चले जायँगे। मुझे और मोहिनी को आपने जो सहायता की उसके लिए हम दोनों आपकी आजीवन कृतज्ञ रहेंगी। इस वृद्धा का आशीर्वाद स्वीकार कीजिए। काली देवी सब शुभ ही करेंगी।"

'महाराज' सम्बोधन से दलपतिसिंह को हँसी आ गई। परन्तु यह स्मरण करके कि वह पद अधिकारी लोगों से मिला है, उसने रानी के उस सम्मानसूचक शब्द को आदर के साथ ही स्वीकार किया और नम्रता से उत्तर दिया—"महारानी, मैंने ऐसी कौनसी बड़ी सहायता की जिसके लिए आप ऐसा कह रही हैं? आपका आशीर्वाद ही मेरे लिए बल है। सूरज-मोहिनी कैसी है?"

"मोहिनी अच्छी है। आप महाराज और वह राज-पुत्री है। इसलिए हमारे आचारानुसार आप विवाह तक एक-दूसरे से मिल नहीं सकते। स्वतन्त्रता से पली उसको यह बन्धन शल्य के समान मालूम होता है, परन्तु 'बाबा' की आज्ञा है, इसलिए मान रही है।"

बात दलपतिसिंह की समझ में आ गई। क्षत्रिय राजाओं में यह एक आचार था कि विवाह निश्चित हो जाने के बाद उसके सम्पन्न होने तक वर-वधू परस्पर मिल नहीं सकते थे। अब तक सूरजमोहिनी को अपने वंश आदि के बारे में कुछ मालूम नहीं था। विवाह का निश्चय हो जाने के बाद सेठजी ने यह सब उसे बता देना आवश्यक समझा। अब छत्रसिंह की पुत्री का राजपूत आचार छोड़ना उचित नहीं है और रामगढ़ की भावी रानी को किसी प्रकार के अपवाद का अवसर भी नहीं देना चाहिए। यह सब सोचकर सेठजी ने उसे विवाह तक दलपतिसिंह के सामने जाने से रोक

दिया था। उस कुलीन कन्या ने इस आज्ञा को मान भी लिया।

आखिर दलपतिसिंह ने कहा—"महारानी, दो दिन में मैं रामगढ़ चला तो जाऊँगा, परन्तु मेरा हृदय यहीं रहेगा। मेरे विचार सदा आप लोगों के साथ ही रहेंगे।"

बादशाह की आज्ञा यथासमय आ गई। दलपतिसिंह सबका आशीर्वाद लेकर रामगढ़ के लिए रवाना हो गया।

रामगढ़ में राजा का राज्याभिषेक यथाविधि सम्पन्न हो गया। बादशाह का सम्मान और खरीता लेकर जब राजधानी से ही सन्देशवाहक आया, तब लोगों ने जान लिया कि रामगढ़, जो अब तक एक साधारण राज्य था, अब भारत के मुख्य राज्यों में गिना जाने लगा है। अजितसिंह महाराज जीवित हैं और उनकी आज्ञा से ही दलपतिसिंह राज्य-सिंहासन स्वीकार कर रहे हैं, यह किसीको मालूम नहीं था। राज्याभिषेक के दिन सिंहासनासीन होने के बाद जब नये महाराज ने बादशाह का खरीता खड़े होकर स्वीकार किया, उसी समय एक दूसरा पत्र एक दूसरे दूत के हाथ से भी लिया, जिससे लोगों को आश्चर्य हुआ। परन्तु किसी को यह मालूम नहीं हुआ कि वह किसका दूत था।

भाई की मृत्यु का अशौच बीत जाने के बाद सूरजमोहिनी और दलपतिसिंह का विवाह हो गया। उस समय उनको अनेक उपहार भी मिले। तीन उपहारों ने उन्हें विशेष आनन्द प्रदान किया। एक था सेठजी का भेजा हुआ एक मुक्ताहार। उसके साथ सेठजी ने लिखा था कि यह हार पुरातन काल में किसी मराठा अधिपति से प्राप्त हुआ था। रामगढ़ की रानियाँ परम्परा से इसे पहनती आई हैं और रामगढ़ की राज्य-लक्ष्मी के समान इसकी रक्षा होती रही है। महारानी उसे अपने साथ ले आई थीं और अब मैं उसे उसकी सच्ची उत्तराधिकारिणी को भेज रहा हूँ।

दूसरा उपहार था बादशाह का एक फरमान, जिसके द्वारा छत्रसिंह से लिया गया सीतापुर का राज्य उनकी पुत्री सूरजमोहिनी को सम्मानपूर्वक वापस किया गया था। तीसरी वस्तु अनार के बीजों के आकार के माणिक्य-रत्नों की एक माला थी, जो किसी अज्ञात व्यक्ति के पास से आई थी। दलपतिसिंह ने समझ लिया कि वह माला गुल अनारा ने भेजी है। जब वह उसे विशेष ध्यान से देखने लगा, तो सूरजमोहिनी ने उसके बारे में पूछा। दलपतिसिंह ने गुल अनारा के निष्कलंक प्रेम और उससे मिली सहायता की सारी कहानी उसे कह सुनाई। सूरजमोहिनी ने कहा—"यह माला मैं नित्य पहनूँगी। आपसे उसने स्नेह किया, इसमें आश्चर्य नहीं; परन्तु मुझे भी बचाने का जो प्रयत्न किया, उससे हृदय की कितनी गुण-सम्पन्नता का परिचय मिलता है।"

सूरजमोहिनी के विवाह के बाद अकबर की सम्मति लेकर कल्याणमल ने संन्यास ले लिया। वे किस देश को गये और उन्होंने कहाँ अपना आश्रम बनाया, यह किसी को मालूम नहीं हुआ।

कथा के अन्य पात्रों के समाचार जानने के लिए भी पाठक उत्सुक होंगे।

सलीमशाह दो-तीन वर्ष और पिता के विरुद्ध लड़ते हुए इलाहाबाद में ही रहे। अन्त में राजमाता का आग्रह मानकर वे आगरा आये और पिता से क्षमा प्राप्त करके युवराज-पद पर अधिष्ठित हुए। अन्त में वे ही जहाँगीर बादशाह बने।

पृथ्वीसिंह राठौर बादशाह के अन्त-काल तक उनके विश्वासपात्र और उत्तम मन्त्री के रूप में आगरा में ही रहे।

बादशाह द्वारा सम्मानित गजराज पत्नी और कनिष्ठ पुत्री के साथ अपने देश में निवास करने लगा। पहले-पहल उसने मुसलमान के अन्तःपुर में रहने के कारण पत्नी को स्वीकार करने में संकोच किया, परन्तु कल्याण-

मल और भोजसिंह के समझाने पर और भीष्म का उदाहरण देकर बाध्य करने पर उसने उसे स्वीकार कर लिया। पद्मिनी किसी भी हालत मे जाने को तैयार नहीं थी। वह सूरजमोहिनी की सेवा मे ही जीवन बिताना चाहती थी, अतएव सेठजी ने उसे अपने पास रखना स्वीकार कर लिया। विवाह के बाद सूरजमोहिनी रामगढ़ गई तो वह भी उसके साथ चली गई।

नासिरखाँ की मृत्यु से अशरण हुआ कासिमबेग हीराजान के घर में रहने लगा। पृथ्वीसिंह के गृह में बन्धनस्थ हुआ इब्राहीम खाँ सम्बन्धियों के बल के कारण उन्नति को प्राप्त हुआ। उसने दानियाल शाह की सेना में मिलकर युद्धभूमि पर अपनी सामर्थ्य प्रकट की और धीरे-धीरे उच्च स्थान प्राप्त कर लिया।

दानियाल दक्षिण से लौटकर आया ही नहीं। अत्यधिक मद्यपान के कारण उसका शरीर और बुद्धि-बल क्षीण हो गया और वह पिता के सामने ही इस लोक से उठ गया। वीरसिंह बुन्देला पकड मे नहीं आया। जहाँगीर के बादशाह बनने पर वह अपने कुकर्म का पारितोषिक पाकर अन्त तक बादशाह का उत्तम मित्र बनकर रहा।

रामगढ़ के राज-दम्पति एक पुत्र-रत्न के आगमन से अनुग्रहीत हुए। दस दिन के अन्दर ही एक त्रिदण्डधारी सन्यासी राजमहल मे आया और दलपतिसिंह के हाथ में एक स्वर्ण-रक्षा-कवच देकर उसके बारे में कुछ कहने का अवसर दिये बिना ही अन्तर्धान हो गया। सूरजमोहिनी ने कवच को देखकर कहा—"बाबा संन्यासी होने के बाद भी हमको नही भूले। वे ही सदा इस लाल की रक्षा करेंगे।"

दलपतिसिंह की आँखो में आँसू भर आए।